हिंदीभाषा का इतिहास

धीरेन्द्र वर्मा

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद-२११००१

पूज्य गुरु

महामहोपाध्याय

पंडित गंगानाथ झा

एम्० ए०, डी० लिट्०, एलेल्० डी०

वि द्या सा ग र

की सेवा में

सादर समर्पित

प्राक्कथन

हिंदी भाषा के इस इतिहास को लिखने का भार हिंदुस्तानी एकेडेमी ने मुझे १६२६ ई० में सौंपा था। तीन चार वर्ष के परिश्रम स्वरूप यह ग्रंथ १६३३ ई० में प्रकाशित हो सका था। हिंदी भाषा के विद्यार्थियों तथा विद्वानों ने इस का स्वागत किया, फलतः पाँच छः वर्षों में ही इस का प्रथम संस्करण समाप्त होगया।

ग्रंथ के द्वितीय संस्करण की प्रमुख नवीनताएं निम्नलिखित थीं :—

१. वक्तव्य में दिए हुए हिंदी-भाषा संबंधी कार्य के इतिहास में नवीनतम सामग्री का समावेश;

२. हिंदी भाषा के क्षेत्र का द्योतक नवीन मानचित्र;

३. देवनागरी लिपि तथा अंक संबंधी चित्रों का समावेश;

४. अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि-चिह्न संबंधी एक नए कोष्ठक की वृद्धि।

ग्रंथ के इस तीसरे संस्करण में अनेक स्थलों पर छोटे छोटे सुधार किए गए हैं जिन में से अधिकांश के लिए मैं अपने अनन्य मित्र डॉ० बाबूराम सकसेना का आभारी हूं।

लिपि तथा अंक संबंधी चित्र रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा की प्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन भारतीय लिपिमाला से लिए गए हैं। इस संबंध में अनुमति देने के लिए लेखक ओझा जी का आभारी है। अनुक्रमणिका के अंकों का पैराग्राफ़ के आधार पर परिवर्तन मेरे शिष्य डा० ब्रजेश्वर वर्मा के परिश्रम का फल है।

प्रयाग, १६४६ धीरेंद्र वर्मा

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया है; किन्तु उनमें से कुछ ग्रन्थ अपना विशेष स्थान बना चुके हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जी का "हिन्दी भाषा का इतिहास" इसी कोटि का ग्रंथ है। सम्पूर्ण हिन्दी जगत् में विशेष कर विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में इस पुस्तक को जो व्यापक प्रतिष्ठा और स्वीकृति मिली है, वह अपने आप में अनुपम है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक समय ऐसा था जब हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. बाबूराम सक्सेना ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया था। डॉ. धीरेन्द्र जी के ही सहयोग और प्रेरणा से हिन्दी विभाग में डॉ. हरदेव बाहरी और डॉ. उदयनारायण तिवारी जैसे प्रसिद्ध भाषाविद कार्यशील थे; जिसके कारण इलाहाबाद विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग भाषा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य-स्थल बन गया था। इन सभी विद्वानों का हिन्दुस्तानी एकेडेमी से बहुत अन्तरंग संबंध था। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखित "हिन्दी भाषा का इतिहास" का एकेडेमी द्वारा प्रकाशन उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह ग्रंथ पूरे हिन्दी जगत् में अत्यन्त व्यापक और लोकप्रिय सिद्ध हुआ है और अब तक इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अब इसका पुनर्मुद्रण मेरे कार्य काल में हो रहा है; जिसे मैं गौरव और गर्व का विषय समझता हूँ ।

मुझे पूरा विश्वास है कि यह ग्रंथ हिन्दी भाषा के अध्येताओं में पूर्ववत् लोकप्रिय बना रहेगा और इसकी उपादेयता स्वयं सिद्ध बनी रहेगी । इस ग्रंथ के माध्यम से हिन्दी भाषा अपने पूर्ण विकास क्रम में सक्षम और समर्थ बनी रहेगी ।

अनिल कुमार सिंह
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

वक्तव्य

भाषाविज्ञान के सर्वसम्मत सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन कुछ यूरोपीय विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ किया था। इस विषय पर प्रथम महत्वपूर्ण पुस्तक जान बीम्स कृत 'भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' *(कंपैरेटिव ग्रैमर आव दि माडर्न एरियन लैंग्वेजेज़ आव इंडिया)* है। इस का 'ध्वनि' शीर्षक प्रथम भाग १८७२ ई० में, 'संज्ञा तथा सर्वनाम' शीर्षक दूसरा भाग १८७५ ई० में तथा 'क्रिया' शीर्षक तीसरा भाग १८७९ ई० में प्रकाशित हुआ था। प्रथम भाग में लगभग सवा सौ पृष्ठ की भूमिका भी है। इस बृहत् ग्रंथ में बीम्स ने हिंदी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया तथा बंगाली भाषाओं के व्याकरणों पर तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है और व्याकरण के प्रत्येक अंग के संबंध में बहुत सी उपयोगी सामग्री एकत्रित की है। बीम्स का 'ध्वनि' विषय पर प्रथम भाग उदाहरणों के कारण विशेष रोचक है। आज तक न तो बीम्स के ग्रंथ का दूसरा संस्करण हो सका और न कोई अन्य अधिक पूर्ण ग्रंथ इस विषय पर निकल सका। अतः त्रुटिपूर्ण तथा अत्यंत पुराना होने पर भी बीम्स का ग्रंथ आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विद्यार्थी के लिए अब भी महत्व रखता है।

१८७६ ई० में ईसाई मिशनरी केलाग का 'हिंदीभाषा का व्याकरण' *(ग्रैमर आव दि हिंदी लैंग्वेज)* प्रकाशित हुआ था। इस हिंदी व्याकरण की विशेषता यह है कि इस में साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी के व्याकरण के साथ-साथ तुलना के लिए ब्रजभाषा, अवधी आदि हिंदी की मुख्य-मुख्य

बोलियों तथा राजस्थानी, बिहारी और मध्यपहाड़ी भाषाओं की भी सामग्री जगह-जगह पर दी गई है। साथ ही प्रत्येक अध्याय के अंत में व्याकरण के मुख्य-मुख्य रूपों का इतिहास भी संक्षेप में दिया गया है। केलाग के हिंदी व्याकरण का परिवर्द्धित संशोधित संस्करण निकल चुका है। यह हिंदी व्याकरण अपने ढंग का अकेला ही है।

१८७७ ई० में रामकृष्ण गोपाल भंडारकर ने भारतीय आर्यभाषाओं पर सात व्याख्यान *('विलसन फ़िलालोजिकल लेक्चर्स')* दिए थे जो १९१४ में पुस्तकाकार छपे थे। इन में प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का विवेचन अधिक विस्तार से किया गया। कुछ व्याख्यान आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं पर भी हैं जिन में इन भाषाओं से संबंध रखने वाली अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। एक भारतीय विद्वान का अपने देश की भाषाओं के संबंध में आधुनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का यह प्रथम प्रयास है। बीसवीं सदी के दृष्टिकोण से देखने पर इन व्याख्यानों के बहुत से अंश पुराने मालूम पड़ते हैं।

बीम्स के समकालीन विद्वान रूडल्फ़ हार्नली का 'पूर्वी हिंदी व्याकरण' *(ग्रैमर आव दि ईस्टर्न हिंदी)* १८८० ई० में प्रकाशित हुआ था। पूर्वी हिंदी से हार्नली का तात्पर्य आधुनिक बिहारी तथा अवधी से है। वास्तव में भोजपुरी का विस्तृत वर्णनात्मक व्याकरण देने के साथ-साथ हार्नली ने प्रत्येक अध्याय में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाली प्रचुर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक सामग्री दी है जिस में कुछ तो बिल्कुल नई है। हार्नली का ग्रंथ निबंध के रूप में नहीं लिखा गया है इसी कारण लगभग ४०० पृष्ठ के इस छोटे से ग्रंथ में बीम्स के तीन भागों से भी अधिक सामग्री संगृहीत है। यद्यपि हार्नली के ग्रंथ का भी दूसरा संशोधित संस्करण नहीं निकल सका किंतु तो भी हार्नली का ग्रंथ आजतक इस विषय पर कोष का सा काम देता है। इस तरह १८७० से १८८० ई० के बीच में आधुनिक

भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाले कई उपयोगी ग्रंथ निकले जो पुराने हो जाने पर भी आजतक इस विषय के विद्यार्थियों को काम दे रहे हैं।

जार्ज अब्रहम ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन उन्नीसवीं सदी के अंत में ही प्रारंभ कर दिया था। उन के 'बिहारी भाषाओं के सात व्याकरण' *(सेविन ग्रामर्स आव बिहारी लैंग्वेजेज़)* १८८३ ई० से १८८७ ई० तक निकल चुके थे किंतु उन की सब से बड़ी कृति 'भारतीय भाषाओं की सर्वे' *(लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया)* १८६४ ई० में प्रारंभ हुई थी और १६२७ ई० में समाप्त हुई। यह बृहत् ग्रंथ ग्यारह बड़ी बड़ी जिल्दों में है जिस में से अनेक जिल्दों में तीन चार तक पृथक् भाग हैं। ग्रियर्सन की भाषासर्वे में उत्तर भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं, उपभाषाओं तथा बोलियों के उदाहरण संगृहीत हैं और इन उदाहरणों के आधार पर समस्त मुख्य बोलियों के संक्षिप्त व्याकरण भी दिए गए हैं। जिल्द ६, भाग १ में पश्चिमी हिंदी की तथा जिल्द ६ में पूर्वी हिंदी की सामग्री है। हिंदी की भिन्न-भिन्न आधुनिक बोलियों की सीमाओं तथा उन के ठीक रूप का वैज्ञानिक वर्णन पहले-पहल इन्हीं जिल्दों में मिलता है। जिल्द १ भाग १ में संपूर्ण ग्रंथ की भूमिका है। भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास का सब से अधिक प्रामाणिक तथा क्रमबद्ध वर्णन इस भूमिका में सुगमता से मिल सकता है। प्रत्येक जिल्द में नक़्शों के होने से इस बृहत् ग्रंथ की उपादेयता और भी बढ़ गई है।

उत्तर भारत की समस्त भाषाओं की सर्वे के अतिरिक्त बीसवीं सदी में आकर कुछ आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं पर शास्त्रीय ढंग से विस्तृत काम भी हुआ है जिस में हिंदी भाषा के पूर्व इतिहास से संबंध रखने वाली थोड़ी बहुत सामग्री बिखरी पड़ी है। इन ग्रंथों में फ्रांसीसी विद्वान ज़ूल ब्लाक की फ्रांसीसी में लिखी हुई 'मराठी भाषा' पर पुस्तक *(ला फ़ार्मेसिओ द ला लांग मराते, १६१६)* तथा सुनीति कुमार चैटर्जी का 'बंगाली भाषा की

उत्पत्ति तथा विकास' पर वृहत् ग्रंथ (*आरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आव् दि बेंगाली लैंग्वेज, १९२६*) विशेष उल्लेखनीय हैं। किसी एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा पर वैज्ञानिक दृष्टि से काम करनेवाले के लिए ब्लाक का मराठी भाषा पर ग्रंथ आदर्श स्वरूप है। चैटर्जी के ग्रंथ में प्रायः प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा से संबंध रखनेवाली कुछ न कुछ उपयोगी सामग्री मौजूद है। बंगाली से संबंध रखने पर भी यह ग्रंथ आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास का विश्वकोष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। पहली जिल्द में लगभग ढाई सौ पृष्ठ की भूमिका है जिस में भाषा सर्वे की भूमिका के ढंग की बहुत सी वर्णनात्मक सामग्री दी हुई है। पहली जिल्द के शेष भाग में बंगाली ध्वनियों का इतिहास है तथा दूसरे भाग में व्याकरण के रूपों का इतिहास दिया गया है।

पूर्वी हिंदी की छत्तीसगढ़ी बोली का कुछ विस्तार के साथ वर्णन हीरालाल काव्योपाध्याय ने हिंदी में लिखा था। ग्रियर्सन ने इस का अंग्रेज़ी अनुवाद करके १९२१ ई० में छपवाया था। विस्तार तथा वैज्ञानिक विवेचन की दृष्टि से यह अध्ययन बहुत आदर्श ग्रंथ नहीं है। ब्लाक की 'मराठी भाषा' के ढंग का हिंदी भाषा से संबंध रखने वाला अध्ययन प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यापक बाबूराम सकसेना ने पहले-पहल किया। अनेक वर्षों के अध्ययन के बाद १९३१ ई० में सकसेना ने प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० लिट्० डिगरी के लिए 'अवधी के विकास' *(एवोल्यूशन आव अवधी)* पर निबंध दिया जो १९३८ ई० में प्रकाशित हो सका। अवधी बोली के इस अध्ययन में कई विशेषतायें हैं। इस ग्रंथ में पहले-पहल एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की ध्वनियों का प्रयोगात्मक-ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण तथा वर्णन किया गया है। प्रत्येक विषय तीन भागों में विभक्त है। पहले में आधुनिक अवधी की परिस्थिति का विस्तृत तथा वैज्ञानिक वर्णन है, दूसरे में प्रधानतया 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' के आधार पर पुरानी अवधी

का वर्णन है और तीसरे अंश में संक्षेप में अवधी की ध्वनियों अथवा व्याकरण के रूप का इतिहास दिया गया है। इस ग्रंथ में हिंदी की एक मुख्य बोली का प्रथम वैज्ञानिक तथा विस्तृत वर्णन मिलता है। केवल अवधी से संबंध रखने के कारण आधुनिक साहित्यिक खड़ी-बोली हिंदी अथवा प्राचीन मुख्य साहित्यिक बोली ब्रजभाषा की बहुत सी समस्याओं पर यह ग्रंथ भले ही विशेष प्रकाश न डाल सके किंतु तो भी हिंदी भाषा तथा उस की बोलियों पर काम करने के लिए यह ग्रंथ आदर्श पथप्रदर्शक के समान रहेगा। १९३५ ई० में लेखक का 'ब्रजभाषा' संबंधी ग्रंथ फ्रांसीसी भाषा में *ला लाँग ब्रज* नाम से प्रकाशित हुआ। प्राचीन तथा आधुनिक ब्रजभाषा का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन होने के अतिरिक्त ग्रंथ में दी हुई तुलनात्मक सामग्री आधुनिक भारतीय भाषाओं में ब्रजभाषा के स्थान पर विशेष प्रकाश डालती है। हिंदी की अन्य प्रमुख बोलियों, विशेषतया खड़ीबोली पर कार्य होना अभी भी शेष है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के शब्दसमूह का पहला तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन टर्नर के नेपाली भाषा के कोष (*नेपाली डिक्शनरी, १९३१*) में मिलता है। इस नेपाली-अंग्रेज़ी कोष में यथासंभव समस्त भारतीय आर्यभाषाओं के रूप देने का यत्न किया गया है। अंत में प्रत्येक भाषा की दृष्टि से शब्द-सूचियां दी हुई हैं जिन से प्रत्येक भाषा के उपलब्ध शब्द तथा उन के रूपांतर आसानी से मिल सकते हैं। अपने ढंग का पहला प्रयास होने के कारण यह कोष बहुत पूर्ण नहीं है किन्तु तो भी लेखक का परिश्रम तथा खोज अत्यंत सराहनीय है। भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाला वास्तव में यह प्रथम वैज्ञानिक नैरुक्तिक कोष है। भारतीय आर्यभाषाओं का प्रथम संक्षिप्त किंतु आद्योपांत तथा वैज्ञानिक वर्णन ब्लाक की फ्रांसीसी पुस्तक *ल ऐंदो एरियन* (१९३४) में मिलता है। इस विषय के संबंध में आज तक की खोज का सार इस में एक स्थान पर मिल जाता है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास तथा तुलनात्मक अध्ययन से संबंध रखने वाले ऐसे मुख्य-मुख्य ग्रंथों का उल्लेख ऊपर किया गया है जो हिंदी भाषा के इतिहास के अध्ययन में किसी न किसी रूप से सहायक हैं। इन ग्रंथों के अतिरिक्त विशेषतया अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी तथा जर्मन पत्रिकाओं में इस विषय पर अनेक उपयोगी लेख निकले हैं जिन में बहुत सी नई खोज मौजूद है। उदाहरण के लिए ग्रियर्सन का 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में बलात्मक स्वराघात' (ज० रा० ए० सो०, १८९५, पृ० १०९) शीर्षक लेख तथा टर्नर का 'गुजराती ध्वनिसमूह' (ज० रा० ए० सो०, १९२१, पृ० ३२९, ५०५) शीर्षक लेख अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस तरह की सामग्री से परिचय प्राप्त किए बिना इस विषय के विद्यार्थी का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता। यहां इस सामग्री का विस्तृत विवेचन संभव नहीं है।

यद्यपि यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने अंग्रेज़ी के माध्यम से इतना काम कर डाला है तथा आगे भी कर रहे हैं, किंतु अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिंदी में आज तक प्रस्तुत विषय पर विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं हो सका है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का *हिंदी भाषा* शीर्षक विवेचन (१८९०), बालमुकुंद गुप्त की *हिंदी भाषा* (१९०८ ई०), महावीर प्रसाद द्विवेदी की *हिंदी भाषा की उत्पत्ति* (१९०७ ई०) और बद्रीनाथ भट्ट की *हिंदी* (१९२४ ई०) पुस्तकाकार वर्णनात्मक निबंध मात्र हैं जिनमें से कुछ में तो हिंदी साहित्य और भाषा दोनों का ही विवेचन मिश्रित है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की *हिंदी भाषा की उत्पत्ति* के साथ हिंदी साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित *नागरी अंक और अक्षर* शीर्षक निबंध-संग्रह बहुत दिनों तक हिंदी विद्यार्थियों के पथप्रदर्शक रहे हैं। इन विषयों पर हिंदी ग्रंथ समूह की अवस्था का बोध इसी से हो सकता है। हिंदी के सिर को ऊँचा करने वाला गौरीशंकर हीराचंद ओझा का *प्राचीन भारतीय लिपि माला* (प्रथम संस्करण १८९४ ई०, द्वितीय संस्करण १८९८ ई०) शीर्षक ग्रंथ

असाधारण है किंतु इस में देवनागरी लिपि और अंकों का इतिहास है, हिंदी भाषा से इसका संबंध नहीं है। कामताप्रसाद गुरु का *हिंदी व्याकरण* (सं० १९७७) साहित्यिक खड़ीबोली के वर्णनात्मक व्याकरण की दृष्टि से अत्यंत सराहनीय है किंतु इस में व्याकरण के रूपों का इतिहास संकेत रूप में कहीं कहीं नाम मात्र को ही दिया गया है। इस व्याकरण का यह उद्देश्य भी नहीं है। लेखक का *ब्रजभाषा व्याकरण* (१९०७ ई०) हिंदी में साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रथम विस्तृत विवेचन है किंतु इस का उद्देश्य भी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक सामग्री देना नहीं है।

दुनीचंद का लिखा हुआ *पंजाबी और हिंदी का भाषा विज्ञान* (१९२५ ई०) शीर्षक ग्रंथ तुलनात्मक क्षेत्र में प्रवेश कराता है किंतु मौलिक होते हुए भी यह कृति बहुत पूर्ण नहीं है। १९२५ में श्यामसुंदर दास ने *भाषा विज्ञान* नामक ग्रंथ लिखा था जिस के *हिंदी भाषा का विकास* शीर्षक अंतिम अध्याय में पहले-पहल आधुनिक सामग्री के आधार पर भारतीय आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय तथा हिंदी भाषा के मुख्य-मुख्य रूपों का संक्षिप्त इतिहास देने का प्रयास किया गया था। यह अध्याय इसी शीर्षक से अलग पुस्तकाकार भी छपा है तथा कुछ संशोधित रूप में *हिंदी भाषा और साहित्य* ग्रंथ के पूर्वार्द्ध में भी मिलता है। हिंदी भाषा का यह विवेचन हिंदी में अपने ढंग का पहला है किंतु इस में बड़ी भारी त्रुटि यह है कि वर्णनात्मक अंश तथा ऐतिहासिक व्याकरण संबंधी अंश एक दूसरे से मिल गए हैं तथा ऐतिहासिक व्याकरण संबंधी सामग्री अत्यंत संक्षिप्त है। यह कृति हिंदी भाषा के विकास पर पुस्तकाकार विस्तृत निबंध मात्र है। यहां पर श्यामसुंदर दास तथा पद्मनारायण आचार्य के *भाषारहस्य* भाग १ (१९३५ ई०) का उल्लेख कर देना भी उचित होगा। ग्रंथ के इस प्रथम भाग में केवल ध्वनि का विषय विस्तार के साथ दिया गया है। प्राचीन भारतीय आचार्यों के मतों का यत्र तत्र समावेश इस ग्रंथ की विशेषता है। लेखक के हिंदीभाषा के इतिहास के प्रथम संस्करण

(१९३३ ई०) के उपरांत प्रकाशित होने के कारण यह ग्रंथ लेखक-द्वय को उपयोगी सिद्ध हुआ है।

प्रस्तुत *हिंदीभाषा का इतिहास* इस विषय पर हिंदी में एक विस्तृत तथा पूर्ण ग्रंथ की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास-स्वरूप है। हिंदी भाषा के इस इतिहास की सामग्री का मुख्य आधार गत साठ सत्तर वर्ष के अंदर यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों द्वारा किया गया आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाला वह कार्य है जिस का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पुस्तक में यथास्थान भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतों का उल्लेख स्थल-निर्देश सहित बराबर किया गया है। बीम्स, हार्नली तथा चैटर्जी के ऐतिहासिक अंशों से विशेष सहायता ली गई है, साथ ही पत्रिकाओं में लेखों के रूप में फैली हुई सामग्री का भी यथासंभव उपयोग किया गया है। पुस्तक का विषय-विभाग तथा विषय-विवेचन का क्रम चैटर्जी की पुस्तक के ढंग पर रक्खा गया है। हिंदी ध्वनियों का वर्णन सकसेना के अवधी ध्वनियों के वर्णन की शैली पर है। आधुनिक साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी के व्याकरण के ढाँचे को हिंदी की बोलियों में प्रतिनिधि स्वरूप मान कर प्रस्तुत ग्रंथ में उसी के रूपों का विस्तृत इतिहास देने का प्रयत्न किया गया है। ब्रज तथा अवधी बोलियों से संबंध रखने वाली विशेष ऐतिहासिक सामग्री संक्षेप में दी गई है। अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से संबंध रखने वाली तुलनात्मक सामग्री प्रस्तुत पुस्तक के क्षेत्र के बाहर पड़ती है अतः यह बिल्कुल भी नहीं दी गई है। आरंभ में एक विस्तृत भूमिका का देना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस में हिंदी भाषा तथा उसकी समकालीन तथा पूर्वकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का वर्णनात्मक परिचय है। भूमिका का मुख्य आधार ग्रियर्सन की भाषासर्वे की भूमिका में पाई जाने वाली सामग्री है जिस का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। भूमिका तथा मूल ग्रंथ में कुछ अंश ऐसे भी हैं जो साधारणतया हिंदी भाषा के इतिहास से संबंध रखने वाले ग्रंथ में नहीं होने चाहिए थे, जैसे भूमिका में

'संसार की भाषाओं का वर्गीकरण' अथवा मूल ग्रंथ में 'हिंदी ध्वनिसमूह' शीर्षक पहला ही अध्याय। किंतु हिंदी में इस प्रकार की सामग्री के अभाव के कारण तथा हिंदी भाषा के इतिहास को समझने के लिए इन विषयों की जानकारी की आवश्यकता को समझकर इन अपेक्षित रूप से असंबद्ध विषयों का भी समावेश कर लेना आवश्यक समझा गया।

ग्रंथ लिखते समय अनेक कठिनाइयां उपस्थित हुईं। सब से पहली कठिनाई पारिभाषिक शब्दों के संबंध में थी। हिंदी में भाषाशास्त्र से संबंध रखने वाले पारिभाषिक शब्द एक तो पर्याप्त नहीं हैं, दूसरे जो हैं वे सर्व-सम्मति से अभी स्वीकृत नहीं हो पाए हैं। इस कारण बहुत से नए पारिभाषिक शब्द बनाने पड़े तथा अनेक पुराने पारिभाषिक शब्दों को जाँच कर उन में से उपयुक्त शब्दों को चुनना पड़ा। भविष्य में इस विषय पर काम करने वालों की सुविधा के लिए पारिभाषिक शब्दों की हिंदी-अंग्रेज़ी तथा अंग्रेज़ी-हिंदी सूचियां पुस्तक के अंत में परिशिष्ट-स्वरूप दे दी गई हैं। ध्वनिशास्त्र संबंधी पारिभाषिक शब्दों को निश्चित करने में ग्रेहम बेली की सूची (*बुलेटिन आव दि स्कूल आव ओरियंटल स्टडीज़* भाग ३, पृ० २८९) का भी उपयोग किया गया है। दूसरी कठिनाई हिंदी तथा विदेशी नई ध्वनियों के लिये देवनागरी में नए लिपिचिह्न बनाने के संबंध में हुई। इस विषय में भी बहुत विचार करने के बाद एक निश्चित मार्ग का अवलंबन करना पड़ा। नए लिपि-चिह्नों के ढलवाने में हिंदुस्तानी एकेडेमी को विशेष व्यय करना पड़ा किंतु इन के समावेश से पुस्तक बहुत अधिक पूर्ण हो सकी है तथा इस संबंध में एक नया मार्ग खुल सका है। एक पृथक् कोष्ठक में देवनागरी लिपि के साथ अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि-चिह्न (International Phonetic System) भी दे दिए गए हैं। सामग्री के एकत्रित करने में तथा एक-एक रूप की तुलना करने में जो परिश्रम करना पड़ा वह पुस्तक पर एक दृष्टि डालने से ही विदित हो सकेगा। यह सब होने पर भी पुस्तक की त्रुटियों

को लेखक से अधिक और कोई नहीं समझ सकता। हिंदी भाषा का सर्वांगपूर्ण इतिहास तभी लिखा जा सकता है जब हिंदी की प्रत्येक बोली पर वैज्ञानिक ढंग से काम हो चुके। अभी तो इस तरह का कार्य प्रारंभ ही हुआ है। ऐसी अवस्था में हिंदी भाषा का पूर्ण इतिहास लिखने के लिए दस बीस वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती। इतनी प्रतीक्षा करना व्यवहारिक न समझ कर लेखक ने हिंदी भाषा के इतिहास के इस पूर्वरूप को हिंदी भाषा के विद्यार्थियों तथा विद्वानों के सामने रख देना आवश्यक समझा। अब तक की खोज के एक जगह एकत्रित हो जाने से आगे बढ़ने में सुभीता ही होगा। आशा है कि भविष्य में हिंदी भाषा के पूर्ण इतिहास के लिखने तथा इस विषय पर नए मार्गों में खोज करने के लिए यह ग्रंथ पथ-प्रदर्शक का काम दे सकेगा।

अपने अनन्य मित्र श्री बाबूराम सकसेना के प्रति कृतज्ञता प्रकट किए बिना यह वक्तव्य अधूरा ही रह जायगा। संपूर्ण ग्रंथ को आद्योपांत पढ़ कर आपने अनेक बहुमूल्य परामर्श दिए। इस के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों तथा नए लिपि-चिह्नों के निर्णय करने में भी आप की सम्मति सदा हितकर सिद्ध हुई। आप के विस्तृत अनुभव तथा सत्परामर्श से लेखक ने जो लाभ उठाया है उस के लिए लेखक आप का आभारी है। अनेक नए लिपि-चिह्न आदि के प्रयोग के कारण इस पुस्तक की छपाई में असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रयाग के आदर्श यंत्रालय लॉ जर्नल प्रेस तथा हिंदी साहित्य प्रेस के पूर्ण सहयोग तथा उत्साह के बिना पुस्तक का इस रूप में मुद्रित होना असंभव था। इस के लिए इन प्रेसों के संचालक हार्दिक धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं। अंत में लेखक हिंदुस्तानी ऐकेडेमी के संचालकों का विशेष आभारी है जिन की दूरदर्शिता के कारण ही ऐसे जटिल और नीरस किंतु आवश्यक विषय पर ग्रंथ प्रकाशन संभव हो सका।

संक्षिप्त-रूप

अं०	अंगरेज़ी
अ०	अरबी
अ० तत्स०	अर्द्ध तत्सम
अ० माग०	अर्द्ध मागधी
अप०	अपभ्रंश
अव०	अवधी
आ० भा० आ०	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा
इ०	इत्यादि
इ० ब्रि०	इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका
ई०	ईसवी
उदा०	उदाहरण
एक०	एकवचन
ओझा, भा० प्रा० लि०	ओझा—गौरीशंकर हीराचंद, भारतीय प्राचीन लिपिमाला (१९१८)
क़ादरी, हि० फ़ो०	क़ादरी, हिंदुस्तानी फ़ोनेटिक्स
कृ०	कृदंत
के०, हि० ग्रै०	केलाग, हिंदी ग्रैमर (१८७६ ई०)
ख० बो०	खड़ी बोली
गु०, हि० व्या०	गुरु—कामता प्रसाद, हिंदी व्याकरण (विचारार्थ संस्करण)

चै०, बे० लै०	चैटर्जी—सुनीत कुमार, बैंगाली लैंग्वेज—आरिजिन ऐन्ड डेवेलपमेंट (१९२६ ई०)
ज० रा० ए० सो०	जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी
त०	तद्धित
तत्स०	तत्सम
तद्भ०	तद्भव
दे०	देखिए
ना० प्र० प०	नागरी-प्रचारिणी पत्रिका
पं०	पंजाबी
पा०	पाली
पु०	पुल्लिंग
पू० ई०	पूर्व ईसा
पृ०	पृष्ठ
प्रा०	प्राकृत
प्रा० भा० आ०	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा
फ़ा०	फ़ारसी
बं०	बंगाली
बहु०	बहुवचन
बिहा०	बिहारी
बी०, क० ग्रै०	बीम्स, कंपैरेटिव ग्रैमर आव दि माडर्न एरियन लैंग्वेजेज़ आव इंडिया (भाग १, १८७२ ई०; भाग २, १८७५ ई०; भाग ३, १८७९ ई०)
बो०	बोली
ब्र०	ब्रजभाषा

भा०	भाग
भा० आ०	भारतीय आर्यभाषा
भा० ई०	भारत-ईरानी
भा० यू०	भारत-यूरोपीय
म० भा० आ०	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा
महा०	महाराष्ट्री
राज०	राजस्थानी
लिं० स०	लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिआ
वा०, फ़ो० इं०	वार्ड, फ़ोनेटिक्स आव इंगलिश (१९२९ ई०)
शौर०	शौरसेनी
सं०	संस्कृत
सक०, ए० अ०	सकसेना—बाबूराम, एवोल्यूशन आव अवधी (१९३८)
हा०, ई० हि० ग्रै०	हार्नली, ईस्टर्न हिंदी ग्रैमर (१८८० ई०)
हिं०	हिंदी
हिंदु०	हिंदुस्तानी

नए लिपि-चिह्न

अ ̍ — विवृत अग्र ह्रस्व अ। यह पुरानी फ़ारसी—पहलवी—में मिलता है जैसे *मसलह्*। पहलवी में दीर्घ *आ* अग्र विवृत न होकर पश्च विवृत होता है।

आ ा — विवृत अग्र दीर्घ *आ*; यह आठ प्रधान स्वरों में चौथा स्वर है।

अ़ ̵ — अर्द्धविवृत मध्य ह्रस्वार्द्ध अथवा 'उदासीन स्वर'। यह स्वर पंजाबी तथा हिंदी की कुछ बोलियों में पाया जाता है, जैसे अव० *सोरहाँ*, पजाबी *नौकर्*।

अॅ ॅ — अर्द्धविवृत पश्च ह्रस्वस्वर। यह प्रधान स्वर ओं से अधिक नीचा है [अंग्रेज़ी स्वर नं० ६, जैसे अं० नॅट् (not) बॅक्स् (box)]।

ऑ ॉ — अर्द्धविवृत पश्च दीर्घ स्वर। यह प्रधान स्वर ओं से नीचा है। अंग्रेज़ी स्वर नं० ७ ऑ के लिए इस चिह्न का प्रयोग हिंदी में प्रचलित हो गया है, जैसे अं० *ऑल* (all) *सॉ* (saw)। अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में अॅ के स्थान पर भी इस का प्रयोग होता है।

इ॑ — अर्द्धस्वर य् का शुद्ध वैदिक रूप।

इ॒ — फुसफुसाहट वाली इ जो अवधी आदि बोलियों में पाई जाती है, दे० § २४।

उ॑ — अर्द्धस्वर व् का शुद्ध वैदिक रूप।

उ॒ — फुसफुसाहट वाला उ जो अवधी आदि बोलियों में पाया जाता है, दे० § २०।

ए̥ — अर्द्धसंवृत् अग्र ह्रस्वस्वर अर्थात् ह्रस्व ए, दे० § २६ ।

ए̥ — फुसफुसाहट वाला ए̥ जो अवधी आदि कुछ बोलियों में पाया जाता है, दे० § २७ ।

ए॑ — अर्द्धविवृत् मध्य दीर्घस्वर । अंग्रेज़ी स्वर नं० ११, जैसे अं० ब॑ड् (bird) ल॑र्न (learn) ।

ऍ — अर्द्धविवृत् अग्र ह्रस्वस्वर । अंग्रेज़ी स्वर नं० ३, जैसे अं० कॉलॅज् (college), बॅंच् (bench) ।

ऍ — अर्द्धविवृत अग्र दीर्घस्वर । प्रधान स्वर नं० ३, दे० § २८ ।

ऍ — अर्द्धविवृत् अग्र ह्रस्वस्वर, किंतु प्रधान स्वर नं० ३ से काफ़ी नीचा । अंग्रेज़ी स्वर नं० ४, जैसे अं० मैन् (man) गैस् (gas) ।

ओ ो — अर्द्धसंवृत् पश्च ह्रस्वस्वर अर्थात् ह्रस्व ओ, दे० § १७ ।

ऑ ॉ — अर्द्धविवृत् पश्च ह्रस्वस्वर, दे० § १५ ।

ऑ ॉ — अर्द्धविवृत् पश्च दीर्घस्वर, दे० § १६ । प्रधान स्वर नं० ६ । अंग्रेज़ी स्वर नं० ७ जो वास्तव में ऑ के अधिक निकट है ।

ʔ — स्वरयंत्रमुखी अघोष स्पर्श व्यंजन अर्थात् अरबी 'हम्ज़ा' ।

ʕ — उपालिजिह्व घोष संघर्षी ध्वनि, अर्थात् अरबी ع ।

क़ — अलिजिह्व अघोष स्पर्श, जो अरबी में पाया जाता है । यह फ़ारसी में जिह्वामूलीय क़ हो जाता है ।

ख़ — अलिजिह्व अघोष संघर्षी । यह अरबी में पाया जाता है । फ़ारसी में यह जिह्वामूलीय ख़ हो जाता है ।

ग़ — अलिजिह्व घोष संघर्षी । यह अरबी में पाया जाता है । फ़ारसी में यह जिह्वामूलीय ग़ हो जाता है ।

च़ — स्पर्श-संघर्षी तालव्य-वर्त्स्य अघोष जो अंग्रेज़ी तथा पहलवी में है, जैसे अं० चॅअ (Chair) ।

ज्॰ स्पर्श-संघर्षी तालव्य-वर्त्स्य घोष, जैसे अं० ज्ज् (Judge)

ज़् कंठस्थान युक्त वर्त्स्य घोष संघर्षी; अरबी ظ ।

ज़् उर्दू ض की देवनागरी अनुलिपि ।

झ़् तालव्य-वर्त्स्य घोष संघर्षी अर्थात् श् का घोष रूप । यह अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि में है ।

झ़् कंठस्थान युक्त वर्त्स्य घोष पार्श्विक । यह ध्वनि अरबी में है ।

ट्॰ वर्त्स्य अघोष स्पर्श । यह ध्वनि अंग्रेज़ी में पाई जाती है । हिंदी ट् मूर्द्धन्य है, वर्त्स्य नहीं ।

ड्॰ वर्त्स्य घोष स्पर्श अर्थात् ट्॰ का घोष रूप ।

ळ् मूर्द्धन्य पार्श्विक घोष अल्पप्राण । यह ध्वनि वैदिक भाषा में थी ।

ळ्ह् मूर्द्धन्य पार्श्विक घोष महाप्राण । यह ध्वनि भी वैदिक भाषा में थी ।

त़् कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य अघोष स्पर्श, जैसे अरबी ط ।

थ़् दंत्य अघोष संघर्षी । यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेज़ी में मिलती है, जैसे अं० थ़िन् (thin), हिंदी थ् संघर्षी न होकर स्पर्श ध्वनि है ।

द़् कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य घोष स्पर्श; अरबी ض ।

द़् दंत्य घोष संघर्षी थ़् का घोष रूप । यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेज़ी में मिलती है ।

य़् वैदिक मूल अर्द्धस्वर इ̆ का रूपांतर ।

ल़् कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य घोष पार्श्विक । यह ध्वनि अरबी तथा अंग्रेज़ी में है । अंग्रेज़ी में यह अस्पष्ट ल् (dark *l*) कहलाता है ।

व कंठ्योष्ठ्य अर्द्धस्वर । हिंदी में शब्द के मध्य में आने वाले

हलंत व् का उच्चारण व़् के समान होता है, दे० § ८० । अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी आदि में भी यह ध्वनि पाई जाती है ।

स़् — कंठस्थानयुक्त वर्त्स्य अघोष संघर्षी, जैसे अरबी ص ।

स़् — उर्दू ش की अनुलिपि ।

ह् — स्वरयंत्रमुखी अघोष संघर्षी अर्थात् विसर्ग या अघोष ह् ।

ह़् — उपालिजिह्व अघोष संघर्षी, जैसे अरबी ح जो ع का घोष रूप है ।

ᳵ — वैदिक भाषा में यह उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय दोनों का लिपिचिह्न है । उपध्मानीय द्वयोष्ठ्य संघर्षी अघोष ध्वनि थी जो देवनागरी लिपि में फ़् या इसी प्रकार के किसी अन्य लिपि-चिह्न से प्रकट की जा सकती है । जिह्वामूलीय जिह्वामूलस्था-नीय संघर्षी अघोष ध्वनि थी जो ख़् के समान रही होगी ।

विशेष-चिह्न

> — यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे सं० *अग्नि* > प्रा० *अग्गि* > हि० *आग* ।

< — यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे हि० *आग* < प्रा० *अग्गि* < सं० *अग्नि* ।

* — यह चिह्न शब्दों के उन रूपों पर लगाया गया है जो वास्तव में प्राचीन भाषाओं में व्यवहृत नहीं हुए हैं, बल्कि संभावित रूप मात्र हैं, जैसे संस्कृत पक्वे का संभावित प्राकृत रूप पक्खे* ।

√ — यह धातु का चिह्न है, जैसे सं √ धृ ।

४

देवनागरी लिपि

तथा

अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपिचिह्न

अ ʌ   आ a: इ ɪ   ई ɪ: उ u   ऊ u:

ए e: ऐ ʌe   ओ o: औ ʌo

क् k   ख् kh   ग् g   घ् gɦ   ङ् ŋ

च् c   छ् ch   ज् ɟ   झ् ɟɦ   ञ् ɲ

ट् ʈ   ठ् ʈh   ड् ɖ   ढ् ɖɦ   ण् ɳ

त् t   थ् th   द् d   ध् dɦ   न् n

प् p   फ् ph   ब् b   भ् bɦ   म् m

य् j   र् r   ल् l   व् v

श् ʃ   ष् ʂ   स् s   ह् ɦ

ड़् ɽ   ढ़् ɽɦ   ◌ं m   ः h   ◌ँ ~

विषय-सूची

पृष्ठ

इतिहास

पृष्ठ

पृष्ठ

हिन्दी प्रदेश
अथवा
प्राचीन मध्यदेश
हिन्दी भाषी प्रदेश
भाषाओं की सीमाएँ
हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं के वर्गों की सीमाएँ
हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं की सीमाएँ
पंजाब
शिमला
पश्चिमी पहाड़ी
गढ़वाली
मसूरी
कमायूँनी
नैनीताल
बांगरू (कुरु)
पानीपत
हस्तिनापुर
दिल्ली
बरेली
बीकानेर
मथुरा
(शूरसेन)
नैमिषारण्य
जैसलमेर
मारवाड़ी
जोधपुर
जयपुर
आगरा
अजमेर
कन्नौज
लखनऊ
अवधी
इटावा
कानपुर
ग्वालियर
अयोध्या
भोजपुरी
जनकपुर
दरभंगा
मैथिली
(विदेह)
(कौशल)
प्रयाग
गंगा
पटना
सिंध
झाँसी
कौशाम्बी
काशी
चम्बल
(मत्स्य)
बुंदेली
उदयपुर
सोन
(काशी)
राजगृह
भागलपुर
मगही
चम्पा
सागर
पालामऊ
(मगध)
मालवी
(वत्स)
गुजरात
उज्जैन
भोपाल
(चेदि)
जबलपुर
राँची
बंगाल
इन्दौर
(अवन्ति)
नर्मदा
रतनपुर
(दक्षिण कोसल)
रायपुर
महाराष्ट्र
महानदी
अरब सागर
आन्ध्र
बंगाल की खाड़ी
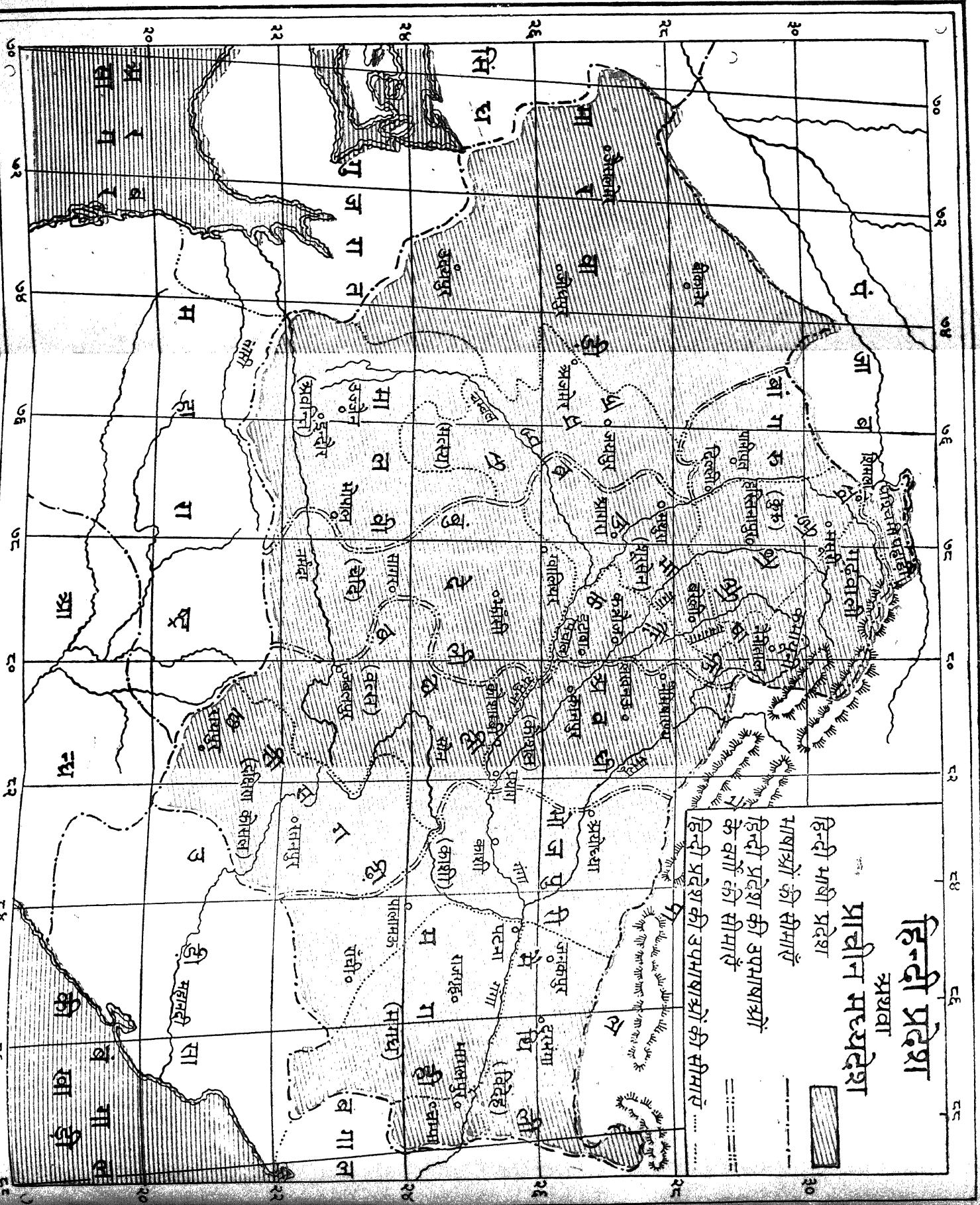
भूमिका

अ. संसार की भाषाएं और हिंदी

क. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण[1]

वंशक्रम के अनुसार भाषातत्वविज्ञ संसार को भाषाओं को कुलों, उपकुलों, शाखाओं, उपशाखाओं तथा समुदायों में विभक्त करते हैं।[2] हिंदी भाषा का संसार में कहां स्थान है यह समझने के लिए इन विभागों का संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक है। उन समस्त भाषाओं की गणना एक कुल में की जाती है जिन के संबंध में यह प्रमाणित हो चुका है कि ये सब किसी एक मूलभाषा से उत्पन्न हुई हैं। नए प्रमाण मिलने पर इस वर्गीकरण में परिवर्तन संभव है। अब तक की खोज के आधार पर संसार की भाषाएं निम्नलिखित मुख्य कुलों में विभक्त की गई हैं:—

१. भारत-यूरोपीय कुल—हमारे दृष्टिकोण से इस का स्थान सब से प्रथम है। कुछ विद्वान इस कुल को आर्य, भारत-जर्मनिक अथवा जफ़ेटिक[3] नामों से भी पुकारते हैं। इस कुल की भाषाएं उत्तर भारत, अफ़गानिस्तान, ईरान तथा प्रायः संपूर्ण यूरोप में बोली

---

[1] इ० ब्रि० (११वां संस्करण), 'फ़िलॉलोजी' शीर्षक लेख, भाग २१, पृ० ४२६ इ०

[2] भाषा क्या है, उस की उत्पत्ति कैसे हुई, आदि में मनुष्यमात्र की क्या कोई एक मूलभाषा थी, इत्यादि प्रश्न भाषाविज्ञान के विषय से संबंध रखते हैं अतः प्रस्तुत विषय के क्षेत्र से ये पूर्ण-रूप से बाहर हैं।

[3] जफ़ेटिक नाम बाइबिल के अनुसार मनुष्य-जाति के वर्गीकरण के आधार पर दिया गया था। जफ़ेटिक के अतिरिक्त मनुष्य जाति के दो अन्य विभाग सेमिटिक तथा हैमिटिक के नाम से बाइबिल में किए गए हैं। इन में से भी प्रत्येक के नाम पर एक-एक भाषाकुल का नाम पड़ा है। मनुष्य जाति के इस वर्गीकरण के शास्त्रीय होने में संदेह होने पर जफ़ेटिक नाम छोड़ दिया गया, यद्यपि शेष दो नाम अब भी प्रचलित हैं। भारत-जर्मनिक से तात्पर्य उन भाषाओं से लिया जाता था जो पूर्व में भारत से लेकर पश्चिम में जर्मनी तक बोली जाती हैं। बाद को जब यह मालूम हुआ कि जर्मनी के और भी पश्चिम में आयर्लैंड की केल्टिक भाषा भी इसी कुल की है, तब यह नाम भी

जाती हैं। संस्कृत, पाली, पुरानी ईरानी, ग्रीक, लैटिन इत्यादि प्राचीन भाषाएं इसी कुल की थीं। आजकल इस कुल में अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन, नई ईरानी, पश्तो, हिंदी, मराठी, बंगाली तथा गुजराती आदि भाषाएं हैं।

२. **सेमिटिक कुल**—प्राचीन काल की कुछ प्रसिद्ध सभ्यताओं के केंद्रों में—जैसे फ़ोनेशिया, आरमीय तथा असीरिया में—लोगों की भाषाएं इसी कुल की थीं। इन प्राचीन भाषाओं के नमूने अब केवल शिलालेखों इत्यादि में मिलते हैं। यहूदियों की प्राचीन हिब्रू भाषा जिस में मूल बाइबिल लिखी गई थी और प्राचीन अरबी भाषा जिस में क़ुरान है, इसी कुल की हैं। आजकल इस कुल की उत्तराधिकारिणी वर्तमान अरबी तथा हबशी भाषाएं हैं।

३. **हैमिटिक कुल**—इस कुल की भाषाएं उत्तर अफ़्रीका में बोली जाती हैं जिन में मिश्र देश की प्राचीन भाषा काप्टिक मुख्य है। प्राचीन काप्टिक के नमूने चित्र-लिपि में खुदे हुए मिलते हैं। उत्तर अफ़्रीका के समुद्रतट के कुछ भाग में प्रचलित लीबियन या बर्बर, पूर्व भाग के कुछ अंश में बोली जानेवाली एथिओपियन तथा सहारा मरुभूमि की हौसा भाषा इसी कुल में है। अरब के मुसलमानों के प्रभाव के कारण मिश्र देश की वर्तमान भाषा अब अरबी हो गई है। कुछ समय पूर्व मूल मिस्री भाषा काप्टिक के नाम से जीवित थी। मिस्र देश के मूल-निवासी, जो काप्टिक नाम से ही प्रसिद्ध हैं, अपनी भाषा के उद्धार का प्रयत्न कर रहे हैं।

४. **तिब्बती-चीनी कुल**—इस कुल को बौद्ध-कुल नाम देना अनुपयुक्त न होगा,

---

अनुपयुक्त समझा गया। आरंभ में भाषाशास्त्र में जर्मन विद्वानों ने अधिक कार्य किया था और यह नाम भी उन्हीं का दिया हुआ था। जर्मनी में अब भी इस कुल का यही नाम प्रचलित है। आर्य-कुल नाम सरल तथा उपयुक्त था, किंतु एक तो इस से यह भ्रम होता था कि आर्य-कुल की भाषाएं बोलने वाले सब लोग आर्य-जाति के होंगे, जो सत्य नहीं है, इस के अतिरिक्त ईरानी तथा भारतीय उपशाखाओं का संयुक्त नाम आर्य-उपकुल पड़ चुका था, अतः यह सरल नाम छोड़ देना पड़ा। भारत-यूरोपीय नाम भी बहुत उपयुक्त नहीं है। इस नाम के अनुसार भारत और यूरोप में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की गणना इस कुल में होनी चाहिए। किंतु भारत में ही द्राविड़ इत्यादि दूसरे कुलों की भाषाएं भी बोली जाती हैं। इस नाम में दूसरी त्रुटि यह है कि भारत और यूरोप के बाहर बोली जानेवाली ईरानी भाषा की उपशाखा का उल्लेख इस में नहीं हो पाता। इन त्रुटियों के रहते हुए भी इस कुल का यही नाम प्रचलित हो गया है। अंग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी विद्वान इस कुल को भारत-यूरोपीय नाम से ही पुकारते हैं।

क्योंकि जापान को छोड़ कर शेष समस्त बौद्ध धर्मावलंबी देश, जैसे चीन, तिब्बत, बर्मा, स्याम तथा हिमालय के अंदर के प्रदेश, इसी कुल की भाषाएं बोलने वालों से बसे हैं। संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में इस कुल की भाषाएं प्रचलित हैं। इन सब में चीनी भाषा मुख्य है। ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व तक चीनी भाषा के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं।

५. **यूरल-अलटाइक कुल**—इस को तूरानी या सीदियन कुल भी कहते हैं। इस कुल की भाषाएं चीन के उत्तर में मंगोलिया, मंचूरिया तथा साइबेरिया में बोली जाती हैं। तुर्की या तातारी भाषा इसी कुल की है। यूरोप में भी इस की एक शाखा गई है, जिस की भिन्न-भिन्न बोलियां रूस के कुछ पूर्वी भागों में बोली जाती हैं। कुछ विद्वान जापान तथा कोरिया की भाषाओं की गणना भी इसी कुल में करते हैं। दूसरे इन्हें तिब्बती-चीनी कुल में रखते हैं।

६. **द्राविड़ कुल**—इस कुल की भाषाएं दक्षिण-भारत में बोली जाती हैं, जिन में मुख्य तामिल, तेलगू, मलयालम तथा कन्नड हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये उत्तरभारत की आर्य-भाषाओं से बिल्कुल भिन्न हैं।

७. **मैले-पालीनेशियन कुल**—मलाका प्रायद्वीप, प्रशांत महासागर के सुमात्रा, जावा, बोर्नियो इत्यादि द्वीपों तथा अफ़्रीका के निकटवर्ती मडागास्कर द्वीप में इस कुल की भाषाएं बोली जाती हैं। न्यूज़ीलैंड की भाषा भी इसी कुल की है। भारत में संथालों इत्यादि की कोल-भाषाएं इसी कुल में गिनी जाती हैं। मलय-साहित्य तेरहवीं शताब्दी तक का पाया जाता है। जावा में भी तो ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों तक के लेख इसी कुल की भाषाओं से मिले हैं। इन देशों की सभ्यता पर भारत के हिंदूकाल का बहुत प्रभाव पड़ा था।

८. **बंटू कुल**—इस कुल की भाषाएं दक्षिणी अफ़्रीका के आदिम-निवासी बोलते हैं। ज़ंज़ीबार की स्वाहिली भाषा इसी कुल में है। यह व्यापारियों के बहुत काम की है।

९. **मध्य-अफ़्रीका कुल**—उत्तर के हैमिटिक तथा दक्षिण के बंटू कुलों के बीच में शेष मध्य-अफ़्रीका में एक तीसरे कुल की बोलियां बोली जाती हैं। इन की गिनती मध्य-अफ़्रीका कुल में की गई है। ब्रिटिश सूदान की भाषाएं इसी कुल में हैं।

१०. **अमेरिका की भाषाओं का कुल**—उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के मूल-निवासियों की बोलियों को एक पृथक् कुल में स्थान दिया गया है। मध्य-अफ़्रीका की बोलियों की तरह इन की संख्या भी बहुत है, तथा इन में आपस में भेद भी बहुत है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर बोली में अंतर हो जाता है।

११. आस्ट्रेलिया तथा प्रशांत महासागर की भाषाओं के कुल—आस्ट्रेलिया महाद्वीप तथा टस्मेनिया के मूल-निवासियों की भाषाएं एक कुल के अंतर्गत रक्खी जाती हैं। प्रशांत महासागर के छोटे-छोटे द्वीपों में दो अन्य भिन्न कुलों की भाषाएं बोली जाती हैं।

१२. शेष भाषाएं—कुछ भाषाओं का वर्गीकरण अभी तक ठीक-ठीक नहीं हो पाया है। उदाहरणार्थ काकेशिया प्रदेश की भाषाओं को किसी कुल में सम्मिलित नहीं किया जा सका है। इन में जार्जियन का प्रचार सब से अधिक है। यूरोप की बास्क तथा यूट्रस्कन नाम की भाषाएं भी बिल्कुल निराली हैं। संसार के किसी भाषा-कुल में इन की गणना नहीं की जा सकी है। यूरोप के भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं से इन का कुछ भी संबंध नहीं है।

ख. भारत-यूरोपीय कुल[1]

संसार की भाषाओं के इन बारह मुख्य कुलों में भारत-यूरोपीय कुल से हमारा विशेष संबंध है। जैसा बतलाया जा चुका है, इस कुल की भाषाएं प्रायः संपूर्ण यूरोप, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान तथा उत्तर-भारत में फैली हुई हैं। इन्हें प्रायः दो समूहों में विभक्त किया जाता है जो 'केंटुम्' और 'शतम्' समूह कहलाते हैं।[2] प्रत्येक समूह में चार-चार उपकुल हैं। इन आठों उपकुलों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

१. आर्य या भारत-ईरानी—इस उपकुल में तीन मुख्य शाखाएं हैं। प्रथम में भारतीय आर्य-भाषाएं हैं तथा दूसरे में ईरानी भाषाएं। एक तीसरी शाखा दरद या पैशाची भाषाओं की भी मानी जाने लगी है। इन का विशेष उल्लेख आगे किया जायगा।

---

[1] इ० ब्रि० (१४वां संस्करण), देखिए 'इंडो-यूरोपियन' शीर्षक लेख में भाषा-संबंधी विवेचन।

[2] भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं के दो समूहों में विभक्त करने का आधार कुछ कंठ-देशीय मूल-वर्णों (क, ख, ग, घ) का इन समूहों की भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करना है। एक समूह में ये स्पर्श व्यंजन ही रहते हैं, किंतु दूसरे में ये ऊष्म (सिबिलैंट्स) हो जाते हैं। यह भेद इन भाषाओं में पाए जानेवाले "सौ" शब्द के दो भिन्न रूपों से भली प्रकार प्रकट होता है। लैटिन में, जो प्रथम समूह की भाषाओं में से एक है, 'सौ' के लिए 'केंटुम्' शब्द आता है। किंतु संस्कृत में, जो दूसरे समूह की है, 'शतम्' रूप मिलता है। पहला समूह प्रधानतया यूरोपीय है, और 'केंटुम् समूह' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे समूह में पूर्व यूरोप, ईरान तथा भारत की आर्यभाषाएं सम्मिलित हैं। यह 'शतम् समूह' कहलाता है।

२. **आरमेनियन**—आर्य उपकुल के पश्चिम में आरमेनियन है। इस में ईरानी शब्द अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। आरमेनियन भाषा यूरोप और एशिया की भाषाओं के बीच में है।

३. **बाल्टो-स्लैवोनिक**—इस उपकुल की भाषाएं काले समुद्र के उत्तर में प्रायः संपूर्ण रूस में फैली हुई हैं। आर्य उपकुल की तरह इस की भी शाखाएं हैं। बाल्टिक शाखा में लिथूएनियन, लेटिश, और प्राचीन प्रशियन बोलियां हैं। स्लैवोनिक शाखा में बलगेरिया की प्राचीन भाषा, रूस की भाषाएं; सर्वियन, स्लोवेन, पोलैंड की भाषा, ज़ेक अथवा बोहेमियन और सर्व ये मुख्य भेद हैं।

४. **अलबेनियन**—'शतम् समूह' की अंतिम भाषा अलबेनियन है। आरमेनियन की तरह इस पर भी निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव अधिक है। इस भाषा में प्राचीन साहित्य नहीं पाया जाता।

५. **ग्रीक**—'केंटुम् समूह' की भाषाओं में यह उपकुल सब से प्राचीन है। प्रसिद्ध कवि होमर ने 'ईलियड' तथा 'ओडेसी' नामक महाकाव्य प्राचीन ग्रीक भाषा में ही लिखे थे। सुक़रात तथा अरस्तू के मूलग्रंथ भी इसी में हैं। आजकल भी यूनान देश में इसी प्राचीन भाषा की बोलियों में से एक का नवीन रूप बोला जाता है।

६. **इटैलिक**—प्राचीन रोमन साम्राज्य की लैटिन भाषा के कारण यह उपकुल विशेष आदरणीय हो गया है। यूरोप की संपूर्ण वर्तमान भाषाओं पर लैटिन और ग्रीक भाषाओं का बहुत प्रभाव पड़ा है। आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में भी विज्ञान के शब्दों का निर्माण इन्हीं प्राचीन भाषाओं के सहारे होता है। इटली, फ्रांस, स्पेन, रूमानिया तथा पुर्तगाल की वर्तमान भाषाएं लैटिन ही की पुत्रियां हैं।

७. **केल्टिक**—इस उपकुल की भाषाओं में दो मुख्य भेद हैं। एक का वर्तमान रूप आयर्लैंड में मिलता, तथा दूसरे का ग्रेट ब्रिटेन के स्काटलैंड, वेल्स तथा कार्नवाल प्रदेशों में पाया जाता है। इस उपकुल की पुरानी गाल भाषा अब जीवित नहीं है।

८. **जर्मनिक या ट्यूटानिक**—इस का प्राचीन रूप गाथिक और नार्स भाषाओं में मिलता है। प्राचीन नार्स भाषा से निकट ऐतिहासिक काल में स्वीडेन, नार्वे, डेन्मार्क तथा आइसलैंड की भाषाएं निकली हैं। जर्मन, डच, फ़्लेमिश तथा अंग्रेज़ी भाषाएं इसी कुल में हैं।

ग. आर्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल

भारत-यूरोपीय कुल के इन आठ उपकुलों में आर्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल का कुछ विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। जैसा कहा जा चुका है इस की तीन मुख्य शाखाएं हैं—१. ईरानी, २. दरद, तथा ३. भारतीय आर्यभाषा।

१. ईरानी[१]—ऐतिहासिक क्रम के अनुसार ईरान की भाषाओं के तीन भेद मिलते हैं—(अ) पुरानी ईरानी के सब से प्राचीन नमूने पारसियों के धर्मग्रंथ अवस्ता में मिलते हैं। अवस्ता के सब से पुराने भाग ईसा से लगभग चौदह शताब्दी पूर्व के माने जाते हैं। अवस्ता की भाषा ऋग्वेद की भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। इस में आश्चर्य भी नहीं, क्योंकि ईरान के प्राचीन लोग अपने को आर्य-वर्ग का मानते थे। इस का उल्लेख इन के ग्रंथों में बहुत स्थलों पर आया है। अवस्ता के बाद पुरानी ईरानी भाषा के नमूने कीलाक्षर लिपि में लिखे हुए शिला-खंडों और ईंटों पर पाए गए हैं। इन में सब से प्रसिद्ध हखामनीय वंश के महाराज दारा (५२२-४८६ ई० पू०) के शिलालेख हैं। इन लेखों में दारा अपने आर्य होने का उल्लेख गर्व के साथ करता है। (ब) पुरानी ईरानी के बाद माध्यमिक ईरानी का काल आता है। इस का मुख्य-रूप पहलवी है। ईसवी तीसरी से सातवीं शताब्दी तक ईरान में सासन-वंशी राजाओं ने राज्य किया था। उन के संरक्षण में पहलवी साहित्य ने बहुत उन्नति की थी। (स) नई ईरानी का सब से प्राचीन रूप फ़िरदौसी के शाहनामे में मिलता है। फ़िरदौसी ने सेमिटिक कुल की भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में अधिक नहीं मिलने दिया था, परंतु आजकल साहित्यिक ईरानी में अरबी शब्दों की भरमार हो गई है। रूसी तुर्किस्तान की ताज़ीकी, अफ़ग़ानिस्तान की पश्तो, तथा बलूचिस्तान की बलूची भाषाएं नई ईरानी की ही प्रशाखाएं हैं।

२. दरद[२]—यह माना जाता है कि मध्य-एशिया की ओर से आर्य लोग भारत में कदाचित् दो मुख्य मार्गों से आए थे। एक तो हिंदूकुश पर्वत के पश्चिम से होकर काबुल के मार्ग से, और दूसरे वक्षु (आक्सस) नदी के उद्गम-स्थान से सीधे दक्षिण की ओर दुर्गम पर्वतों को पार करके। इस दूसरे मार्ग से आने वाले समस्त आर्य उत्तर-भारत के मैदानों में पहुँच गए होंगे इस में संदेह है। कम से कम कुछ आर्य हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में अवश्य रह गए होंगे। इन लोगों की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव न पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि संस्कृत का विशेष रूप भारत में आने के बाद हुआ था। आजकल इन भाषाओं के बोलनेवाले काश्मीर तथा उस के उत्तर में हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में पाए जाते हैं। ये भाषाएं भारतीय-असंस्कृत आर्य-भाषाएं कहला सकती हैं। इन का दूसरा नाम पिशाच या दरद भाषाएं भी है। काश्मीरी भाषा इन्हीं में से एक है। इस पर संस्कृत का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि कुछ दिनों पूर्व तक यह भारत की

---

[१] इ० ब्रि०, १४वां संस्करण, 'ईरानियन लैंग्वेजेज़ ऐंड पर्शियन'। लि० स० भूमिका, भा० १, अ० ६, 'ईरानियन ब्रांच'।

[२] लि० स०, भूमिका, भा० १, अ० १०

शेष आर्य-भाषाओं में गिनी जाती थी। काश्मीरी भाषा प्रायः शारदा लिपि में लिखी जाती है। मुसलमान लोग फ़ारसी लिपि का व्यवहार करते हैं।

३. **भारतीय-आर्य अथवा आर्यावर्ती**—यह शाखा भी तीन कालों में विभक्त की जाती है—प्राचीन काल, मध्यकाल, तथा आधुनिक काल। (त्र) प्राचीन काल की भाषा का अनुमान ऋग्वेद के प्राचीन अंशों से हो सकता है। इस काल की भाषा का कोई चिह्न नहीं रहा है। (त्र) मध्यकाल की भाषा के बहुत उदाहरण मिलते हैं। पाली, अशोक की धर्मलिपियों की भाषा, साहित्यिक प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएं इसी काल में गिनी जाती हैं। (ज्ञ) आधुनिक काल में भारत की वर्तमान आर्य भाषाएं हैं। इन के भिन्न-भिन्न रूप आजकल समस्त उत्तर-भारत में बोले जाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन में हिंदी, बंगाली, मराठी तथा गुजराती मुख्य हैं। इस शाखा की भाषाओं का विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

संसार की भाषाओं में हिंदी का स्थान क्या है, यह अब स्पष्ट हो गया होगा। ऊपर दिए हुए पारिभाषिक नामों के सहारे संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संसार के भाषासमूहों में भारत-यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी उपकुल में भारतीय-आर्य शाखा की आधुनिक भाषाओं में से एक मुख्य भाषा हिंदी है।

आ. आर्यावर्ती अथवा भारतीय आर्यभाषाओं का इतिहास

क. आर्यों का मूल स्थान तथा भारत-प्रवेश[1]

यह स्पष्ट है कि भारत की अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं के समान हिंदी भाषा का जन्म भी आर्यों की प्राचीन भाषा से हुआ है। भारतीय आर्यों की तत्कालीन भाषा धीरे-धीरे हिंदी भाषा के रूप में कैसे परिवर्तित हो गई, यहां इसी पर विचार करना है। किंतु सबसे पहले इन भारतीय आर्यों के मूल-स्थान के संबंध में कुछ जान लेना अनुचित न होगा।[2]

---

[1] लि० स०, भूमिका, भा० १, अ० ८

[2] प्राचीन भारतीय ग्रंथों में आर्यों के भारत-आगमन के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। पुराने ढंग के भारतीय विद्वानों का मत था कि आर्य लोगों का मूल-स्थान तिब्बत में किसी जगह पर था। वहीं मनुष्य-सृष्टि हुई थी और उसी स्थान से संसार में लोग फैले। भारत में भी आर्य लोग वहीं से आए थे।

हमारे पूर्वज आर्यों का मूल निवासस्थान कहां था, इस संबंध में बहुत मतभेद है। भाषा-विज्ञान के आधार पर यूरोपीय विद्वानों का अनुमान है कि वे मध्य-एशिया अथवा दक्षिण-पूर्व यूरोप में कहीं रहते थे। यह अनुमान इस प्रकार लगाया गया है कि भारत-यूरोपीय कुल की यूरोपीय, ईरानी, तथा भारतीय प्रशाखाएं जहां पर मिली हैं, उसी के आस-पास कहीं इन भाषाओं के बोलने वालों का मूल-स्थान होना चाहिए, क्योंकि उसी जगह से ये लोग तीन भागों में विभक्त हुए होंगे। सब से पहले यूरोपीय शाखा अलग हो गई थी, क्योंकि उस की भाषाओं और शेष आर्यों की भारत-ईरानी भाषाओं में बहुत भेद है। ये शेष आर्य कदाचित् बहुत समय तक ईरान में साथ रहते रहे। बाद को एक शाखा ईरान में रह गई और दूसरी भारत में चली आई। इन दोनों शाखाओं के लोगों के प्राचीनतम ग्रंथ अवस्ता और ऋग्वेद हैं, जिन की भाषा एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलती है। उच्चारण के कुछ साधारण नियमों के अनुसार परिवर्तन करने पर दोनों भाषाओं का रूप एक हो जाता है।

भारत आनेवाले आर्य एक ही समय में नहीं आए होंगे, किंतु संभावना ऐसी है कि यह कई बार आए होंगे। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं से पता चलता है कि

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के आधार पर लोकमान्य पंडित बाल-गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती प्रदेश में आर्यों का मूल-स्थान होना प्रतिपादित किया था। इस कल्पना का खंडन करते हुए बंगाल के एक नवयुवक विद्वान ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदिक इंडिया' में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्यों का मूल-स्थान भारत में ही सरस्वती नदी के तट पर अथवा उस के उद्गम के निकट हिमालय के अंदर के हिस्से में कहीं पर था। उन के मतानुसार प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मावर्त्त देश की पवित्रता का कारण कदाचित् यही था। यहीं से जाकर आर्य लोग ईरान में बसे। भारतीय आर्यों के पश्चिम की ओर बसनेवाली कुछ अनार्य जातियां, जिन की भाषा पर आर्यभाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, बाद को भगाई जाने पर यूरोप के मूलनिवासियों को विजय करके वहां जा बसी थीं। यूरोपीय भाषाओं में इसी लिए आर्यभाषा के चिह्न बहुत कम पाए जाते हैं। वास्तव में वे आर्यभाषाएं हैं ही नहीं।

जो कुछ हो, आर्यों के मूल-स्थान के विषय में निश्चय-पूर्वक अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता। संसार के विद्वानों का, जिन में यूरोप के विद्वानों का आधिक्य है, आजकल यही मत है कि आर्यों का आदिम स्थान पूर्व-यूरोप में बाल्टिक समुद्र के निकट कहीं पर था। इस स्थान से ईरान तथा भारत की ओर आने के मार्ग के संबंध में दो मत हैं। पुराने मत के अनुसार यह मार्ग कैस्पियन समुद्र के उत्तर से मध्य-एशिया में

आर्य लोग भारत में दो बार अवश्य आए थे[1]। ऋग्वेद तथा बाद के संस्कृत साहित्य में भी इस के कुछ प्रमाण मिलते हैं[2]। यदि वे एक-दूसरे से बहुत समय के अनंतर आए होंगे, तो इन की भाषा में भी कुछ भेद हो गया होगा। पहली बार आने वाले आर्य कदाचित् काबुल की घाटी के मार्ग से आए थे, किंतु दूसरी बार आने वाले आर्य किस मार्ग से आए थे, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभावना ऐसी है कि ये लोग काबुल की घाटी के मार्ग से नहीं आए, बल्कि गिलगित और चितराल होते हुए सीधे दक्षिण की ओर उतरे थे।

पंजाब में उतरने पर इन नवागत आर्यों को अपने पुराने भाइयों से सामना करना पड़ा होगा, जो इतने दिनों तक इन से अलग रहने के कारण कुछ भिन्न-भाषा-भाषी हो गए होंगे। ये नवागत आर्य कदाचित् पूर्व पंजाब में सरस्वती नदी के निकट बस गए। इन के चारों ओर पूर्वागत आर्य बसे हुए थे। धीरे-धीरे ये नवागत आर्य फैले

होकर माना जाता था। थोड़े दिन हुए पश्चिम ईरान तथा टर्की में कुछ प्राचीन आर्य-देवताओं के नाम (मित्र, वरुण, इंद्र, नासत्य) एक लेख पर मिले हैं। यह लेख लगभग १४०० ई० पू० काल का माना जाता है। इस कारण एक नवीन मत यह हो गया है कि भारत-ईरानी बोलने वालों का एक समूह काले समुद्र के पश्चिम से होकर आया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी समूह में से कुछ लोग ईरान में बसते हुए आगे मध्य-एशिया तथा भारत की ओर बढ़ सकते हैं। मध्य-एशिया की प्रशाखा के लोग हिंदूकुश की घाटियों में हो कर बाद को दरदिस्तान तथा काश्मीर में कदाचित् जा बसे हों। ये ही वर्तमान पैशाची या दरद भाषा के बोलने वालों के पूर्वज रहे होंगे।

[1]भाषा-शास्त्र के नियमों के अनुसार भाषाओं के सूक्ष्म भेदों पर विचार करने के अनंतर हार्नली साहब (हा० ई० हि० ग्रै०, भूमिका, पृ० ३२) इसी मत पर पहुँचे थे। उन के मत में प्राचीन उत्तर भारत में दो भाषा-समुदाय थे—एक शौरसेनी भाषा-समुदाय तथा दूसरा मागधी भाषा-समुदाय। मागधी भाषा का प्रभाव भारत के पश्चिमोत्तर कोने तक था। शौरसेनी के दबाव के कारण पश्चिम में इसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो गया। ग्रियर्सन महोदय भी कुछ-कुछ इसी मत की पुष्टि करते हैं। (लि० स० भूमिका, भा० १, पृ० ११६)।

[2]ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं से अरकोसिया का राजा दिवोदास तत्कालीन जान पड़ता है। अन्य ऋचाओं में दिवोदास के पौत्र पंजाब के राजा सुदास का वर्णन सम-कालीन की भाँति है। राजा सुदास की विजयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्हों ने पुरु नाम की एक अन्य आर्य जाति पर, जो पूर्व यमुना के किनारे रहती थी, विजय प्राप्त की थी। पुरु लोगों को 'मृध्रवाच' अर्थात् अशुद्ध भाषा बोलने वाले कह

होंगे। संस्कृत साहित्य में एक 'मध्यदेश'[1] शब्द आता है। इस का व्यवहार आरंभ में केवल कुरु-पंचाल और उस के उत्तर के हिमालय प्रदेश के लिए हुआ है। बाद को इस शब्द से अभिप्रेत भूमिभाग की सीमा में विकास हुआ है। संस्कृत ग्रंथों ही के आधार पर हिमालय और विंध्य के बीच तथा सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान से प्रयाग तक का भूमि-भाग 'मध्यदेश' कहलाने लगा था। इस भूमिभाग में बसने वाले लोग उत्तम माने गए हैं और उन की भाषा भी प्रामाणिक मानी गई है। कदाचित् यह नवागत आर्यों की ही बस्ती थी, जो अपने को पूर्वागत आर्यों से श्रेष्ठ समझती थी। वर्तमान आर्य भाषाओं में भी यह भेद स्पष्ट है। प्राचीन मध्यदेश की वर्तमान भाषा हिंदी चारों ओर की शेष आर्य-भाषाओं से अपनी विशेषताओं के कारण पृथक् है। इसी भूमिभाग की शौरसेनी प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। कुछ विद्वान् साहित्यिक संस्कृत का उत्पत्ति-स्थान भी शूरसेन (मथुरा) प्रदेश ही मानते हैं।

ख. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल[2]

(१५०० ई० पू०—५०० ई० पू०)

भारतीय आर्यों की तत्कालीन भाषा का थोड़ा-बहुत रूप अब केवल ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना भिन्न-भिन्न देश-कालों में हुई

कर संबोधन किया है। उत्तर-भारत के आर्यों में इस भेद के होने के चिह्न बाद को भी बराबर मिलते हैं। ऋग्वेद में ही पश्चिम के ब्राह्मण वसिष्ठ और पूरब के क्षत्रिय विश्वामित्र की अनबन का बहुत कुछ उल्लेख है। विश्वामित्र ने रुष्ट हो कर वसिष्ठ को 'यातुधान' अर्थात् राक्षस कहा था। यह वसिष्ठ को बहुत बुरा लगा। महाभारत का कुरु और पांचालों का युद्ध भी इस भेद की ओर संकेत करता है। लैसन साहब ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि पंचाल लोग कुरुओं की अपेक्षा पहले से भारत में बसे हुए थे। रामायण से भी इस भेद-भाव की कल्पना को पुष्टि होती है। महाराज दशरथ मध्यदेश के पूर्व में कोशल जनपद के राजा थे, किंतु उन्होंने विवाह मध्यदेश के पश्चिम केकय जनपद में किया था। इक्ष्वाकु लोगों का मूल-स्थान सतलज के निकट इक्षुमती नदी के तट पर था। ये सब अनुमान तथा कल्पनाएं पश्चिमी विद्वानों की खोज के फलस्वरूप हैं।

[1]इस शब्द के विस्तृत विवेचन के लिए ना० प्र० प० भा०, ३, अं० १ में लेखक का 'मध्यदेश का विकास' शीर्षक लेख देखिए।

[2]लिं० स० भूमिका भा० १ पृ० ११, १२

थीं, किंतु उन का संपादन कदाचित् एक ही हाथ से एक ही काल में होने के कारण उस में भाषा का भेद अब अधिक नहीं पाया जाता। ऋग्वेद का संपादन पश्चिम 'मध्यदेश' अर्थात् पूर्वी भाग और गंगा के उत्तरी भाग में हुआ था, अतः यह इस भूमिभाग के आर्यों की भाषा का बहुत कुछ पता देता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक है। आर्यों की अपनी बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर अवश्य रहा होगा। उस समय के आर्यों की बोली का ठेठ रूप अब हमें कहीं नहीं मिल सकता। उस की जो थोड़ी बहुत बानगी साहित्यिक भाषा में आ गई है, उसी की खोज की जा सकती है। ऋग्वेद के अतिरिक्त उस समय की भाषा का अन्य कोई भी आधार नहीं है। ऋग्वेद का रचनाकाल ईसा से एक सहस्र वर्ष से भी अधिक पहले का माना जाता है। इन आर्यों की ठेठ बोली प्राचीन-भारतीय-आर्यभाषा कहला सकती है। इस काल की बोलचाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप ऋग्वेद में मिलता है। आर्यों को इस साहित्यिक भाषा में परिवर्तन होता रहा। इस के नमूने ब्राह्मण-ग्रंथों और सूत्र-ग्रंथों में मिलते हैं। सूत्र-काल के साहित्यिक रूप को वैयाकरणों ने बाँधना आरंभ किया। पाणिनि ने (५०० ई० पू०) उस को ऐसा जकड़ा कि उस में परिवर्तन होना बिल्कुल रुक गया। आर्यों की भाषा का यह साहित्यिक रूप संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस का प्रयोग उस समय से अब तक संपूर्ण भारत में विद्वान् लोग धर्म और साहित्य में करते आए हैं। साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त आर्यों की बोलचाल की भाषा में भी परिवर्तन होता रहा। ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलती-जुलती आर्यों की मूल बोली भी धीरे-धीरे बदली होगी। जिस समय 'मध्यदेश' में संस्कृत साहित्यिक भाषा का स्थान ले रही थी, उस समय की वहां के जन-समुदाय की बोली[1] के नमूने अब हमें प्राप्त नहीं हैं।

किंतु पूर्व में मगध अथवा कोसल की बोली का तत्कालीन परिवर्तित रूप (यह ध्यान रखना चाहिए कि वैदिक काल में मगध आदि पूर्वी प्रांतों की भी बोली भिन्न रही होगी) उस बोली में बुद्ध भगवान के धर्म-प्रचार करने के कारण सर्व-मान्य हो गया। इस मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल की मगध अथवा कोसल की बोली का कुछ नमूना हमें पाली में मिलता है। वास्तव में पाली में लोगों की बोली और साहित्यिक रूप का मिश्रण है। उत्तर भारत के आर्यों की बोली में फिर भी परिवर्तन होता रहा। आजकल के

---

[1]साहित्यिक भाषा से भिन्न लोगों की कुछ बोलियां भी अवश्य थीं, इस के प्रमाण हमें तत्कालीन संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। पतंजलि के समय में व्याकरण शास्त्र जानने-वाले केवल विद्वान ब्राह्मण शुद्ध संस्कृत बोल सकते थे। अन्य ब्राह्मण अशुद्ध संस्कृत बोलते थे, तथा साधारण लोग 'प्राकृत भाषा' (स्वाभाविक बोली) बोलते थे।

इस के भिन्न-भिन्न रूप उत्तर-भारत की वर्तमान बोलियों और उन के साहित्यिक रूपों में मिलते हैं। इस अंतिम काल को आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल नाम देना उचित होगा। खड़ीबोली हिंदी इस तृतीय काल की मध्यदेश की वर्तमान साहित्यिक भाषा है।

इन तीनों कालों के बीच में बिल्कुल अलग-अलग लकीरें नहीं खींची जा सकतीं। ऋग्वेद में जो एक-आध रूप मिलते हैं उन को यदि छोड़ दिया जाय, तो मध्यकाल के उदाहरण अधिक मात्रा में पहले-पहल अशोक की धर्म-लिपियों में (२५० ई० पू०) पाए जाते हैं। यहां यह प्राकृत प्रारंभिक अवस्था में नहीं है किंतु पूर्ण विकसित रूप में है। मध्यकाल की भाषा से आधुनिक काल की भाषा में परिवर्तन इतने सूक्ष्म ढंग से हुआ है कि दोनों के मध्य की भाषा को निश्चित रूप से किसी एक में रखना कठिन है। इन कठिनाइयों के होते हुए भी इन तीनों कालों में भाषाओं की अपनी-अपनी विशेषताएं स्पष्ट हैं। प्रथम काल में भाषा संयोगात्मक है, तथा संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग स्वतंत्रता-पूर्वक किया गया है। द्वितीय काल में भी भाषा संयोगात्मक ही रही, किंतु संयुक्त स्वरों और संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग बचाया गया है। इस काल के अंतिम साहित्यिक रूप महाराष्ट्री प्राकृत के शब्दों में तो प्रायः केवल स्वर ही स्वर रह गए, जो एक-आध व्यंजन के सहारे जुड़े हुए हैं। यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती थी। तृतीय काल में भाषा वियोगात्मक हो गई और स्वरों के बीच में फिर संयुक्त वर्ण डाले जाने लगे। वर्तमान वाह्य समुदाय की एक दो भाषाएं तो आजकल फिर संयोगात्मक होने की ओर झुक रही हैं। इस प्रकार वे प्रथम काल की भाषा का रूप धारण कर रही हैं। मालूम होता है कि परिवर्तन का यह चक्र पूर्ण हुए बिना न रहेगा।

ग. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल

(५०० ई० पू०—१००० ई०)

इस का उल्लेख किया जा चुका है कि प्रथम काल में बोलियों का भेद वर्तमान था। उस समय कम से कम दो भेद अवश्य थे—एक पूर्व-प्रदेश में पूर्वागत आर्यों की बोली, और दूसरे पश्चिम भाग अर्थात् 'मध्यदेश' में नवागत आर्यों की बोली, जिस का साहित्यिक रूप ऋग्वेद में मिलता है। पश्चिमोत्तर भाग की भी कोई पृथक् बोली थी या नहीं, इस का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

१. पाली तथा अशोक की धर्म-लिपियां (५०० ई० पू०—१ ई० पू०)—इस समय में भी बोलियों का भेद पाया जाता है। इस संबंध में महाराज अशोक की धर्म-लिपियों से पूर्व का हमें कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं मिलता। इन धर्म-लिपियों की भाषा देखने से विदित होता है कि उस समय उत्तर-भारत की भाषा में कम से कम तीन भिन्न-भिन्न रूप—पूर्वी, पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तरी—अवश्य थे। कोई दक्षिणी रूप

था या नहीं, इस संबंध में निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस काल की
हेत्यिक भाषा पाली कदाचित् शौरसेनी की किसी प्राचीन बोली के आधार पर
थी।

२. साहित्यिक प्राकृत भाषाएं (१—२०० ई०)—लोगों की बोली में बराबर
वर्तन होता रहा और अशोक की धर्म-लिपियों की भाषाएं ही बाद को 'प्राकृत' के
न से प्रसिद्ध हुईं। मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ साहित्य में इन प्राकृतों का भी
वहार होने लगा। इनमें काव्यग्रंथ तथा धर्मपुस्तकें लिखी जाने लगीं। संस्कृत नाटकों
भी इन्हें स्वतंत्रता-पूर्वक बराबर की पदवी मिलने लगी। समकालीन अथवा कुछ
य के अनंतर होनेवाले विद्वानों ने इन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण रच डाले।
हित्य और व्याकरण के प्रभाव से इन के मूल रूप में बहुत अंतर हो गया। इन
कृतों के साहित्यिक रूपों के ही नमूने आजकल हमें प्राकृत-ग्रंथों में देखने को मिलते
। उस समय की बोलियों के शुद्ध रूप के संबंध में हम लोगों को अधिक ज्ञान नहीं
। तो भी अशोक की धर्मलिपियों की भाषा की तरह उस समय भी पूर्वी और पश्चिमी
भेद तो स्पष्ट ही थे। पश्चिमी भाषा का मुख्य रूप शौरसेनी प्राकृत था और पूर्वी का
गधी प्राकृत, अर्थात् मगध या दक्षिण बिहार की भाषा। इन दोनों के बीच में कुछ
ग की भाषा का रूप मिश्रित था, यह अर्द्धमागधी कहलाती थी। महाराष्ट्री प्राकृत
ाजकल के बरार प्रांत और उस के निकटवर्ती प्रदेश में बोली जाती थी। इन के
तिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में कदाचित् एक भिन्न भाषा बोली जाती थी, जो प्रथम
कृत-काल में सिंधु नदी के तट पर बोलीजानेवाली भाषा से निकली होगी। इस भाषा
ी स्थिति का प्रमाण अपभ्रंशों से मिलता है।

३. अपभ्रंश भाषाएं (२००—१००० ई०)—साहित्य में प्रयुक्त होने
: वैयाकरणों ने 'प्राकृत' भाषाओं को कठिन अस्वाभाविक नियमों से बाँध दिया, किंतु
तन बोलियों के आधार पर उन की रचना हुई थी, वे बाँधी नहीं जा सकती थीं।
ोगों की ये बोलियां विकास को प्राप्त होती गईं। व्याकरण के नियमों के अनुकूल
जी और बँधी हुई साहित्यिक प्राकृतों के सन्मुख वैयाकरणों ने लोगों की इस नवीन
ालियों को 'अपभ्रंश' अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा का नाम दिया। भाषा-तत्ववेत्ताओं की
ष्टि में इस का वास्तविक अर्थ 'विकास को प्राप्त हुई' भाषाएं होगा।

जब साहित्यिक प्राकृतें मृत भाषाएं हो गईं, उस समय इन अपभ्रंशों का भी
ाग्य जगा और इन को भी साहित्य के क्षेत्र में स्थान मिलने लगा। साहित्यिक अप-
ंशों के लेखक अपभ्रंशों का आधार प्राकृतों को मानते थे। ये लेखक तत्कालीन बोली
आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश बना लेते

भी था या नहीं, इस संबंध में निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस काल की साहित्यिक भाषा पाली कदाचित् शौरसेनी की किसी प्राचीन बोली के आधार पर बनी थी।

२. साहित्यिक प्राकृत भाषाएं (१—५०० ई०)—लोगों की बोली में बराबर परिवर्तन होता रहा और अशोक की धर्म-लिपियों की भाषाएं ही बाद को 'प्राकृत' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। मध्यकाल में संस्कृत के साथ-साथ साहित्य में इन प्राकृतों का भी व्यवहार होने लगा। इनमें काव्यग्रंथ तथा धर्मपुस्तकें लिखी जाने लगीं। संस्कृत नाटकों में भी इन्हें स्वतंत्रता-पूर्वक बराबर की पदवी मिलने लगी। समकालीन अथवा कुछ समय के अनंतर होनेवाले विद्वानों ने इन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण रच डाले। साहित्य और व्याकरण के प्रभाव से इन के मूल रूप में बहुत अंतर हो गया। इन प्राकृतों के साहित्यिक रूपों के ही नमूने आजकल हमें प्राकृत-ग्रंथों में देखने को मिलते हैं। उस समय की बोलियों के शुद्ध रूप के संबंध में हम लोगों को अधिक ज्ञान नहीं है। तो भी अशोक की धर्मलिपियों की भाषा की तरह उस समय भी पूर्वी और पश्चिमी दो भेद तो स्पष्ट ही थे। पश्चिमी भाषा का मुख्य रूप शौरसेनी प्राकृत था और पूर्वी का मागधी प्राकृत, अर्थात् मगध या दक्षिण बिहार की भाषा। इन दोनों के बीच में कुछ भाग की भाषा का रूप मिश्रित था, यह अर्द्धमागधी कहलाती थी। महाराष्ट्री प्राकृत आजकल के बरार प्रांत और उस के निकटवर्ती प्रदेश में बोली जाती थी। इन के अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में कदाचित् एक भिन्न भाषा बोली जाती थी, जो प्रथम प्राकृत-काल में सिंधु नदी के तट पर बोली जानेवाली भाषा से निकली होगी। इस भाषा की स्थिति का प्रमाण अपभ्रंशों से मिलता है।

३. अपभ्रंश भाषाएं (५००—१००० ई०)—साहित्य में प्रयुक्त होने पर वैयाकरणों ने 'प्राकृत' भाषाओं को कठिन अस्वाभाविक नियमों से बाँध दिया, किंतु जिन बोलियों के आधार पर उन की रचना हुई थी, वे बाँधी नहीं जा सकती थीं। लोगों की ये बोलियां विकास को प्राप्त होती गईं। व्याकरण के नियमों के अनुकूल मँजी और बँधी हुई साहित्यिक प्राकृतों के सन्मुख वैयाकरणों ने लोगों की इस नवीन बोलियों को 'अपभ्रंश' अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा का नाम दिया। भाषा-तत्ववेत्ताओं की दृष्टि में इस का वास्तविक अर्थ 'विकास को प्राप्त हुई' भाषाएं होगा।

जब साहित्यिक प्राकृतें मृत भाषाएं हो गईं, उस समय इन अपभ्रंशों का भी भाग्य जगा और इन को भी साहित्य के क्षेत्र में स्थान मिलने लगा। साहित्यिक अपभ्रंशों के लेखक अपभ्रंशों का आधार प्राकृतों को मानते थे। ये लेखक तत्कालीन बोली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश बना लेते

थे, शुद्ध अपभ्रंश अर्थात् लोगों की असली बोली में नहीं लिखते थे। अतएव साहित्यिक प्राकृतों के समान साहित्यिक अपभ्रंशों से भी लोगों की तत्कालीन असली बोली का ठीक पता नहीं चल सकता। तो भी यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय, तो उस समय की बोली पर बहुत कुछ प्रकाश अवश्य पड़ सकता है।

प्रत्येक प्राकृत का एक अपभ्रंश रूप होगा, जैसे शौरसेनी प्राकृत का शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी प्राकृत का मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत का महाराष्ट्री अपभ्रंश इत्यादि। वैयाकरणों ने अपभ्रंशों को इस प्रकार विभक्त नहीं किया था। वे केवल तीन अपभ्रंशों के साहित्यिक रूप मानते थे। इन के नाम नागर, व्राचड और उपनागर थे। इन में नागर अपभ्रंश मुख्य थी। यह गुजरात के उस भाग में बोली जाती थी, जहां आजकल नागर ब्राह्मण बसते हैं। नागर ब्राह्मण विद्यानुराग के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं के नाम से कदाचित् नागरी अक्षरों का नाम पड़ा। नागर अपभ्रंश के व्याकरण के लेखक हेमचंद्र (बारहवीं शताब्दी) गुजराती ही थे। हेमचंद्र के मतानुसार नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत था। व्राचड अपभ्रंश सिंधु में बोली जाती थी। उपनागर अपभ्रंश व्राचड तथा नागर के मेल से बनी थी अतः यह पश्चिम राजस्थान और दक्षिणी पंजाब की बोली होगी। अपभ्रंशों के संबंध में हमारे ज्ञान के मुख्य आधार हेमचंद्र हैं, किंतु इन्हों ने केवल नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश का ही वर्णन किया है। मार्कंडेय के व्याकरण से भी इन अपभ्रंशों के संबंध में अधिक सहायता नहीं मिलती है। इन अपभ्रंश भाषाओं का काल छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक माना जा सकता है। अपभ्रंश भाषाएं द्वितीय काल की अंतिम अवस्था की द्योतक हैं।

घ. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल

(१००० ई० से वर्तमान समय तक)

इन में भारत की वर्तमान आर्य-भाषाओं की गणना है। इन की उत्पत्ति प्राकृत भाषाओं से नहीं हुई थी, बल्कि अपभ्रंशों से हुई थी। शौरसेनी अपभ्रंश से हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती और पहाड़ी भाषाओं का संबंध है। इन में गुजराती और राजस्थानी का संपर्क विशेषतया शौरसेनी के नागर अपभ्रंश के रूप से है। बिहारी, बंगाली, आसामी और उड़िया का संबंध मागध अपभ्रंश से है। पूर्वी हिंदी का अर्ध-मागधी अपभ्रंश से तथा मराठी का महाराष्ट्री अपभ्रंश से संबंध है। वर्तमान पश्चिमोत्तरी भाषाओं का समूह शेष रह गया। भारत के इस विभाग के लिए प्राकृतों का कोई साहित्यिक रूप नहीं मिलता। सिंधी के लिए वैयाकरणों का व्राचड अपभ्रंश का सहारा अवश्य है। लहंदा के लिए एक केकय अपभ्रंश की कल्पना की जा सकती है। यह व्राचड अपभ्रंश से मिलती-जुलती रही होगी। पंजाबी का संबंध भी केकय अपभ्रंश से

होना चाहिए, किंतु बाद को इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव बहुत पड़ा है। पहाड़ी भाषाओं के लिए खस अपभ्रंश की कल्पना की गई है, किंतु बाद को ये राजस्थानी से बहुत प्रभावित हो गई थीं।[1]

वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं का साहित्य में प्रयोग कम से कम तेरहवीं शताब्दी ईस्वी के आदि से अवश्य प्रारंभ हो गया था तथा अपभ्रंश का व्यवहार चौदहवीं शताब्दी तक साहित्य में होता रहा था। किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने में कुछ समय लगता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह कहना

---

[1]अपभ्रंशों या प्राकृत और आधुनिक आर्यभाषाओं का इस तरह का संबंध बहुत संतोषजनक नहीं मालूम पड़ता। उदाहरण के लिए बिहारी, बंगाली, उड़िया तथा आसामी भाषाओं का संबंध मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। यदि इस का केवल इतना तात्पर्य हो कि मागधी अपभ्रंश के रूपों में थोड़े से ऐसे प्रयोग पाए जाते हैं जो आजकल इन समस्त पूर्वीय आर्यभाषाओं में भी मिलते हैं तब तो ठीक है। किंतु यदि इस का यह तात्पर्य हो कि ५०० ई० से १००० ई० के बीच में बिहार, बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा में केवल एक बोली थी जिस का साहित्यिक रूप मागधी अपभ्रंश है, तब यह बात संभव नहीं मालूम होती। एक बोली बोलने वाली जनता भी यदि इतने विस्तृत भूमि-खंड में फैल कर अधिक दिन रहेगी तो उस की बोली के अनेक रूपांतर हो जाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार मागधी प्राकृत समस्त पूर्वी प्रदेशों की साहित्यिक भाषा तो भले ही रही हो किंतु १ ईसवी से ५०० ईसवी के बीच में इस प्राकृत से संबंध रखनेवाली एक ही बोली समस्त पूर्वी प्रदेशों में बोली जाती हो यह संभव नहीं प्रतीत होता। मेरी धारणा तो यह है कि मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएं मगध प्रदेश की बोली के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषाएं रही होंगी। मगध के राजनीतिक प्रभाव के कारण यहां की बोली के आधार पर बनी हुई ये साहित्यिक भाषाएं समस्त पूर्वी प्रदेशों में मान्य हो गई होंगी। इन प्राकृत तथा अपभ्रंश कालों में भी बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मिथिला तथा काशी प्रदेशों की बोलियां भिन्न-भिन्न रही होंगी। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण अपभ्रंश तथा प्राकृत काल के इन प्रदेशों की भाषा के नमूने हमें उपलब्ध नहीं हो सके। मेरे अनुमान से बोलियों का यह भेद ६०० ई० पू० के लगभग भी कदाचित् मौजूद था। इस भेद का मूलाधार आर्यों के प्राचीन जनपदों से संबंध रखता है। मेरी धारणा है कि १००० ई० पू० के लगभग काशी, मगध, विदेह, अंग, वंग आदि जनपदों के आर्यों की बोलियां आज के इन प्रदेशों की बोलियों की अपेक्षा अधिक साम्य रखते हुए भी एक-दूसरे से कुछ भिन्न अवश्य रही होंगी। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जनपद की प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में कुछ विशेषताएं

अनुचित न होगा कि मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के अंतिम रूप अपभ्रंशों से तृतीय काल की आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का आविर्भाव दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग हुआ होगा। भारत की राजनीतिक उथल-पुथल में इसी समय एक

रही होंगी जो विकास को प्राप्त हो कर आजकल की भिन्न-भिन्न भाषाएं तथा बोलियां हो गई हैं। अतः आधुनिक भाषाओं और बोलियों का मूलभेद कदाचित् १००० ई० पू० तक पहुँच सकता है।

शौरसेनी आदि अन्य अपभ्रंशों तथा प्राकृतों के संबंध में भी मेरी यही कल्पना है। शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश से आधुनिक पंजाबी राजस्थानी, गुजराती तथा पश्चिमी हिंदी निकली हो यह समझ में नहीं आता। शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश सूरसेन प्रदेश अर्थात् आजकल के ब्रज प्रदेश की उस समय की बोलियों के आधार पर बनी हुई साहित्यिक भाषाएं रही होंगी। साथ ही उस काल में अन्य प्रदेशों में भी आजकल की भाषाओं तथा बोलियों के पूर्व रूप प्रचलित रहे होंगे, जिन का प्रयोग साहित्य में न होने के कारण उन के अवशेष अब हमें नहीं मिल सकते। आजकल भी ठीक ऐसी ही परिस्थिति है।

आज बीसवीं सदी ईसवी में भागलपुर तक समस्त गंगा की घाटी में केवल एक साहित्यिक भाषा हिंदी है, जिस का मूलाधार मेरठ-बिजनौर प्रदेश की खड़ीबोली है। किंतु साथ ही मारवाड़ी, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली आदि अनेक बोलियां अपने अपने प्रदेशों में जीवित अवस्था में मौजूद हैं। साहित्य में प्रयोग न होने के कारण बीसवीं सदी की इन अनेक बोलियों के नमूने भविष्य में नहीं मिल सकेंगे। केवल खड़ी-बोली हिंदी के नमूने जीवित रह सकेंगे। किंतु इस कारण पाँच सौ वर्ष बाद यह कहना कहां तक उपयुक्त होगा कि पचीसवीं शताब्दी में गंगा की घाटी में पाई जाने वाली समस्त बोलियां खड़ीबोली हिंदी से निकली हैं। उस समय के उत्तर भारत की समस्त भाषाओं में खड़ीबोली हिंदी गंगा की घाटी की बोलियों के निकटतम अवश्य होगी किंतु यह तो दूसरी बात हुई।

प्रत्येक आधुनिक भाषा तथा बोली के प्राचीन तथा मध्यकालीन आर्यभाषा-काल के क्रमबद्ध उदाहरण मिलना संभव नहीं है। अतः इस विषय पर शास्त्रीय ढंग से विवेचन हो सकना असंभव है। तो भी अपने देश तथा अन्य देशों की आधुनिक परिस्थिति को देख कर इस तरह का अनुमान लगाना बिल्कुल स्वाभाविक होगा। कुछ प्रदेशों के संबंध में थोड़ा बहुत क्रमबद्ध अध्ययन भी संभव है। हिंदुस्तान की आधुनिक बोलियों के प्रदेशों के प्राचीन जनपदों से साम्य के संबंध में ना० प्र० प०, भा० ३, अं० ४ में विस्तार के साथ विचार प्रकट किए गए हैं।

स्मरणीय घटना हुई थी; १००० ईसवी के लगभग ही महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया था। इन आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में हमारी हिंदी भाषा भी सम्मिलित है, अतः उस का जन्मकाल भी दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग मानना होगा।

३. आधुनिक आर्यावर्त्तीं अथवा भारतीय आर्यभाषाएँ

क. वर्गीकरण

भाषातत्व के आधार पर ग्रियर्सन महोदय[1] आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को तीन उपशाखाओं में विभक्त करते हैं, जिन के अंदर छः भाषा-समुदाय मानते हैं। यह वर्गीकरण निम्न-लिखित कोष्ठक में दिखलाया गया है:—

	बोलनेवालों की संख्या १९२१ की जन-संख्या के आधार पर
अ. बाहरी उपशाखा	करोड़—लाख
पश्चिमोत्तरी समुदाय	
१. लहंदा	० — ५६
२. सिंधी	० — ४०
दक्षिणी समुदाय	
३. मराठी	२ — ६
पूर्वी समुदाय	
४. उड़िया	१ — २२
५. बंगाली	५ — ३५
६. आसामी	० — २०
७. बिहारी	२ — ७६
आ. बीच की उपशाखा	
बीच का समुदाय	
८. पूर्वी हिंदी	२ — २६

---

[1] लिं० स०, भूमिका, अ० ११, पृ० १२०

ग. भीतरी उपशाखा

अंदर का समुदाय

९. पश्चिमी हिंदी	...	...	४ — १२
१०. पंजाबी	...	...	१ — ३६
११. गुजराती	...	...	१ — ६
१२. भीली ...	...	...	० — २२
१३. खानदेशी	...	...	० — २
१४. राजस्थानी	...	...	१ — ३६

पहाड़ी समुदाय

१५. पूर्वी पहाड़ी या नैपाली	...	० — २८
१६. बीच की पहाड़ी[1]...	...	
१७. पश्चिमी पहाड़ी ...	...	

ग्रियर्सन महोदय के मतानुसार बाहरी उपशाखा की भिन्न-भिन्न भाषाओं में उच्चारण तथा व्याकरण-संबंधी कुछ ऐसे साम्य पाए जाते हैं जो उन्हें भीतरी उपशाखा की भाषाओं से पृथक् कर देते हैं।[2] उदाहरणार्थ भीतरी उपशाखा की भाषाओं के स का उच्चारण बाहरी उपशाखा की बंगाली आदि पूर्वी समुदाय की भाषाओं में श हो जाता है तथा पश्चिमोत्तरी समुदाय की कुछ भाषाओं में ह हो जाता है। संज्ञा के रूपांतरों में भी यह भेद पाया जाता है। भीतरी उपशाखा की भाषाएं अभी तक वियोगावस्था में हैं, किंतु बाहरी उपशाखा की भाषाएं इस अवस्था से निकल कर प्राचीन आर्य-भाषाओं के समान संयोगावस्था को प्राप्त कर चली हैं। उदाहरणार्थ हिंदी में संबंध-कारक, का, के, की लगा कर बनाया जाता है। इन चिह्नों का संज्ञा से पृथक् अस्तित्व है। यही कारक बंगाली में, जो बाहरी उपशाखा की भाषा है, संज्ञा में—एर लगा कर बनता है और यह चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है। क्रिया के रूपांतरों में भी इस तरह के भेद पाए जाते हैं, जैसे हिंदी में तीनों पुरुषों के सर्वनामों के साथ केवल एक मारा कृदंत रूप का व्यवहार होता है, किंतु बंगाली तथा बाहरी समुदाय की अन्य भाषाओं में अधिक रूपों का प्रयोग करना पड़ता है।

---

[1] १९२१ की जन-संख्या में बीच की पहाड़ी बोलने वालों की भाषा प्रायः हिंदी लिखी गई है, अतः इन की संख्या केवल ३८२३ दिखलाई गई है।

[2] लिं० स०, भूमिका, अ० ११

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को दो या तीन उपशाखाओं में विभक्त करने के सिद्धांत से चैटर्जी महोदय सहमत नहीं हैं, और इस संबंध में उन्हों ने पर्याप्त प्रमाण[१] भी दिए हैं। चैटर्जी महोदय के वर्गीकरण को आधार मान कर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का स्वाभाविक वर्गीकरण निम्नलिखित रीति से किया जा सकता है।[२] ग्रियर्सन साहब के समुदायों के विभाग से यह वर्गीकरण कुछ साम्य रखता है:—

क. उदीच्य (उत्तरी)
- १. सिंधी
- २. लहंदा
- ३. पंजाबी

ख. प्रतीच्य (पश्चिमी)
- ४. गुजराती

ग. मध्यदेशीय (बीच का)
- ५. राजस्थानी
- ६. पश्चिमी हिंदी
- ७. पूर्वी हिंदी
- ८. बिहारी

घ. प्राच्य (पूर्वी)
- ९. उड़िया
- १०. बंगाली
- ११. आसामी

ङ. दाक्षिणात्य (दक्षिणी)
- १२. मराठी

पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार चैटर्जी महोदय पैशाचा, दरद, या खस को मानते हैं। बाद को मध्यकाल में ये राजस्थान की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गई थीं।

---

[१] चै०, बे० लै०, § २१-३१, § ७६-७१

[२] चै०, बे० लै०, पृ० ६ मानचित्र।

ख. संक्षिप्त वर्णन

भाषा सर्वे[1] के आधार पर प्रत्येक आधुनिक भाषा का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

१. सिंधी—सिंध प्रांत में सिंधु नदी के दोनों किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा के बोलनेवाले प्रायः मुसलमान हैं, इस लिए इस में फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बड़ी स्वतंत्रता से होता है। सिंधी भाषा फ़ारसी लिपि के एक विकृत रूप में लिखी जाती है, यद्यपि निज के हिसाब-किताब में देवनागरी लिपि का एक बिगड़ा हुआ रूप व्यवहृत होता है। यह कभी-कभी गुरुमुखी में भी लिखी जाती है। सिंधी भाषा की पाँच मुख्य बोलियां हैं, जिन में से मध्य-भाग की 'बिचोली' बोली साहित्य की भाषा का स्थान लिए हुए है। सिंध प्रदेश में ही पूर्वकाल में ब्राचड देश था, जहां की प्राकृत और अपभ्रंश इस देश के अनुसार ब्राचडी नाम से प्रसिद्ध थीं। सिंध के दक्षिण में कच्छ-द्वीप में कच्छी बोली जाती है। यह सिंधी और गुजराती का मिश्रित रूप है। सिंधी भाषा में साहित्य बहुत कम है।

२. लहंदा—यह पश्चिम पंजाब की भाषा है। यह प्रदेश अब पाकिस्तान में चला गया है। लहंदा और पंजाबी भाषा की सीमाएं ऐसी मिली हुई हैं कि दोनों में भेद करना दुःसाध्य है। लहंदा पर दरद या पिशाच भाषाओं का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी प्रदेश में प्राचीन केकय देश पड़ता है जहां पैशाची प्राकृत तथा केकय अपभ्रंश बोली जाती थीं। लहंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्ची, तथा हिंदकी आदि हैं। पंजाबी में 'लहंदे की बोली' का अर्थ 'पश्चिम की बोली' है। 'लहंदा' शब्द का अर्थ सूर्यास्त की दिशा अर्थात् पश्चिम है। लहंदा में न तो विशेष साहित्य है और न यह कोई साहित्यिक भाषा ही है। एक प्रकार से यह कई मिलती-जुलती बोलियों का समूह मात्र है। लहंदा का व्याकरण और शब्दसमूह दोनों पंजाबी से बहुत कुछ भिन्न हैं। यद्यपि इस की अपनी भिन्न लिपि 'लंडा' है, किंतु आजकल यह प्रायः फ़ारसी लिपि में ही लिखी जाती है।

३. पंजाबी—पंजाबी भाषा का भूमि-भाग हिंदी के ठीक पश्चिमोत्तर में है। यह पाकिस्तानी पंजाब के पूर्व भाग तथा पश्चिमी पंजाब में बोली जाती है। पंजाब के पूर्वी भाग में हिंदी का क्षेत्र है। पंजाबी पर दरद अथवा पिशाच भाषाओं का कुछ प्रभाव शेष है। पंजाबी भाषा लहंदा से ऐसी मिली हुई है कि दोनों का अलग करना कठिन है, किंतु पश्चिमी हिंदी से इस का भेद स्पष्ट है। पंजाबी की अपनी लिपि लंडा ही है।

---

[1] लिं० स०, भूमिका भ० १३-१५

यह राजपूताने की महाजनी और काश्मीर की शारदा लिपि से मिलती-जुलती है। यह लिपि बहुत अपूर्ण है और इस के पढ़ने में बहुत कठिनता होती है। सिक्खों के गुरु अंगद (१५३८–५२ ई०) ने देवनागरी की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था। लंडा का यह नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया। आजकल पंजाबी भाषा की पुस्तकें इसी लिपि में छपती हैं। मुसलमानों के अधिक संख्या में होने के कारण पंजाब में उर्दू भाषा का प्रचार बहुत था। पंजाबी भाषा का शुद्ध रूप अमृतसर के निकट बोला जाता है। इस भाषा में साहित्य अधिक नहीं है। सिक्खों के ग्रंथ साहब की भाषा प्रायः मध्यकालीन हिंदी (ब्रज) है, यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों में लिखा गया है। पंजाबी भाषा में बोलियों का भेद अधिक नहीं है। उल्लेख-योग्य केवल एक बोली 'डोग्री' है। यह जम्मू राज्य में बोली जाती है। 'टक्करी' या 'टाकरी' नाम की इस की लिपि भी भिन्न है।

४. **गुजराती**—गुजराती भाषा गुजरात, बड़ोदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों में बोली जाती है। गुजराती में बोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नहीं है। पारसियों द्वारा अपनाई जाने के कारण गुजराती पश्चिम-भारत में व्यवसाय की भाषा हो गई है। भीली और खानदेशी बोलियों का गुजराती से बहुत संपर्क है। गुजराती का साहित्य बहुत विस्तीर्ण तो नहीं है, किंतु तो भी उत्तम अवस्था में है। गुजराती के आदिकवि नरसिंह मेहता का (जन्म १४१३ ई०) गुजरात में अब भी बहुत आदर है। प्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचंद्र भी गुजराती ही थे। यह बारहवीं शताब्दी ई० में हुए थे। इन्हों ने अपने व्याकरण में गुजरात की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। प्राचीन काल में अब तक की भाषा के क्रम-पूर्व उदाहरण केवल गुजरात में ही मिलते हैं। अन्य स्थानों की आर्यभाषाओं में यह क्रम किसी न किसी काल में टूट गया है। गुजराती पहले देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी, किंतु अब गुजरात में कैथी से मिलते-जुलते देवनागरी के बिगड़े हुए रूप का प्रचार हो गया है जो गुजराती लिपि कहलाती है।

५. **राजस्थानी**—पंजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी अथवा राजस्थान की भाषा है। एक प्रकार से यह मध्यदेश की प्राचीन भाषा का ही दक्षिण-पश्चिमी विकसित रूप है। इस विकास की अंतिम सीढ़ी गुजराती है किंतु उस में भेदों की मात्रा अधिक हो गई है। राजस्थानी में मुख्य चार बोलियां हैं:—

(१) मेवाती-अहीरवाटी—यह अलवर राज्य में तथा देहली के दक्षिण में गुड़गाँव के आस-पास बोली जाती है।

(२) मालवी—इस का केंद्र मालवा प्रदेश का वर्तमान इन्दौर राज्य है।

(३) जयपुरी-हाड़ौती—यह जयपुर, कोटा और बूंदी में बोली जाती है।

(४) मारवाड़ी-मेवाड़ी—यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमीर तथा उदयपुर राज्यों में बोली जाती है।

राजस्थानी भाषा बोलने वाले भूमिभाग में हिंदी भाषा ही साहित्यिक भाषा है। यह स्थान अभी तक राजस्थान की बोलियों में से किसी को नहीं मिल सका है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य प्रधानतया मारवाड़ी में है। पुरानी मारवाड़ी और गुजराती में बहुत कम भेद है। निज के व्यवहार में राजस्थानी महाजनी लिपि में लिखी जाती है। मारवाड़ियों के साथ महाजनी लिपि समस्त उत्तर भारत में फैल गई है। छपाई में देवनागरी लिपि का व्यवहार होता है।

६. **पश्चिमी हिंदी**—यह मनुस्मृति के 'मध्यदेश' की वर्तमान भाषा कही जा सकती है। मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जानेवाली पश्चिमी हिंदी के ही एक रूप खड़ीबोली से वर्तमान साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। इस की एक दूसरी बोली व्रजभाषा, पूर्वी हिंदी की बोली अवधी के साथ कुछ काल पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान खड़ीबोली हिंदी का स्थान लिए हुए थी। इन दो बोलियों के अतिरिक्त पश्चिमी हिंदी में और भी कई बोलियां सम्मिलित हैं किंतु साहित्य की दृष्टि से ये विशेष ध्यान देने योग्य नहीं हैं। उत्तर-मध्य-भारत का वर्तमान साहित्य खड़ीबोली हिंदी में ही लिखा जा रहा है। पढ़े-लिखे मुसलमानों में उर्दू का प्रचार है।

७. **पूर्वी हिंदी**—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, पूर्वी हिंदी का क्षेत्र पश्चिमी हिंदी के पूर्व में पड़ता है। यह कुछ बातों में पश्चिमी हिंदी से मिलती है और कुछ में बिहारी भाषा से। व्याकरण के अधिकांश रूपों में इसका संबंध पश्चिमी हिंदी से है, किंतु कुछ विशेष लक्षण पूर्वी समुदाय की भाषाओं के भी मिलते हैं। पूर्वी हिंदी भाषा में दो मुख्य बोलियां हैं—अवधी-बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी बोली का दूसरा नाम कोसली भी है। कोसल अवध का प्राचीन नाम था। तुलसीदास जी के समय से श्री रामचंद्र जी के यशोगान में प्रायः अवधी का ही प्रयोग होता रहा है। जैन-धर्म के प्रवर्तक महावीर जी ने अपने धर्म का प्रचार करने में यहां की ही प्राचीन बोली अर्द्ध-मागधी का प्रयोग किया था। बहुत सा जैन-साहित्य अर्द्ध-मागधी प्राकृत में है। अवधी-बघेली में साहित्य बहुत है। पूर्वी हिंदी प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और छपाई में तो सदा इसी का प्रयोग होता है। लिखने में कभी-कभी कैथी लिपि भी काम में आती है। अपने प्राचीन रूप अर्द्ध-मागधी प्राकृत के समान पूर्वी हिंदी अब भी बीच की भाषा है। इस के पश्चिम में शौरसेनी प्राकृत का नया रूप पश्चिमी हिंदी है और पूर्व में मागधी प्राकृत की स्थानापन्न बिहारी भाषा है।

८. **बिहारी**—यद्यपि राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से बिहार का संबंध संयुक्त प्रांत से ही रहा है, किंतु उत्पत्ति की दृष्टि से यहां की भाषा बंगाली की बहिन है। बंगाली, उड़िया और आसामी के साथ इस की उत्पत्ति भी मागध अपभ्रंश से हुई है। हिंदी भाषा बिहारी की चचेरी बहिन कही जा सकती है। मागध अपभ्रंश के बोले जाने

वाले भूमिभाग में ही आजकल बिहारी बोली जाती है। बिहारी भाषा में तीन मुख्य बोलियां हैं—

(१) मैथिली, जो गंगा के उत्तर में दर्भंगा के आस-पास बोली जाती है।

(२) मगही, जिस का केंद्र पटना और गया समझना चाहिए।

(३) भोजपुरी, जो मुख्यतया संयुक्त-प्रांत की गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों में तथा बिहार प्रांत के शाहाबाद, चंपारन और सारन ज़िलों में बोली जाती है।

इन में मैथिली और मगही एक-दूसरे के अधिक निकट हैं, किंतु भोजपुरी इन दोनों से भिन्न है। चैटर्जी महोदय भोजपुरी को मैथिली-मगही से इतना भिन्न मानते हैं कि ग्रियर्सन साहब की तरह वे इन तीनों को एक साथ रख कर बिहारी भाषा नाम देने को सहसा उद्यत नहीं हैं।[1] बिहारी तीन लिपियों में लिखी जाती है। छपाई में देवनागरी अक्षर व्यवहार में आते हैं तथा लिखने में साधारणतया कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मैथिली ब्राह्मणों की एक अपनी लिपि अलग है जो मैथिली कहलाती है और बँगला अक्षरों से बहुत मिलती हुई है। बिहारी बोले जानेवाले प्रदेश में हिंदी ही साहित्यिक भाषा है। बिहार प्रांत में शिक्षा का माध्यम भी हिंदी ही है।

९. **उड़िया**—प्राचीन उत्कल देश अथवा वर्तमान उड़ीसा प्रांत में यह भाषा बोली जाती है। इस को उत्कली अथवा ओड्री भी कहते हैं। उड़िया शब्द का शुद्ध रूप ओड़िया है। सब से प्रथम कुछ उड़िया शब्द तेरहवीं शताब्दी के एक शिलालेख में आए हैं। प्रायः एक शताब्दी के बाद का एक अन्य शिलालेख मिलता है जिस में कुछ वाक्य उड़िया भाषा में लिखे पाए गए हैं। इन शिलालेखों से विदित होता है कि उस समय तक उड़िया भाषा बहुत कुछ विकसित हो चुकी थी। उड़िया लिपि बहुत कठिन है। इस का व्याकरण बंगाली से बहुत मिलता-जुलता है, इस लिए बंगाली के कुछ पंडित इसे बंगाली भाषा की एक बोली समझते थे, किंतु यह भ्रम था। बंगाली के साथ ही उड़िया भी मागधी अपभ्रंश से निकली है। बंगाली और उड़िया आपस में बहिनें हैं। इन का संबंध मां-बेटी का नहीं है। उड़िया लोग बहुत काल तक विजित रहे हैं। आठ शताब्दी तक उड़ीसा में तैलंगों का राज्य रहा। अभी कुछ ही काल पूर्व तक नागपुर के भोंसले राजाओं ने उड़ीसा पर राज्य किया है। इन कारणों से उड़िया भाषा में तेलगू और मराठी शब्द बहुतायत से पाए जाते हैं। मुसलमानों और अंग्रेज़ों के कारण फ़ारसी और अंग्रेज़ी शब्द तो हैं ही। उड़िया साहित्य विशेषतया कृष्ण-संबंधी है।

---

[1] चै०, बे० लै०, § ४२

१०. **बंगाली**—बंगाली भाषा गंगा के मुहाने और उस के उत्तर और पश्चिम के मैदानों में बोली जाती है। गाँव तथा नगर के बंगालियों की बोली में बहुत अंतर है। साहित्य की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचार कदाचित् बंगाली में सब से अधिक है। उत्तरी, पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाली में भेद है। पूर्वी बंगाली का केंद्र ढाका है। यह भाग अब पाकिस्तान में चला गया है। हुगली के निकट बोली जानेवाली पश्चिमी बंगाली का ही एक रूप वर्तमान साहित्यिक भाषा हो गया है। बंगाली उच्चारण की विशेषता 'अ' का 'ओ' तथा 'स' का 'श' कर देना प्रसिद्ध ही है। इस भाषा का साहित्य उत्तम अवस्था में है। बंगाली लिपि पुरानी देवनागरी का ही एक रूपांतर है।

११. **असमी**—जैसा इस के नाम से प्रकट है यह असम प्रदेश में बोली जाती है। वहां के लोग इसे असमिया कहते हैं। उड़िया की तरह असमी भी बंगाली की बहिन है, बेटी नहीं। यद्यपि असमी व्याकरण बंगाली व्याकरण से बहुत भिन्न नहीं है, किंतु इन दोनों की साहित्यिक प्रगति पर ध्यान देने से इन का भेद स्पष्ट हो जाता है। असमी भाषा के प्राचीन साहित्य की यह विशेषता है कि उस में ऐतिहासिक ग्रंथों की कमी नहीं है। अन्य भारतीय आर्यभाषाओं में यह अभाव बहुत खटकता है। असमी भाषा प्रायः बंगाली लिपि में लिखी जाती है, यद्यपि इस में कुछ सुधार अवश्य कर लिए गए हैं।

१२. **मराठी**—दक्षिण में महाराष्ट्री अपभ्रंश की पुत्री मराठी भाषा है। यह बंबई प्रांत में पूना के चारों ओर, तथा बरार प्रांत और मध्य-प्रांत के दक्षिण के नागपुर आदि चार ज़िलों में बोली जाती है। इस के दक्षिण में द्राविड़ भाषाएं हैं। इस की तीन मुख्य बोलियां हैं, जिन में से पूना के निकट बोली जानेवाली देशी मराठी साहित्यिक भाषा है। मराठी प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी और छापी जाती है। नित्य के व्यवहार में 'मोड़ी' लिपि का व्यवहार होता है। इस का आविष्कार महाराज शिवाजी (१६२७–८० ई०) के सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवाजी ने किया था। मराठी का साहित्य विस्तीर्ण, लोकप्रिय तथा प्राचीन है।

१३. **पहाड़ी भाषाएं**—हिमालय के दक्षिण पार्श्व में, नेपाल में, पूर्वी पहाड़ी बोली जाती है। इस को नेपाली, पर्बतिया, गोरखाली और खसकुरा भी कहते हैं। पूर्वी पहाड़ी भाषा का विशुद्ध रूप काठमंडू की घाटी में बोला जाता है। इस में कुछ नवीन साहित्य भी है। नेपाल राज्य की अधिकांश प्रजा की भाषाएं तिब्बती-चीनी वर्ग की हैं, जिन में नेवार जाति के लोगों की भाषा 'नेवारी' मुख्य है। नेपाल के राज-दरबार में हिंदी भाषा का विशेष आदर है। नेपाली का अध्ययन जर्मन और रूसी विद्वानों ने विशेष किया है यह देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है।

माध्यमिक पहाड़ी के दो मुख्य भेद हैं—(१) कुमाउँनी, जो अल्मोड़ा, नैनीताल के प्रदेश की बोली है, और (२) गढ़वाली, जो गढ़वाल राज्य तथा मसूरी के निकट पहाड़

प्रदेश में बोली जाती है। इन दोनों बोलियों में साहित्य विशेष नहीं है। यहां के लोगों ने साहित्यिक व्यवहार के लिए हिंदी भाषा को ही अपना लिया है। ये दोनों बोलियां देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं।

पश्चिमी पहाड़ी भाषा की भिन्न-भिन्न बोलियां सरहिंद के उत्तर शिमला के निकटवर्ती प्रदेश में बोली जाती हैं। इन बोलियों का कोई सर्वमान्य मुख्य रूप नहीं है, न इन में साहित्य ही पाया जाता है। इस प्रदेश में तीस से अधिक बोलियों का पता चला है, जिन में संयुक्त-प्रांत के जौनसार-बावर प्रदेश की बोली जौनसारी, शिमला पहाड़ की बोली क्योंथली, कुलू प्रदेश की कुलूई और चंबा राज्य की चंबाली मुख्य हैं। चंबाली बोली की लिपि भिन्न है। शेष टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं।

वर्तमान पहाड़ी भाषाएं राजस्थानी से बहुत मिलती हैं। विशेषतया माध्यमिक पहाड़ी का संबंध जयपुरी से और पश्चिमी पहाड़ी का संबंध मारवाड़ी से अधिक मालूम होता है। पश्चिमी तथा मध्य-पहाड़ी प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष था। पूर्व-काल में सपादलक्ष में गूजर आकर बस गए थे। बाद को ये लोग पूर्व राजस्थान की ओर चले गए थे। मुसलमान-काल में बहुत से राजपूत फिर सपादलक्ष में आ बसे थे। जिस समय सपादलक्ष की खस जाति ने नेपाल को जीता था, उस समय खस विजेताओं के साथ यहां के राजपूत और गूजर भी शामिल थे। इस संपर्क के कारण ही राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओं में कुछ समानता पाई जाती है।

ई. हिंदी भाषा तथा बोलियाँ

क. हिंदी के आधुनिक साहित्यिक रूप

१. हिंदी—संस्कृत की स ध्वनि फ़ारसी में ह के रूप में पाई जाती है, अतः संस्कृत के 'सिंधु' और 'सिंधी' शब्दों में फ़ारसी रूप 'हिंद' और 'हिंदी' हो जाते हैं। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिंदवी' या 'हिंदी' शब्द फ़ारसी भाषा का ही है। संस्कृत, प्राकृत, अथवा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इस का व्यवहार नहीं किया गया है। फ़ारसी में 'हिंदी' का शब्दार्थ हिंद से संबंध रखने वाला है, किंतु इस का प्रयोग 'हिंद के रहनेवाले' अथवा 'हिंद की भाषा' के अर्थ में होता रहा है। 'हिंदी' शब्द के अतिरिक्त फ़ारसी से ही 'हिंदू' शब्द भी आया है। हिंदू शब्द का व्यवहार फ़ारसी में 'इस्लाम धर्म के न माननेवाले हिंदवासी' के अर्थ में प्रायः मिलता है। इसी अर्थ के साथ यह शब्द अपने देश में प्रचलित हो गया है।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' शब्द का प्रयोग हिंद या भारत में बोली जानेवाल
किसी भी आर्य, द्रविड़ अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है, किंतु आ
कल वास्तव में इसका उत्तर-भारत के मध्यदेश के हिंदुओं की वर्तमान साहित्यिक भा
के अर्थ में मुख्यतया, तथा इसी भूमि-भाग की बोलियों और उन से संबंध रखने वा
प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है। इस भूमि-भाग की सीम
पश्चिम में जैसलमीर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के
छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में राय
तथा दक्षिण-पश्चिम में खँडवा तक पहुँचती हैं। इस भूमि-भाग में हिंदुओं के आधुनि
साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, शिष्ट बोलचाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र ख
बोली हिंदी ही है। साधारणतया 'हिंदी' शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अ
में किया जाता है, किंतु साथ ही इस भूमि-भाग की ग्रामीण बोलियां—जैसे मारवा
ब्रज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन ब्रज, अवधी आदि साहित्यिक भाष
को भी हिंदी भाषा के ही अंतर्गत माना जाता है। इस समस्त भूमिभाग की जन-सं
लगभग १५ करोड़ है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिए हुए भूमिभाग में तीन-चार उपभाषाएं म
जाती हैं। राजस्थान की बोलियों के समुदाय को 'राजस्थानी' के नाम से पृथक् उप
माना गया है। बिहार की मिथिला और पटना-गया की बोलियां तथा संयुक्त-प्रांत
बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बोलियों के समूह को एक भिन्न 'बिहारी' उपभाषा म
जाता है। उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों की बोलियां भी 'पहाड़ी भाषाओं' के नाम से पृ
मानी जाती हैं। इस तरह से भाषा-शास्त्र के सूक्ष्म भेदों की दृष्टि से 'हिंदी भाषा
सीमाएं' निम्नलिखित रह जाती हैं:—उत्तर में तराई, पश्चिम में पंजाब के अंबाला
हिसार के ज़िले तथा पूर्व में फ़ैज़ाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के ज़िले। द
की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं होता और रायपुर तथा खँडवा पर ही वह
ठहरती है। इस भूमिभाग में हिंदी के दो उप-रूप माने जाते हैं, जो पश्चिमी और
हिंदी के नाम से पुकारे जाते हैं। हिंदी की इस पश्चिमी और पूर्वी बोलियों के
वालों की संख्या लगभग ८ करोड़ है। भाषा-शास्त्र से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में
भाषा' शब्द का प्रयोग इसी भूमिभाग की बोलियों तथा उन की आधारभूत सा
भाषाओं के अर्थ में होता है।

हिंदी शब्द के शब्दार्थ, साधारण प्रचलित अर्थ, तथा शास्त्रीय अर्थ के भे
स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

२. उर्दू—आधुनिक साहित्यिक हिंदी के उस दूसरे साहित्यिक रूप का
उर्दू है जिस का व्यवहार उत्तर-भारत के पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा उन से

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' शब्द का प्रयोग हिंद या भारत में बोली जानेवाली किसी भी आर्य, द्रविड़ अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है, किंतु आजकल वास्तव में इसका उत्तर-भारत के मध्यदेश के हिंदुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया, तथा इसी भूमि-भाग की बोलियों और उन से संबंध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है। इस भूमि-भाग की सीमाएं पश्चिम में जैसलमीर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खँडवा तक पहुँचती हैं। इस भूमि-भाग में हिंदुओं के आधुनिक साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, शिष्ट बोलचाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र खड़ी-बोली हिंदी ही है। साधारणतया 'हिंदी' शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है, किंतु साथ ही इस भूमि-भाग की ग्रामीण बोलियां—जैसे मारवाड़ी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन ब्रज, अवधी आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिंदी भाषा के ही अंतर्गत माना जाता है। इस समस्त भूमिभाग की जन-संख्या लगभग १५ करोड़ है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिए हुए भूमिभाग में तीन-चार उपभाषाएं मानी जाती हैं। राजस्थान की बोलियों के समुदाय को 'राजस्थानी' के नाम से पृथक् उपभाषा माना गया है। बिहार की मिथिला और पटना-गया की बोलियों तथा संयुक्त-प्रांत की बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बोलियों के समूह को एक भिन्न 'बिहारी' उपभाषा माना जाता है। उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों की बोलियां भी 'पहाड़ी भाषाओं' के नाम से पृथक् मानी जाती हैं। इस तरह से भाषा-शास्त्र के सूक्ष्म भेदों की दृष्टि से 'हिंदी भाषा की सीमाएं' निम्नलिखित रह जाती हैं:—उत्तर में तराई, पश्चिम में पंजाब के अंबाला और हिसार के ज़िले तथा पूर्व में फ़ैज़ाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के ज़िले। दक्षिण की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं होता और रायपुर तथा खँडवा पर ही वह जाकर ठहरती है। इस भूमिभाग में हिंदी के दो उप-रूप माने जाते हैं, जो पश्चिमी और पूर्वी हिंदी के नाम से पुकारे जाते हैं। हिंदी की इस पश्चिमी और पूर्वी बोलियों के बोलने वालों की संख्या लगभग ८ करोड़ है। भाषा-शास्त्र से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में 'हिंदी भाषा' शब्द का प्रयोग इसी भूमिभाग की बोलियों तथा उन की आधारभूत साहित्यिक भाषाओं के अर्थ में होता है।

हिंदी शब्द के शब्दार्थ, साधारण प्रचलित अर्थ, तथा शास्त्रीय अर्थ के भेद को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

२. उर्दू—आधुनिक साहित्यिक हिंदी के उस दूसरे साहित्यिक रूप का नाम उर्दू है जिस का व्यवहार उत्तर-भारत के पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा उन से अधिक

संपर्क में आने वाले कुछ हिंदुओं, जैसे पंजाबी, देसी काश्मीरी तथा पुरानी पीढ़ी के कायस्थों आदि में पाया जाता है। व्याकरण के रूपों की दृष्टि से इन दोनों साहित्यिक भाषाओं में विशेष अंतर नहीं है, वास्तव में दोनों का मूलाधार एक ही है, किंतु साहित्यिक वातावरण, शब्द-समूह, तथा लिपि में दोनों में आकाश-पाताल का भेद है। हिंदी इन सब बातों के लिए भारत की प्राचीन संस्कृति तथा उस के वर्तमान रूप की ओर देखती है, उर्दू भारत के वातावरण में उत्पन्न होने और बढ़ने पर भी ईरान और अरब की सभ्यता और साहित्य से जीवन-श्वास ग्रहण करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्यिक खड़ी-बोली हिंदी की अपेक्षा खड़ी-बोली उर्दू का व्यवहार पहले होने लगा था। भारतवर्ष में आने पर बहुत दिनों तक मुसलमानों का केंद्र दिल्ली रहा, अतः फ़ारसी, तुर्की, और अरबी बोलनेवाले मुसलमानों ने जनता से बातचीत और व्यवहार करने के लिए धीरे-धीरे दिल्ली के अड़ोस-पड़ोस की बोली सीखी। इस बोली में अपने विदेशी शब्द-समूह को स्वतंत्रता-पूर्वक मिला लेना इन के लिए स्वाभाविक था। इस प्रकार की बोली का व्यवहार सब से प्रथम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात् दिल्ली के महलों के बाहर क़िले की 'शाही फ़ौजी बाज़ारों' में होता था, अतः इसी से दिल्ली के पड़ोस की बोली के इस विदेशी शब्दों से मिश्रित रूप का नाम 'उर्दू' पड़ा। तुर्की भाषा में 'उर्दू' शब्द का अर्थ बाज़ार है। वास्तव में आरंभ में उर्दू बाज़ारू भाषा थी। शाही दरबार से संपर्क में आनेवाले हिंदुओं का इसे अपनाना स्वाभाविक था क्योंकि फ़ारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित किंतु अपने देश की एक बोली में इन भिन्न भाषा-भाषी विदेशियों से बातचीत करने में इन्हें सुविधा रहती होगी। जैसे ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने पर भारतीय भाषाएं बोलनेवाले भारतीय अंग्रेज़ी से अधिक प्रभावित होने लगते हैं, उसी तरह मुसलमान धर्म ग्रहण कर लेने वाले हिंदुओं में भी फ़ारसी के बाद उर्दू का विशेष आदर होना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे यह उत्तर-भारत की शिष्ट मुसलमान जनता की अपनी भाषा हो गई। शासकों द्वारा अपनाए जाने के कारण यह उत्तर-भारत के समस्त शिष्ट-समुदाय की भाषा मानी जाने लगी। जिस तरह आजकल पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी के मुँह से 'मुझे चांस (Chance) नहीं मिला' निकलता है उसी तरह, उस समय 'मुझे मौक़ा नहीं मिला' निकलता होगा। जनता इसी को 'मुझे अवसर या औसर नहीं मिला' कहती होगी, और अब भी कहती है। उर्दू का जन्म तथा प्रचार इसी प्रकार हुआ।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उर्दू का मूलाधार दिल्ली के निकट की खड़ी बोली है। यही बोली आधुनिक साहित्यिक हिंदी की भी मूलाधार है। अतः जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। विकसित होने पर इन दोनों में जो अंतर हुआ उसे रूपक में यों कह सकते हैं कि एक तो हिंदुआनी बनी रही

और दूसरी ने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया।

एक अंग्रेज़ विद्वान् ग्रेहम बेली महोदय ने उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में एक नया विचार रक्खा है। उन की समझ में उर्दू की उत्पत्ति दिल्ली में खड़ीबोली के आधार पर नहीं हुई, बल्कि इस के पहले ही पंजाबी के आधार पर यह लाहौर के आस-पास बन चुकी थी और दिल्ली में आने पर मुसलमान शासक इसे अपने साथ ही लाए थे। खड़ीबोली के प्रभाव से इस में बाद को कुछ परिवर्तन अवश्य हुए किंतु इस का मूलाधार पंजाबी को मानना चाहिए खड़ीबोली को नहीं। इस संबंध में बेली महोदय का सबसे बड़ा तर्क यह है कि दिल्ली को शासन-केंद्र बनाने के पूर्व १००० से १२०० ई० तक लगभग दो सौ वर्ष मुसलमान पंजाब में रहे। उस समय वहां की जनता से संपर्क में आने के लिए उन्हों ने कोई न कोई भाषा अवश्य सीखी होगी, और यह भाषा तत्कालीन पंजाबी ही हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि भारत में आगे बढ़ने पर वे इसी भाषा का प्रयोग करते रहे हों। बिना पूर्ण खोज के उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय सर्वसम्मत मत यही है कि उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिंदी दोनों की मूलाधार दिल्ली-मेरठ की खड़ीबोली ही है।

उर्दू का साहित्य में प्रयोग दक्षिण के सूफ़ी कवियों और मुसलमानी दरबारों से आरंभ हुआ। उस समय तक दिल्ली-आगरा के दरबार में साहित्यिक भाषा का स्थान फ़ारसी को मिला हुआ था। साधारण जन-समुदाय की भाषा होने के कारण अपने घर पर उर्दू हेय समझी जाती थी। हैदराबाद रियासत की जनता की भाषाएं भिन्न द्राविड़ वंश की थीं, अतः उन के बीच में यह मुसलमानी आर्यभाषा, शासकों की भाषा होने के कारण, विशेष गौरव की दृष्टि से देखी जाने लगी; इसी लिए उस का साहित्य में प्रयोग करना बुरा नहीं समझा गया। औरंगाबादी वली उर्दू के प्रथम प्रख्यात कवि माने जाते हैं। वली के कदमों पर ही मुग़ल-काल के उत्तरार्द्ध में दिल्ली और उस के बाद लखनऊ के मुसलमानी दरबारों में भी उर्दू भाषा में कविता करनेवाले कवियों का एक समुदाय बन गया, जिस ने इस बाज़ारू बोली को साहित्यिक भाषाओं के सिंहासन पर बैठा दिया। फ़ारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण कविता में प्रयुक्त उर्दू को 'रेख़्ता' (शब्दार्थ-मिश्रित) कहते हैं। स्त्रियों की भाषा 'रेख़्ती' कहलाती है। दक्षिणी मुसलमानों की भाषा 'दक्खिनी' उर्दू कहलाती है। इस में फ़ारसी शब्द कम इस्तेमाल होते हैं, और उत्तर-भारत की उर्दू की अपेक्षा यह कम परिमार्जित है। ये सब उर्दू के रूप-रूपांतर हैं। हिंदी भाषा के गद्य के समान उर्दू भाषा का गद्य-साहित्य में व्यवहार अंग्रेज़ी शासनकाल में विकसित हुआ। मुद्रणकला के साथ इस का प्रचार अधिक बढ़ा। उर्दू भाषा अरबी-फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाती है। पंजाब, संयुक्तप्रांत, तथा राजस्थान के कुछ राज्यों में कचहरी, तहसील और गाँव में अब भी उर्दू में ही सरकारी कागज़ लिखे जाते हैं,

अतः नौकरीपेशा हिंदुओं को भी इस की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। आगरा दिल्ली की ओर हिंदुओं में इस का अधिक प्रचार होना स्वाभाविक है। पंजाबी भाषा में साहित्य न होने के कारण पंजाबी लोगों ने तो इसे साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा है। अब हिंदी-भाषी प्रदेश में हिंदुओं के बीच में उर्दू का प्रभाव प्रतिदिन कम हो रहा है।

३. **हिंदुस्तानी**—'हिंदुस्तानी' नाम यूरोपीय लोगों का दिया हुआ है। उर्दू का बोलचाल वाला रूप हिंदुस्तानी कहलाता है। केवल बोलचाल में प्रयुक्त होने के कारण इस में फ़ारसी शब्दों की भरमार नहीं रहती, यद्यपि इस का झुकाव फ़ारसी की तरफ़ अवश्य रहता है। उत्पत्ति की दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू के समान ही इसका आधार भी खड़ीबोली है। एक तरह से यह हिंदी-उर्दू की अपेक्षा खड़ीबोली के अधिक निकट है, क्योंकि यह फ़ारसी-संस्कृत के अस्वाभाविक प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त है। दक्षिण के ठेठ द्राविड़ प्रदेशों को छोड़ कर शेष समस्त भारत में उर्दू का यह व्यवहारिक रूप हर जगह समझ लिया जाता है। कलकत्ता, हैदराबाद, बंबई, कराची, जोधपुर, पेशावर, नागपुर, काश्मीर, बनारस, पटना, लाहौर, दिल्ली, लखनऊ, आदि सब जगह हिंदुस्तानी बोली से काम निकल सकता है। अंतिम दो स्थान तो इस के घर ही हैं।

साधारण श्रेणी के लोगों के लिए लिखे गए साहित्य में हिंदुस्तानी का प्रयोग पाया जाता है। ये क़िस्से, ग़ज़लों और भजनों आदि की बाज़ारू किताबें फ़ारसी और देवनागरी दोनों लिपियों में छापी जाती हैं। हिंदुस्तानी के समान ठेठ हिंदी में कुछ साहित्यिक पुरुषों ने लिखने का प्रयास किया है। इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' तथा पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'बोलचाल' ठेठ हिंदी को साहित्यिक बनाने के प्रयोग हैं, जिन में ये सज्जन सफल नहीं हो सके।

इस पुस्तक में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग दिल्ली-मेरठ के आस-पास बोली जानेवाली गाँव की भाषा के अर्थ में किया गया है। भाषा-सर्वे में ग्रियर्सन महोदय ने इस बोली को 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' नाम दिया है। किंतु इस के लिए खड़ीबोली अथवा सिरहिंदी नाम अधिक उपयुक्त है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी या ठेठ हिंदी इन समस्त रूपों का मूलाधार यह खड़ीबोली ही है। कभी-कभी व्रजभाषा तथा अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं से भेद दिखलाने को आधुनिक साहित्यिक हिंदी को भी खड़ीबोली नाम से पुकारा जाता है[१]। व्रजभाषा और इस

---

[१] इस अर्थ में खड़ीबोली का सब से प्रथम प्रयोग लल्लूजी लाल ने प्रेमसागर की भूमिका में किया है। लल्लूजी लाल के ये वाक्य खड़ीबोली शब्द के व्यवहार पर

'साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी' का झगड़ा बहुत पुराना हो चुका है। साहित्यिक अर्थ में प्रयुक्त खड़ीबोली शब्द तथा भाषाशास्त्र की दृष्टि से प्रयुक्त खड़ीबोली शब्द के भेद को स्पष्ट-रूप से समझ लेना चाहिए। ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी सी लगती है, कदाचित् इसी कारण इस का नाम खड़ीबोली पड़ा। हिंदी-उर्दू भाषाएं साहित्यिक खड़ीबोली मात्र है। 'हिंदुस्तानी' शिष्ट लोगों की बोलचाल की कुछ परिमार्जित खड़ीबोली है।

ख. हिंदी की ग्रामीण बोलियां

ऊपर के विस्तृत विवेचन से हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी या ठेठ हिंदी तथा खड़ी बोली शब्दों के मूल अर्थ तथा शास्त्रीय अर्थ का भेद स्पष्ट हो गया होगा। हिंदी भाषा से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में इन शब्दों का शास्त्रीय अर्थ में ही प्रयोग होता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्राचीन 'मध्यदेश' की मुख्य बोलियों के समुदाय को भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिंदी नाम से पुकारा जाता है। इन में से खड़ीबोली, बाँगरू, ब्रज, कनौजी तथा बुँदेली, इन पाँच को भाषा-सर्वे में 'पश्चिमी हिंदी' नाम दिया गया है तथा अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी, इन शेष तीन को 'पूर्वी हिंदी' नाम से पुकारा गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिंदी का संबंध शौरसेनी प्राकृत तथा पूर्वी हिंदी का संबंध अर्द्धमागधी प्राकृत से जोड़ा जाता है। भाषा-सर्वे के आधार पर इन आठ बोलियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है। बिहार की ठेठ बोलियों से बहुत-कुछ भिन्न होने तथा हिंदी से विशेष घनिष्ट संबंध होने के कारण बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी बोली का वर्णन भी हिंदी की इन आठ बोलियों के साथ ही दे दिया गया है।

१. **खड़ीबोली**—खड़ीबोली या सिरहिंदी पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला ज़िले की बोली है। हिंदी आदि से इसका संबंध बतलाया जा

बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं, अतः ज्यों के त्यों नीचे उद्धृत किए जाते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिंदी के आदि रूप का भी यह उद्धरण अच्छा नमूना है। लल्लूजी लाल लिखते हैं:—"एक समै व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दशमस्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया। सो पाठशाला के लिए श्री महाराजाधिराज, सकलगुणनिधान, पुण्यवान, महाजान मारकुइस वलिजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० ई० में श्री लल्लूजी लाल कबि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ीबोली में कह नाम प्रेमसागर धरा।"

चुका है। मुसलमानी प्रभाव के निकटतम होने के कारण ग्रामीण खड़ीबोली में भी फ़ारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार हिंदी की अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक है। किंतु ये प्रायः अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूपों में प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं को तत्सम रूप में प्रयुक्त करने से खड़ीबोली में उर्दू की झलक आने लगती है। खड़ीबोली निम्नलिखित स्थानों में गाँवों में बोली जाती है:—रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भाग। इस बोली के बोलने वालों की संख्या ५३ लाख के लगभग है। इस संबंध में निम्नलिखित यूरोपीय देशों की जन-संख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे :—ग्रीस ५४ लाख, बलगेरिया ४६ लाख, तथा तीन भाषाएं बोलनेवाला स्विटज़रलैंड ३६ लाख।

२. **बाँगरू**—बाँगरू बोली जाटू या हरियानी नाम से भी प्रसिद्ध है। यह दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार ज़िलों और पड़ोस के पटियाला, नाभा, और झींद रियासतों के गाँवों में बोली जाती है। एक प्रकार से यह पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली है। बाँगरू बोलनेवालों की संख्या लगभग २२ लाख है। बाँगरू बोली की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। हिंदी-भाषी प्रदेश के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र पानीपत तथा कुरुक्षेत्र इसी बोली की सीमा के अंतर्गत पड़ते हैं, अतः इसे हिंदी की सरहदी बोली मानना अनुचित न होगा। वास्तव में यह खड़ीबोली का ही एक उपरूप है, और इस को हिंदी की स्वतंत्र बोली मानना चिंत्य है।

३. **ब्रजभाषा**—प्राचीन हिंदी साहित्य की दृष्टि से ब्रज की बोली की गिनती साहित्यिक भाषाओं में होने लगी, इस लिए आदरार्थ यह ब्रजभाषा कह कर पुकारी जाने लगी। विशुद्ध रूप में यह बोली अब भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जाती है। गुड़गाँव, भरतपुर, करौली तथा ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग में इस में राजस्थानी और बुंदेली की कुछ-कुछ झलक आने लगती है। बुलंदशहर, बदायूं और नैनीताल की तराई में खड़ीबोली का प्रभाव शुरू हो जाता है, तथा एटा, मैनपुरी और बरेली ज़िलों में कुछ कनौजीपन आने लगता है। वास्तव में पीलीभीत तथा इटावा की बोली भी कनौजी की अपेक्षा ब्रजभाषा के अधिक निकट है। ब्रजभाषा बोलनेवालों की संख्या लगभग ७६ लाख है। तुलना के लिए नीचे लिखे जन-संख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे :—टर्की ८० लाख, बेलजियम ७७ लाख, हंगरी ७८ लाख, हालैंड ६८ लाख, आस्ट्रिया ६१ लाख तथा पुर्तगाल ६० लाख।

जब से गोकुल बल्लभ-संप्रदाय का केंद्र हुआ तब से ब्रजभाषा में कृष्ण-साहित्य लिखा जाने लगा। धीरे-धीरे यह बोली समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई। १६वीं शताब्दी में साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली ब्रजभाषा की स्थानापन्न हुई।

४. **कनौजी**—कनौजी बोली का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के बीच में है।

कनौजी को पुराने कनौज राज्य की बोली समझना चाहिए। वास्तव में यह ब्रजभाषा का ही एक उपरूप है। कनौजी का केंद्र फ़र्रुखाबाद है, किंतु उत्तर में यह हरदोई, शाहजहाँपुर तथा पीलीभीत तक और दक्षिण में इटावा तथा कानपुर के पश्चिम भाग में बोली जाती है। कनौजी बोलने वालों की संख्या ४५ लाख है। ब्रजभाषा के पड़ोस में होने के कारण साहित्य के क्षेत्र में कनौजी कभी भी आगे नहीं आ सकी। इस भूमि-भाग में प्रसिद्ध कविगण तो कई हुए, किंतु इन सब ने ब्रजभाषा में ही अपनी रचनाएं कीं। वास्तव में कनौजी कोई स्वतंत्र बोली नहीं है, बल्कि ब्रजभाषा का ही एक उपरूप है।

५. **बुंदेली**—बुंदेली बुंदेलखंड की बोली है। शुद्ध रूप में यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओड़छा, सागर, नृसिंहपुर, सिओनी, तथा हुशंगाबाद में बोली जाती है। इस के कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। बुंदेली बोलने वालों की संख्या ६९ लाख के लगभग है। मध्य-काल में बुंदेलखंड साहित्य का प्रसिद्ध केंद्र रहा है, किंतु यहां होनेवाले कवियों ने भी ब्रजभाषा में ही कविता की है, यद्यपि इन की भाषा पर अपनी बुंदेली बोली का प्रभाव अधिक पाया जाता है। बुंदेली बोली और ब्रजभाषा में बहुत साम्य है। सच तो यह है कि ब्रज, कनौजी, तथा बुंदेली एक ही बोली के तीन प्रादेशिक रूप मात्र हैं।

६. **अवधी**—हरदोई ज़िले को छोड़ कर शेष अवध की बोली अवधी है। यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फ़ैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी में तो बोली ही जाती है, किंतु इन ज़िलों के अतिरिक्त दक्षिण में गंगापार, इलाहाबाद, फ़तेहपुर, कानपुर और मिर्ज़ापुर में तथा जौनपुर के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी अवधी बोलते हैं। इस मिश्रित अवधी का विस्तार मुज़फ्फ़रपुर तक है। अवधी बोलनेवालों की संख्या लगभग १ करोड़ ४२ लाख है। ब्रजभाषा के साथ अवधी में भी कुछ साहित्य लिखा गया था, यद्यपि बाद को ब्रजभाषा की प्रतिद्वंद्विता में यह ठहर न सकी। 'पद्मावत', 'रामचरितमानस' तथा 'कृष्णायन' अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रंथरत्न हैं।

७. **बघेली**—अवधी के दक्षिण में बघेली का क्षेत्र है। इस का केंद्र रीवां राज्य है, किंतु यह मध्यप्रांत के दमोह, जबलपुर, माँडला तथा बालाघाट के ज़िलों तक फैली हुई है। बघेली बोलने वालों की संख्या लगभग ४६ लाख है। जिस तरह बुंदेलखंड के कवियों ने ब्रजभाषा को अपना रक्खा था उसी तरह रीवां के दरबार में बघेली कविगण साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का आदर करते थे। नई खोज के अनुसार बघेली कोई स्वतंत्र बोली नहीं है बल्कि अवधी का ही दक्षिण रूप है।

८. छत्तीसगढ़ी—छत्तीसगढ़ी को लरिया या खल्ताही भी कहते हैं। यह मध्यप्रांत में रायपुर और बिलासपुर के ज़िलों तथा काँकेर, नंदगाँव, खैरगढ़, रायगढ़, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर, तथा जशपुर आदि राज्यों में भिन्न-भिन्न रूपों में बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी बोलने वालों को संख्या लगभग ३३ लाख है जो डेनमार्क की जनसंख्या के बिल्कुल बराबर है। मिश्रित रूपों को मिला कर बोलने वालों की संख्या ३८ लाख के लगभग हो जाती है, जो स्विटज़रलैंड की जनसंख्या से टक्कर लेने लगती है। छत्तीसगढ़ में पुराना साहित्य बिल्कुल नहीं है। कुछ नई बाज़ारू किताबें अवश्य छपी हैं।

९. भोजपुरी—यह प्राचीन काशी जनपद की बोली है। बिहार के शाहाबाद ज़िले में भोजपुर एक छोटा-सा क़स्बा और परगना है। इस बोली का नाम इसी स्थान से पड़ा है, यद्यपि यह दूर-दूर तक बोली जाती है। भोजपुरी बोली बनारस, मिर्ज़ापुर, जौनपुर, गाज़ीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़, शाहाबाद, चंपारन, सारन तथा छोटा नागपुर तक फैली पड़ी है। बोलने वालों की संख्या पूरे २ करोड़ के लगभग है। भोजपुरी में साहित्य कुछ भी नहीं है। संस्कृत का केंद्र होने के अतिरिक्त काशी हिंदी साहित्य का भी प्राचीन केंद्र रहा है, किंतु भोजपुरी बोली से घिरे रहने पर भी इस बोली का प्रयोग साहित्य मे कभी नहीं किया गया। काशी में रहते हुए भी कविगण प्राचीन काल में ब्रज तथा अवधी में और आधुनिक काल में साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी में लिखते रहे हैं। भाषा-संबंधी कुछ साम्यों को छोड़ कर शेष सब बातों में भोजपुरी प्रदेश बिहार की अपेक्षा हिंदी प्रदेश के अधिक निकट रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संयुक्तप्रांत में चार मुख्य बोलियां बोली जाती हैं—अर्थात् मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली, मथुरा-आगरा की ब्रजभाषा, लखनऊ-फ़ैज़ाबाद की अवधी, तथा बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी। कनौजी ब्रजभाषा और अवधी के बीच की एक बोली है। दिल्ली कमिश्नरी की बाँगरू बोली हिंदी की सरहदी बोली है। संयुक्तप्रांत की झाँसी कमिश्नरी, मध्यभारत तथा हिंदुस्तानी मध्यप्रांत में बुंदेली, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी के क्षेत्र हैं, जिन के केंद्र क्रम से झाँसी, रीवां तथा रायपुर हैं। इस संबंध में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी-क्षेत्र का विस्तार पश्चिम में राजस्थान तथा पूर्व में बिहार तक है, अतः राजस्थानी तथा बिहारी भाषाओं को हिंदी की उपभाषा कहा जा सकता है, और इन भाषाओं की बोलियों को भी एक प्रकार से हिंदी के अंतर्गत माना जा सकता है। राजस्थानी तथा बिहारी बोलियों का संक्षिप्त विवेचन ऊपर दिया जा चुका है।

उ. हिंदी शब्दसमूह[1]

शब्दसमूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आदि विशुद्ध रूप में आज तक चली जाती है। भाषा के माध्यम की सहायता से दो व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं, अतः भाषा का मिश्रित होना उस का स्वभाव ही समझना चाहिए। भाषा के संबंध में 'विशुद्ध' शब्द से केवल इतना ही तात्पर्य हो सकता है कि किसी विशेष काल अथवा देश में उस का वह विशेष रूप प्रचलित था या है। उन्हीं अवस्थाओं में वह भाषा विशुद्ध कहला सकती है। दूसरे देश अथवा उसी देश में दूसरे काल में उसी भाषा का रूप बदल जायगा और तब इस परिवर्तित रूप को ही 'विशुद्ध' की उपाधि मिल सकेगी। यदि भरतपुर के गाँव में आजकल 'का खन उतरे हे ह्यां' कहना विशुद्ध भाषा का प्रयोग करना है, तो मेरठ ज़िले में इसी पर लोगों को हँसी आ सकती है। मेरठ में 'कब उत्रे थे ह्यां' ऐसा कहना ही शुद्ध भाषा का प्रयोग करना हो सकता है। भरतपुर के उसी गाँव में पाँच सौ वर्ष बाद यही बात किसी दूसरे 'विशुद्ध' रूप में कही जावेगी और पाँच सौ वर्ष पहले कदाचित् भिन्न-'विशुद्ध' रूप में कही जाती रही होगी। अतः अन्य समस्त भाषाओं के समान ही हिंदी शब्दसमूह में भी अनेक जीवित तथा मृत भाषाओं का संग्रह मौजूद है।

साधारणतया हिंदी शब्दसमूह तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

क. भारतीय आर्यभाषाओं का शब्दसमूह।

ख. भारतीय अनार्यभाषाओं से आए हुए शब्द।

ग. विदेशी भाषाओं के शब्द।

क. भारतीय आर्यभाषाओं का शब्दसमूह

१. तद्भव—हिंदी शब्दसमूह में सब से अधिक संख्या उन शब्दों की है जो प्राचीन आर्यभाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होते हुए चले आ रहे हैं। वैयाकरणों की परिभाषा में ऐसे शब्दों को 'तद्भव' कहते हैं, क्योंकि ये संस्कृत से उत्पन्न माने जाते थे। इन में से अधिकांश का संबंध संस्कृत शब्दों से अवश्य जोड़ा जा सकता है, किंतु जिन शब्दों का संबंध संस्कृत से नहीं जुड़ता उन में ऐसे शब्द भी हो सकते हैं जिन का उद्गम प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के ऐसे शब्दों से हुआ हो जिन का व्यवहार इस के साहित्यिक रूप संस्कृत में न होता हो। अतः तद्भव शब्द का संस्कृत शब्द से संबंध

[1] चै०, बे० लै०, § १११-१२३। लि० स०, भूमिका, पृ० १२७ इ०

निकल आना अनिवार्य नहीं है। इस श्रेणी के शब्द प्रायः मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं में होकर हिंदी तक पहुँचे हैं, अतः इन में से अधिकांश के रूपों में बहुत परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। जनता की बोलियों में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। साहित्यिक हिंदी में इनकी संख्या कम होती जाती है, क्योंकि ये गवाँरू समझे जाते हैं। वास्तव में ये असली हिंदी शब्द हैं और इन के प्रति विशेष ममता होनी चाहिए। **कृष्ण** की अपेक्षा **कान्हा** या **कन्हैया** हिंदी का अधिक सच्चा शब्द है।

२. **तत्सम**—साहित्यिक हिंदी में तत्सम अर्थात् प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के साहित्यिक रूप अर्थात् संस्कृत के विशुद्ध शब्दों की संख्या सदा से अधिक रही है। आधुनिक साहित्यिक भाषा में तो यह संख्या और भी अधिक बढ़ती जा रही है। इस का कारण कुछ तो भाषा की नवीन आवश्यकताएं हैं किंतु अधिकतर विद्वत्ता प्रकट करने की आकांक्षा इस के मूल में रहती है। अधिकांश तत्सम शब्द आधुनिक काल में हिंदी में आए हैं। कुछ तत्सम शब्द ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से तद्भव शब्दों के बराबर ही प्राचीन हैं, किंतु ध्वनियों की दृष्टि से सरल होने के कारण इनमें परिवर्तन करने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी। जो संस्कृत शब्द आधुनिक काल में विकृत हुए हैं वे 'अर्द्धतत्सम' कहलाते हैं, जैसे **कान्ह** तद्भव रूप है किंतु **किशन** अर्द्धतत्सम रूप है, क्योंकि संस्कृत **कृष्ण** को लेकर यह आधुनिक समय में ही बिगाड़ कर बनाया गया है।

बंगाली, मराठी, पंजाबी आदि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से आए हुए शब्द हिंदी में बहुत कम हैं, क्योंकि हिंदी-भाषी लोगों ने संपर्क में आने पर भी इन भाषाओं को बोलने का कभी उद्योग नहीं किया। इन अन्य भाषाओं के शब्दसमूह पर हिंदी की छाप अधिक गहरी है।

ख. भारतीय अनार्यभाषाओं से आए हुए शब्द

हिंदी के तत्सम और तद्भव शब्दसमूह में बहुत से शब्द ऐसे हैं जो प्राचीन काल में अनार्यभाषाओं से तत्कालीन आर्यभाषाओं में ले लिए गए थे। हिंदी के लिए ये वास्तव में आर्यभाषा के ही शब्दों के समान हैं। प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्दसमूह में नहीं पाते थे उन्हें 'देशी' अर्थात् अनार्य भाषाओं से आए हुए शब्द मान लेते थे। इन वैयाकरणों ने बहुत से बिगड़े हुए तद्भव शब्दों को भी देशी समझ रक्खा था। तामिल, तेलगू आदि द्राविड़ या मुंडा कोल आदि अन्य अनार्यभाषाओं से आधुनिक काल में आए हुए शब्द हिंदी में बहुत कम हैं।

द्राविड़ भाषाओं से आए हुए शब्दों का प्रयोग हिंदी में प्रायः बुरे अर्थों में होता है। द्राविड़ 'पिल्लै' शब्द का अर्थ पुत्र होता है, वही शब्द हिंदी में 'पिल्ला' हो कर

कुत्ते के बच्चे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मूर्द्धन्य वर्णों से युक्त कुछ शब्द यदि सीधे द्राविड़ भाषाओं से नहीं आए हैं तो कम से कम उन पर द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव तो बहुत हो पड़ा है। मूर्द्धन्य वर्ण द्राविड़ भाषाओं की विशेषता है। कोल भाषाओं का हिंदी पर प्रभाव उतना स्पष्ट नहीं है। हिंदी में बीस-बीस कर के गिनने की प्रणाली कदाचित् कोल भाषाओं से आई है। कोड़ी शब्द स्वयं कोल भाषाओं से आया मालूम पड़ता है। इस तरह के कुछ शब्द और भी हैं।[1]

ग. विदेशी भाषाओं के शब्द

सैकड़ों वर्षों से विदेशी शासन में रहने के कारण हिंदी पर कुछ विदेशी भाषाओं का प्रभाव भारतीय भाषाओं की अपेक्षा भी अधिक पड़ा है। यह प्रभाव दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं : (१) मुसलमानी प्रभाव, (२) यूरोपीय प्रभाव। किंतु दोनों प्रकार के प्रभावों में सिद्धांत के रूप से बहुत कुछ समानता है। मुसलमानों तथा अंग्रेज़ों दोनों के शासक होने के कारण एक ही ढंग का शब्दसमूह इन की भाषाओं से हिंदी में आया है। विदेशी शब्दों को हम दो श्रेणियों में रख सकते हैं—

(क) विदेशी संस्थाओं में जैसे कचहरी, फ़ौज, स्कूल, धर्म आदि से संबंध रखने वाले शब्द।

(ख) विदेशी प्रभाव के कारण आई हुई नई वस्तुओं के नाम, जैसे नए पहनावे, खाने, यंत्र तथा खेल आदि की वस्तुओं के नाम।

१. फ़ारसी, अरबी, तुर्की तथा पश्तो शब्द—१००० ई० के लगभग फ़ारसी बोलनेवाले तुर्कों ने पंजाब पर कब्ज़ा कर लिया था अतः इन के प्रभाव से तत्कालीन हिंदी प्रभावित होने लगी थी। रासो तक में फ़ारसी शब्दों की संख्या कम नहीं है। १२०० ई० के बाद लगभग ६०० वर्ष तक हिंदी-भाषी जनता पर तुर्क, अफ़ग़ान, तथा मुग़लों का शासन रहा अतः इस समय सैकड़ों विदेशी शब्द गाँव की बोली तक में घुस आए। तुलसी और सूर जैसे वैष्णव महाकवियों की विशुद्ध हिंदी भी विदेशी शब्दों के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी। हिंदी में प्रचलित विदेशी शब्दों में सब से अधिक संख्या फ़ारसी शब्दों की है, क्योंकि समस्त मुसलमान शासकों ने, चाहे वे किसी भी नसल के क्यों न हों, फ़ारसी को ही दरबारी तथा साहित्यिक भाषा की तरह अपना रक्खा था।

---

[1] बंगाली में प्रयुक्त टवर्ग से युक्त देशी शब्दों के लिए देखिए चै०. बें० लै०, § २६८-२७२

अरबी तथा तुर्की[1] आदि के जो शब्द हिंदी में मिलते हैं वे फ़ारसी से होकर ही हिंदी में आए हैं।

२. यूरोपीय भाषाओं के शब्द—लगभग १५०० ई० से यूरोप के लोगों का भारत में आना-जाना प्रारंभ हो गया था, किंतु क़रीब तीन सौ वर्ष तक हिंदी-भाषी इन के संपर्क में अधिक नहीं आए, क्योंकि यूरोपीय लोग समुद्र के रास्ते से भारत में आए थे, अतः इन का कार्यक्षेत्र प्रारंभ में समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों में ही विशेष रहा। इसी कारण प्राचीन हिंदी साहित्य में यूरोपीय भाषाओं के शब्द नहीं के बराबर हैं। १८०० ई० के लगभग हिंदी-भाषी प्रदेश मुग़लों के हाथ से निकल कर अंग्रेज़ी शासन में चला गया। गत सवा-सौ वर्षों में हिंदी शब्द-समूह पर अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।[2]

---

[1] हिंदुस्तान के ग़ज़नी, ग़ोर और गुलाम आदि आरंभ के वंशों के मुसलमानी बादशाहों तथा भारतीय मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक बाबर की मातृभाषा मध्य-एशिया की तुर्की भाषा थी। टर्की की तुर्की इसी तुर्की की एक शाखा मात्र है। इस्लाम धर्म तथा ईरानी सभ्यता के प्रभाव के कारण इन तुर्की बोलने वाले बादशाहों के समय में भी उत्तर-भारत में इस्लामी साहित्य की भाषा फ़ारसी और इस्लामी धर्म की भाषा अरबी रही, तो भी भारतीय फ़ारसी पर तथा उस के द्वारा आधुनिक आर्यभाषाओं पर तुर्की शब्दसमूह का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। हिंदी में प्रचलित तुर्की शब्दों की एक सूची नीचे दी जा रही है :—

आक़ा (मालिक), उजबक (मूर्ख), उर्दू, कलगी, क़ैंची, क़ाबू, क़ुली, कोर्मा, ख़ातून (स्त्री), ख़ाँ, ख़ानुम (स्त्री), गलीचा, चकमच (पत्थर), चाक़ू, चिक, तमग़ा, तगार, तुरुक, तोप, दरोग़ा, बख़्शी, बावर्ची, बहादुर, बीबी, बेगम, बकचा, मुचलका, लाश, सौगात, सुराक़ची, (जैसे मशालची, ख़ज़ांची इत्यादि)।

पठान और रोहिला (रोह—पहाड़) शब्द पश्तो के हैं।

[2] हिंदी के विदेशी शब्द-समूह में फ़ारसी के बाद अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या सब से अधिक है। अब भी नए अंग्रेज़ी शब्द आ रहे हैं। अतः इन की पूर्ण सूची बन सकना अभी संभव नहीं है। तो भी अंग्रेज़ी शब्दों की एक विस्तृत सूची नीचे दी जा रही है। इन शब्दों में से कुछ तो गाँवों तक में पहुँच गए हैं। इस सूची में बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जो अंग्रेज़ी संस्थाओं या अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों से संपर्क में आने के कारण केवल शहरों के [illegible] वाले बेपढ़े लोगों के मुँह से ही सुन पड़ते हैं। कुछ शब्द कई रूपों में व्यवहृत होते हैं, किंतु उन का अधिक प्रचलित रूप ही दिया गया है।

संपर्क में आने पर भी आवश्यक विदेशी शब्दों को अछूत-सा मान कर न अपनाना अस्वाभाविक है। यत्न करने पर भी यह कभी संभव नहीं हो सका है। अनावश्यक विदेशी शब्दों का प्रयोग करना दूसरी अति है। मध्यम मार्ग यही है कि

अंजन, अक्तूबर, अगिन (?) बोट, अगस्त, अटेलियन, अपर-प्रैमरी, अपील, अप्रैल, अफ़सर, अमरीका, अर्दली, अलबम, अस्पताल, असंबली।

आइलैंड, आपरेशन, आर्डर, आफ़िस।

इंसपेक्टर, इंच, इंजीनियर, इंटर, इंट्रैंस, इटली, इनकमटैक्स, इस्टेचर, इस्प्रेस इस्काउट, इस्काटलैंड, इस्कूल, इस्पिरिट, इस्पेन, इस्पेशल, इस्टूल, इस्टीमर, इस्क्रू, इस्प्रिंग, इस्टाम, इस्पीच, इस्पेलिंग, एजंट, एजंसी, एरन, ए० फ़े०, ए० मे०, एडवर्ड, ऐक्ट, ऐक्टर, ऐक्टिंग, ऐल-क्लाथ, ओवरकोट, ओवरसियर, औट।

कलट्टर, कमिश्नर, कमीशन, कंपनी, कलंडर, कंपौंडर, कफ़, कट-पीस, कर्नल, कमेटी, कंट्रूनमिंट, कस्टरऐल, कंपू, कान्फ़्रेंस, कापी, कालर, कौंजी (?) हौज़, काग, कारड, कार्निस, कांग्रेस, कामा, कालिज, कानिस्टबल, क्वाटर, किलब, किरकिट, किलास, किलर्क, किलिप, कुल्तार, कुइला, कूपन, कुनैन, केक, केतली, कैच, (–औट), कोट, कोरम, कोरट, कोको-जम (कोको—पुर्तगाली), कोको, कोचवान्न, कौंसिल।

गज़ट, गर्वनर, गाटर, गार्ड, गिरमिट, गिलास, गिलट, गिन्नी, गोपाल, (वानिश) गेट, गेटिस, गैस, गौन।

घासलेटी।

चाक, चाकलेट, चिमनी, चिक, चुरट, (तामिल—शुरुट्ट) चेर, चेरमैन, चैन।

जंटलमैन, जंट, जंपर, जमनास्टिक, जज, जर्मनी, जर्नैल, जनवरी, जर्नलमर्चंट, जाकट, जार्ज, जुलाई, जून, जेल, जेलर।

टन, टब, ट्रंक, ट्राली, ट्राइस्किल, ट्रांबे, टिकट, टिकस, टिमाटर, टिंपरेचर, टिफ़िन, टीम, टीन, टुइल, ट्यूब, टेम, टेनिस, टेबिल, टेसन, टेलीफून, ट्रेन, टैर, टैप, टैमटेबिल, टोल, टौनहाल।

ठेठर।

डबल, डबलमार्च, डंबल, डाक्टर, ड्रामा, डायरी, डिक्शनरी, डिप्टी, डिस्टिक-बोर्ड, डिगरी, डिरैवर, डिमारिज, डिंकस, डिपलोमा, डिउटी, ड्रिल, डीपो, डेरी, डैमन-काट, डौम।

तारकोल।

थर्ड, थर्मामेंटर।

दर्जन, दलेल, (ड्रिल) दराज, दिसंबर।

अपनी भाषा के ध्वनिसमूह के आधार पर विदेशी शब्दों के रूपों में परिवर्तन करके उन्हें आवश्यकतानुसार सदा मिलाते रहना चाहिए। इस प्रकार शुद्धि करने के उपरांत लिए गए विदेशी शब्द जीवित भाषाओं के शब्द-भंडार को बढ़ाने में सहायक ही होते हैं।

नर्स, नकटाई, नवंबर, नंबर, नाविल, निकर, निब, निकलस, नोट, नोटिस, नोटबुक।

पसिंजर, पल्टन, परेड, पलस्तर, पतलून, पंचर, पंप, पाकट, पारक, पालिस, पार्टी, पापा, पाट, पार्सल, पास, प्राइमरी, पिलाट, पिलीडर, पिस्तन, पिंसिल, पियानो, पिलेट, पिलेट फारम, पिट्रोल, पिन, पिपरमेंट, पिलेग, पुलिटस, पुरफेसर, पुलिस, पुर्तगाल, पुटीन, पेटीकोट, प्रेस, प्रेसीडेंट, पैसा, पैप, पैंट, पैटमैन, पोलो, पोस्टकाट, पौंड, पौडर।

फर्मा, फर्स्ट, फलालैन, फरवरी, फरलाँग, फारम, फिरांस, फिनैल, फिटन, फिराक, फीस, फुटबाल, फुलबूट, फुट, फेल, फ्रेम, फैर, फैसन, फैसनेबिल, फोटो, फोटोगिराफी, फोनोग्राफ।

बंक, बम, बटेलियन, बरांडी, बटन, बकस, बग्घी, बंबूकाट, बलयाइन, बाडिस, बारिक, बालिस्टर, बास्कट, बिल्टी, बिलाटिंग, बिगुल, बिरजिस, बिरटिस, बिरग, बिलूबिलैक, बिंच, बी० ए०, बुकसेलर, बुलडाग, बुरुस, बूट, बैंड, बैरंग, बैस्कोप, बैस्किल, बैट, बैरा, बोट, बोरड, बोर्डिंग।

मसीन, मजिस्ट्रेट, मनोबेग, मनीआर्डर, मई, मन, मफलर, मलेरिया, मसीनगन, मनेजर, मटन, माचिस, मास्टर, मार्च, मानीटर, मारकीन, मिस, मिनीसुपिल्टी, मिनट, मिस्मरेजम, मिल, मिसनरी, मिक्सचर, मीटिंग, मेजर, मेंबर, मेट, मेम, मोटर।

रंगरूट, रबड़, रसीद, रपट, रन, रजीमिंट, रासन, रिजिस्ट्री, रिजिस्टर, रिजिस्ट्रार, रिजल्ट, रिटाइर, रिवालवर, रिकार्ड, रिबिट, रीडर, रूल, रेजीडेन्सी, रेस, रेल, रैकेट, रैफिल, रोड।

लंकलाट, लंप, लफटंट, लमलेट, लंबर, लवंडर, लंच, लाटरी, लाट, लाइब्रेरी, लालटैन, लान, लेड, लेटरबक्स, लेक्चर, लेबिल, लैंडो, लैन, लैनकिलियर, लैसंस, लैस, लैमजूस, लैमुनेड़, लोट (नोट), लोकल (गाड़ी), लोअर-प्रैमरी।

वारनिश, वास्कट, वाइल, वारंट, वायलिन, वालंटियर, वाइसराय, विक्टोरिया, वी० पी०, वेटिरूम, वोट, वैसलीन।

सम्मन, सर्जन, सरज, संटर, जेल संतरी, सरकस, सब- (जज), सरविस, सार्टीफिकट, साईस, सिगरट, सिलिंग, सिल्क, सिमिंट, सितंबर, सिकत्तर, सिंगल, सिलीपर, सिलेट, सिट (बटन), सिविल सर्जन, सुइटर, सुपरंडंट, सूट, सूटकेस, सेशन, सेफटीपिन, सेकिंड, सैंपुल, सोप, सोडावाटर।

कुछ पुर्तगाली[1], डच, तथा फ़्रांसीसी[2] शब्द भी हिंदी ने ऐसे अपना लिए हैं कि वे सहसा विदेशी नहीं मालूम होते।

ऊ. हिंदी भाषा का विकास

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि १००० ईसवी के बाद मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के अंतिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे-धीरे बदल कर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया और गंगा की घाटी में प्रयाग या काशी तक बोली जानेवाली शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंशों ने हिंदी भाषा के समस्त प्रधान

[illegible] (लालटैन), हाईकोर्ट, हाई इस्कूल, हारमुनियम, हाकी, हाल, हाल्ट, हाप साइड, हिट, हिस्टीरिया, ह्विस्की, हिम्, हुड, हुक, हुर्रे, हेडमास्टर, हैट, होलडर, होटल, होस्टल, होमोपैथी।

[1] हिंदी में कुछ पुर्तगाली शब्द भी आ गए हैं, किंतु इन की संख्या बहुत अधिक नहीं है। पुर्तगाली शब्दों का इतनी संख्या में भी हिंदी में पाया जाना आश्चर्यजनक है। हिंदी में प्रचलित पुर्तगाली शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है :—

अनन्नास, अल्मारी, अचार, आलपीन, आया, इस्पात, इस्त्री, कमीज़, कप्तान, कनिस्तर, कमरा, काज, काफ़ी, काजू, काकातुआ, किस्तान, किरच, गमला, गारद, गिर्जा, गोभी, गोदाम, चाबी, तंबाकू, तौलिया, तौला, नीलाम, परात, [illegible]क, पाउ (-रोटी), पादरी, पिस्तौल, पीपा, फ़र्मा, फ़ीता, फ़्रांसीसी, बर्गा, [illegible], बाल्टी, बिसकुट, बुताम, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज़, यशू, लबादा, संतरा, साया, सागू।

बंगाली भाषा में आने पर पुर्तगाली शब्दों के ध्वनि-परिवर्तन-संबंधी विस्तृत विवेचन के लिए देखिए चै०, बे० लै०, अ० ७

[2] पुर्तगाल के लोगों की अपेक्षा फ़्रांसीसियों से हिंदुस्तानियों का कुछ अधिक संपर्क रहा था किंतु फ़्रांसीसी शब्द हिंदी में दो चार से अधिक नहीं हैं। यही अवस्था डच भाषा के शब्दों की है। इन के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

फ़्रांसीसी :—कार्तूस, कूपन, अंग्रेज़।

डच :—तुरुप, बम (गाड़ी का)।

जर्मन आदि अन्य यूरोपियन भाषाओं के शब्द हिंदी में कदाचित् बिलकुल नहीं हैं। कम से कम अभी तक पहचाने नहीं जा सके हैं। 'अल्पका' शब्द यदि अंग्रेज़ी से नहीं आया है तो स्पैनिश हो सकता है।

रूपों को जन्म दिया। गत एक सहस्र वर्ष में हिंदी भाषा किस तरह विकसित होती गई तथा उस के अध्ययन के लिए क्या सामग्री उपलब्ध है, इसी का यहां संक्षेप में वर्णन करना है।

हिंदी भाषा के विकास का इतिहास साधारणतया तीन मुख्य कालों में विभक्त किया जा सकता है :—

(क) प्राचीन काल (१२०० ई० तक), जब अपभ्रंश तथा प्राकृतों का प्रभाव हिंदीभाषा पर मौजूद था तथा साथ ही हिंदी की बोलियों के निश्चित स्पष्ट रूप विकसित नहीं हो पाए थे।

(ख) मध्यकाल (१२००-१८०० ई०), जब हिंदी से अपभ्रंशों का प्रभाव बिल्कुल हट गया था और हिंदी की बोलियां, विशेषतया खड़ीबोली, ब्रज और अवधी, अपने पैरों पर स्वतंत्रतापूर्वक खड़ी हो गई थीं।

(ग) आधुनिक काल (१८०० ई० के बाद), जब से हिंदी की बोलियों के मध्यकाल के रूपों में परिवर्तन आरंभ हो गया है, तथा साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से खड़ीबोली ने हिंदी की अन्य बोलियों को दबा दिया है।

इन तीनों कालों को क्रम से लेकर तत्कालीन परिस्थिति, भाषा-सामग्री तथा भाषा के रूप पर संक्षेप में नीचे विचार किया गया है।

क. प्राचीन काल

(१२०० ई० तक)

हिंदी भाषा का इतिहास जिस समय प्रारंभ होता है उस समय हिंदी प्रदेश तीन राज्यों में विभक्त था, और इन्हीं तीन केंद्रों से हम हिंदी भाषा संबंधी सामग्री पाने की आशा कर सकते हैं। पश्चिम में चौहान-वंश की राजधानी दिल्ली थी। पृथ्वीराज के समय में अजमेर का राज्य भी इसमें सम्मिलित हो गया था। दिल्ली राज्य की सीमाएं पश्चिम में पंजाब के मुसलमानी राज्य से मिली हुई थीं। दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान के राजपूत राज्यों से इस की घनिष्टता थी, किंतु पूरब की सीमा पर सदा घरेलू युद्ध होते रहते थे। नरपति नाल्ह तथा चंद कवि का संबंध क्रम से अजमेर और दिल्ली से था। चौहान राज्य के पूर्व में राठौर वंश की राजधानी कन्नौज थी और इस राज्य की सीमाएं अयोध्या तथा काशी तक चली गई थीं। कन्नौज के अंतिम सम्राट् जयचंद का दरबार साहित्य-चर्चा का मुख्य केंद्र था किंतु यहां 'भाषा' की अपेक्षा 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' का कदाचित् विशेष आदर था। संस्कृत के अंतिम महाकाव्य नैषधीय चरित के लेखक श्रीहर्ष जयचंद के दरबार में ही राजकवि थे। कन्नौज के दरबार में भाषा-साहित्य को

चर्चा भी रही होगी किंतु प्राचीन कन्नौज नगर के पूर्ण-रूप से नष्ट हो जाने के कारण इस केंद्र की सामग्री अब बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं है। इन दो राज्यों के दक्षिण में महोबा का प्रसिद्ध राज्य था। महोबा के राजकवि जगनायक या जगनिक का नाम तो आज तक प्रसिद्ध है, किंतु इस महाकवि की मूल कृति का अब पता नहीं चलता।

११९१ ई० तक मध्यदेश के ये तीनों अंतिम हिंदू राज्य मौजूद थे, किंतु इस के बाद दस-बारह वर्ष के अंदर ही ये तीनों राज्य नष्ट हो गए। ११९१ में मुहम्मद गोरी ने पानीपत के निकट पृथ्वीराज को हरा कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष इटावा के निकट जयचंद की हार हुई और कन्नौज से लेकर काशी तक का प्रदेश विदेशियों के हाथों में चला गया। शीघ्र ही महोबा पर भी मुसलमानों ने क़ब्ज़ा कर लिया। इस तरह समस्त हिंदी प्रदेश पर विदेशी शासकों का आधिपत्य हो गया। विकसित होती हुई नवीन भाषा के लिए यह बड़ा भारी धक्का था जिस के प्रभाव से हिंदी अब तक भी मुक्त नहीं हो सकी है। हिंदी भाषा के इतिहास के संपूर्ण प्राचीन काल में मध्यदेश पर तथा उस के बाहर शेष उत्तर-भारत पर भी तुर्की मुसलमानों का साम्राज्य क़ायम रहा (१२०६-१५३६ ई०) इन सम्राटों की मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबार की भाषा फ़ारसी थी। इन विदेशी शासकों की रुचि जनता की भाषा तथा संस्कृत के अध्ययन करने की ओर बिल्कुल भी न थी अतः तीन सौ वर्ष से अधिक इस साम्राज्य के क़ायम रहने पर भी दिल्ली के राजनीतिक केंद्र से हिंदी भाषा की उन्नति में बिल्कुल भी सहायता नहीं मिल सकी। इस काल में दिल्ली में केवल अमीर खुसरो ने मनोरंजन के लिए भाषा से कुछ प्रेम दिखलाया था। इस काल के अंतिम दिनों में पूर्वी हिंदुस्तान में धार्मिक आंदोलनों के कारण भाषा में कुछ काम हुआ, किंतु इस का संबंध तत्कालीन राज्य से बिल्कुल भी न था। राज्य की ओर से सहायता की अपेक्षा कदाचित् बाधा ही विशेष मिली। इस प्रकार के आंदोलन में गोरखनाथ, रामानंद तथा उन के प्रमुख शिष्य कबीर के संप्रदाय उल्लेखनीय हैं।

हिंदी भाषा के इस प्राचीन काल की सामग्री नीचे लिखे भागों में विभक्त की जा सकती है :—

१. शिलालेख, ताम्रपत्र, तथा प्राचीन पत्र आदि;

२. अपभ्रंश काव्य;

३. चारण-काव्य, जिन का आरंभ गंगा की घाटी में हुआ था, किंतु राजनीतिक उथल-पुथल के कारण बाद को जो प्रायः राजस्थान में लिखे गए; तथा धार्मिक ग्रंथ व अन्य काव्य-ग्रंथ।

४. हिंदवी अथवा पुरानी खड़ीबोली में लिखा साहित्य।

विदेशी शासन होने के कारण इस काल में हिंदी भाषा में लिखे शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों आदि के अधिक संख्या में पाए जाने की संभावना बहुत कम है। इस संबंध में विशेष खोज भी नहीं की गई है, नहीं तो कुछ सामग्री अवश्य ही उपलब्ध होती[1]। हिंदी के सब से प्राचीन नमूने पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दरबारों से संबंध रखनेवाले पत्रों के रूप में समझे जाते थे, जिन को नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था, किंतु ये अप्रामाणिक सिद्ध हुए।

डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल तथा श्री राहुल सांकृत्यायन ने नाथपंथ तथा वज्रयानी सिद्ध साहित्य की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान पहले-पहल आकर्षित किया तथा बहुत सी नवीन सामग्री भी ये विद्वान प्रकाश में लाए।[2] इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की अभी पूर्ण परीक्षा नहीं हो पाई है। इन कवियों का समय ७०० ई० से १३०० ई० के बीच माना जाता है किंतु इनकी रचनाओं का वर्त्तमान रूप भी उसी समय का है यह विचारणीय है। प्रारंभिक सिद्धों की कृतियों की भाषा स्पष्टतया अपभ्रंश (मागधी) है। इस साहित्यिक धारा का प्रथम परिचय विद्वानों को हरप्रसाद शास्त्री के "बौद्धगान ओ दोहा" के प्रकाशन के फलस्वरूप हुआ था।

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग २, अंक ४ में 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेख में जो नमूने दिए हैं वे प्रायः गंगा की घाटी के बाहर के प्रदेशों में बने ग्रंथों के हैं, अतः इन में हिंदी के प्राचीन रूपों का कम पाया जाना स्वाभाविक है। अधिकांश उदाहरणों में प्राचीन राजस्थानी के नमूने मिलते हैं। इस के अतिरिक्त इन उदाहरणों की भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक है कि इन ग्रंथों को इस काल के अपभ्रंश साहित्य[3] के अंतर्गत रखना अधिक उचित मालूम होता

---

[1] मध्यप्रांत के हिंदी शिलालेखों के संबंध में देखिए श्री हीरालाल का 'हिंदी के शिलालेख और ताम्रलेख' शीर्षक लेख (ना० प्र० प०, भा० ६, सं० ४)।

[2] बर्थ्वाल : हिंदी कविता में योग-प्रवाह (ना० प्र० प०, भाग ११, अंक ४, १९३०); गोरखबानी (१९४२)।

राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्त्व निबंधावली (१९३७); हिंदी काव्यधारा (१९४५)

[3] इस प्रकार के प्रामाणिक ग्रंथों में हेमचंद्र-रचित 'कुमारपालचरित' तथा 'सिद्धहैमव्याकरण' सब से प्राचीन हैं। हेमचंद्र की मृत्यु ११७२ ई० में हुई थी, अतः इन ग्रंथों का रचनाकाल इस के पूर्व ठहरेगा। सोम-प्रभाचार्य का 'कुमारपाल-प्रतिबोध' ११८४ ई० में लिखा गया था। इस में कुछ सोमप्रभाचार्य के स्वरचित उदाहरण तथा कुछ प्राचीन उदाहरण मिलते हैं। जैन आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबंध-चिंतामणि' नाम का संस्कृत

है। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में ऐसा किया भी है। तो भी इन नमूनों से अपनी भाषा की पुरानी परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

इस काल की भाषा के नमूनों का तीसरा समूह चारण, धार्मिक तथा लौकिक काव्य-ग्रंथों में मिलता है।[१] भाषाशास्त्र की दृष्टि से इन ग्रंथों की भाषा के नमूने

ग्रंथ १३०४ ई० में बनाया था। इस में कुछ प्राचीन पद्य उद्धृत मिलते हैं, जो अपभ्रंश और हिंदी की बीच की अवस्था के द्योतक हैं। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' शार्ङ्गधर कवि द्वारा संगृहीत सुभाषित ग्रंथ है, जिसमें शाबर-मंत्र और चित्रकाव्य में कुछ भाषा के शब्द आए हैं। शार्ङ्गधर रणथंभोर के महाराज हम्मीरदेव (मृत्यु १३०० ई०) के मुख्य सभासद राघवदेव का पोता था, अतः यह चौदहवीं सदी ईसवी के मध्य होगा।

[१] इस प्रकार के मुख्य-मुख्य लेखकों तथा उन के प्रकाशित ग्रंथों की सूची निम्न-लिखित है :—

१. नरपति नाल्ह : 'वीसलदेवरासो' (११५५ ई०)—जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यह ग्रंथ छापा गया है वे १६१२ और १६०२ ईसवी की लिखी हैं। मूलग्रंथ के अजमेर में लिखे जाने के कारण इस की भाषा का राजस्थानी होना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं कुछ खड़ीबोली के रूप भी पाए जाते हैं।

२. चंद : 'पृथ्वीराजरासो'—चंद का कविता-काल ११६८ से ११९२ ई० तक माना जाता है। वर्तमान 'पृथ्वीराजरासो' में कितना अंश चंद का रचा है, इस विषय में विद्वानों को बहुत संदेह है। वर्तमान रासो में व्रजभाषा के साथ अपभ्रंश, खड़ीबोली तथा राजस्थानी का मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

३. ख़ुसरो : फुटकर काव्य—'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग २, अंक ३ में 'ख़ुसरो की हिंदी कविता' शीर्षक से बाबू ब्रजरत्नदास ने ख़ुसरो की जीवनी तथा हिंदी काव्य-संग्रह दिया है। ख़ुसरो का समय १२५५-१३२५ ईसवी है। इन के सब प्रसिद्ध ग्रंथ फ़ारसी में हैं। इन की हिंदी कविता के नमूने का आधार एक मात्र जनश्रुति है। आधुनिक काल में लेखबद्ध किए जाने के कारण ख़ुसरो की हिंदी आधुनिक खड़ी-बोली हो गई है। 'ख़ालिकबारी' नाम के अरबी फ़ारसी-हिंदी कोष में कुछ अंश हिंदी में हैं किंतु यह ग्रंथ भी अपूर्ण है।

४. गोरख-पंथ के संस्थापक गोरखनाथ के समय के संबंध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनका समय १०वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी के बीच में माना जाता है। नवीनतम खोज के अनुसार १०वीं शताब्दी अधिक मान्य तिथि

अत्यंत संदिग्ध हैं। इन में से किसी भी ग्रंथ की इस काल की लिखी प्रामाणिक हस्त-लिखित प्रति उपलब्ध नहीं है। बहुत दिनों मौखिक रूप में रहने के बाद लिखे जाने पर भाषा में परिवर्तन का हो जाना स्वाभाविक है, अतः हिंदी भाषा के इतिहास की दृष्टि से इन ग्रंथों के नमूने बहुत मान्य नहीं हो सकते। इस काल की भाषा के अध्ययन के लिए या तो पुराने लेखों से सहायता लेना उपयुक्त होगा या ऐसी हस्तलिखित प्रतियों से जो १५०० ईसवी से पहले की लिखी हों।

दक्षिण भारत में विकसित हिंदवी अथवा दकिनी उर्दू साहित्य का प्रारंभ १३२६ ई० में मोहम्मद तुगलक के दक्षिण आक्रमण के बाद हुआ। हिंदवी के प्रारंभिक कवि मुसलमान सूफ़ी फ़कीर थे जिन्हों ने अपने धार्मिक विचारों के प्रचार की दृष्टि से ये रचनाएं लिखी थीं। यह साहित्य अभी देवनागरी लिपि में प्रकाशित नहीं हुआ है यद्यपि इसकी भाषा पुरानी खड़ी बोली है। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध ख्वाजा बंदानिवाज (१३२१-१४५२ ई०) थे। हिंदवी में प्रारंभिक साहित्यिक रचनाएं बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के द्वारा तथा उनकी संरक्षता में १७वीं शताब्दी में लिखी गईं।

समझी जाती है। इन के नाम से प्रसिद्ध कई ग्रंथ गोरखबानी नाम के संग्रह में प्रकाशित हुए हैं।

५. विद्यापति (जन्म १३६२ ई०) का भाषा-पदसमूह अभी कुछ ही समय पूर्व संग्रह किया गया है। इन पदों में मिथिला में संगृहीत पदों की भाषा मैथिली है तथा बंगाल में संगृहीत पदसमूह की भाषा बंगाली है। इन के किसी भी वर्तमान संग्रह की भाषा पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभ की नहीं मानी जा सकती। विद्यापति के 'कीर्तिलता' नाम के ग्रंथ की भाषा अपभ्रंश है। इन के अन्य ग्रंथ प्रायः संस्कृत में हैं।

६. कबीरदास (१४२३ ई०) तथा उन के गुरुभाई संतों की भाषा के संबंध में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। साधारणतया संतों की वाणी बहुत समय तक मौखिक रूप से चलती रही अतः उनकी भाषा में नवीनता का प्रवेश होता रहना स्वाभाविक है। सभा की ओर से कबीर के ग्रंथों का जो संग्रह छपा है उस की प्रतिलिपि यद्यपि १५०४ ई० की लिखी हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार की गई है, किंतु उस में पंजाबीपन इतना अधिक है कि उस के काशी में रहनेवाले कबीरदास की मूलवाणी होने में बहुत संदेह मालूम होता है।

ख. मध्यकाल

(१२००-१८०० ई०)

१५०० ई० के बाद देश की परिस्थिति में एक बार फिर भारी परिवर्तन हुए। १५२६ ई० के लगभग शासन की बागडोर तुर्की सम्राटों के हाथ से निकल कर मुग़ल शासकों के हाथ में चली गई। बीच में कुछ दिनों तक सूरवंश के राजाओं ने भी राज्य किया। इस परिवर्तन-काल में राजपूत राजाओं ने गंगा की घाटी पर अधिकार जमाना चाहा, किंतु वे इसमें सफल न हो सके। मुग़ल तथा सूरवंश के सम्राटों की सहानुभूति जनता की सभ्यता को समझने की ओर तुर्कों की अपेक्षा कुछ अधिक थी। देश में शांति रहने तथा राज्य की ओर से कम उपेक्षा होने के कारण इस काल की साहित्य-चर्चा भी विशेष हुई। वास्तव में यह काल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

अवधी और ब्रजभाषा के दो मुख्य साहित्यिक रूपों का विकास सोलहवीं सदी में ही प्रारंभ हुआ। इन दोनों में ब्रजभाषा तो समस्त हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई, किंतु अवधी में लिखे गए 'रामचरितमानस' का हिंदी जनता में सबसे अधिक प्रचार होने पर भी साहित्य के क्षेत्र में अवधी भाषा का प्रचार नहीं हो सका। मध्य-काल में अवधी में लिखे गए ग्रंथों में दो मुख्य हैं—जायसी-कृत 'पद्मावत' (१५४० ई०) जो शेरशाह सूर के शासन-काल में लिखा गया था, और तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' (१५७५ ई०) जो अकबर के शासनकाल में लिखा गया था। इन दोनों ग्रंथों की बहुत-सी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं। यद्यपि इन दोनों ग्रंथों का शास्त्रीय रीति से संपादन अभी तक नहीं हो पाया है, किंतु तो भी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण बहुत अंश में मान्य है। सोलहवीं सदी के बाद अवधी में कोई भी प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं लिखा गया।

वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रजभाषा में साहित्य-रचना प्रारंभ हुई। हिंदी साहित्य की इस शाखा का केंद्र पश्चिम मध्यदेश में था अतः ब्रजभाषा साहित्य को धर्म के साथ-साथ विदेशी तथा देशी राज्यों की संरक्षता भी मिल सकी। सूरदास के ग्रंथ कदाचित् १५५० ई० तक रचे जा चुके थे। तुलसीदास ने भी 'विनयपत्रिका' तथा 'गीतावली' आदि कुछ काव्यों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। अष्टछाप-समुदाय के दूसरे महाकवि नंददास के ग्रंथ भी साहित्यिक ब्रजभाषा में हैं। सत्रहवीं शताब्दी में प्रायः समस्त हिंदी साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। ब्रजभाषा का रूप दिन-दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा संस्कृत होता चला गया है। बिहारी और सूरदास

की ब्रजभाषा में बहुत-भेद है। बुंदेलखंड तथा राजस्थान के देशी राज्यों से संपर्क में आने के कारण इस काल के बहुत से कवियों की भाषा में जहां-तहां बुंदेली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है। उदाहरण के लिए केशवदास (१६०० ई०) की ब्रजभाषा में बुंदेली प्रयोग बहुत मिलते हैं।

प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों में जहां-तहां खड़ीबोली के रूप भी बिखर पड़े हैं। रासो, कबीर, भूषण आदि में बराबर खड़ीबोली के प्रयोग वर्तमान हैं। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि खड़ीबोली का अस्तित्व प्रारंभ ही से था, यद्यपि इस बोली का प्रयोग हिंदू कवि और लेखक साहित्य में विशेष नहीं करते थे। यह मुसलमानी बोली समझी जाती थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है दक्षिण में हिंदवी अथवा पुरानी खड़ीबोली का प्रयोग चौदहवीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया था। किंतु उत्तर-भारत में मुसलमान शासकों की संरक्षिता में इस का साहित्य में प्रयोग अठारहवीं सदी से विशेष हुआ। इस से पहले मुसलमान कवि भी यदि भाषा में कविता करते थे तो अवधी या ब्रजभाषा का व्यवहार करते थे। जायसी, रहीम आदि इस के स्पष्ट उदाहरण हैं। खड़ीबोली उर्दू के प्रथम प्रसिद्ध कवि हैदराबाद (दक्खिन) के वली माने जाते हैं। इन का कविताकाल अठारहवीं सदी के प्रारंभ में पड़ता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में बहुत से मुसलमान कवियों ने काव्य-रचना करके खड़ीबोली उर्दू को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। इन कवियों में मीर, सौदा, इंशा, ग़ालिब, ज़ौक़ और दाग़ उल्लेखनीय हैं।

ग. आधुनिक काल

(१८०० ई० के बाद)

अठारहवीं सदी के अंत से ही परिवर्तन के लक्षण प्रारंभ हो गए थे। मुग़ल साम्राज्य के निर्बल हो जाने के कारण अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तीन बाहर की शक्तियों में हिंदी-प्रदेश पर अधिकार करने की प्रतिद्वंद्विता हुई—ये थे मराठा, अफ़ग़ान और अंग्रेज़। १७६१ ई० में मध्यदेश की पश्चिमी सरहद पर पानीपत के तीसरे युद्ध में अफ़ग़ानों के हाथ से मराठों को ऐसा भारी धक्का पहुँचा कि वे फिर शक्तिसंचय नहीं कर सके। किंतु अफ़ग़ानों ने भी इस विजय से लाभ नहीं उठाया। तीन वर्ष बाद १७६४ ई० में हिंदी-प्रदेश की पूर्वी सीमा पर बक्सर के निकट अंग्रेज़ों तथा अवध और दिल्ली के मुसलमान शासकों के बीच युद्ध हुआ जिस के फल-स्वरूप अंग्रेज़ों के लिए गंगा की घाटी का पश्चिमी भाग खुल गया। १८०२ ई० के लगभग आगरा उपप्रांत अंग्रेज़ों के हाथ में चला गया तथा १८५६ ई० में अवध पर भी अंग्रेज़ों का पूर्ण अधिकार हो गया।

इन राजनीतिक परिवर्तनों के कारण १९वीं सदी के आरंभ से ही मध्यदेश की भाषा हिंदी पर भारी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अठारहवीं सदी में ब्रजभाषा की शक्ति क्षीण हो चुकी थीं, साथ ही मुसलमानों के बीच खड़ीबोली उर्दू ज़ोर पकड़ चुकी थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेज़ों ने हिंदुओं के लिए खड़ीबोली गद्य के संबंध में कुछ प्रयोग करवाए जिन के फलस्वरूप फ़ोर्ट विलियम कालेज में लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। प्रारंभ के इन खड़ीबोली के ग्रंथों पर ब्रजभाषा का प्रभाव रहना स्वाभाविक है। 'प्रेमसागर' में तो ब्रजभाषा के प्रयोग बहुत अधिक पाए जाते हैं। खड़ीबोली हिंदी का गद्य-साहित्य में प्रचार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ, और इस का श्रेय साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती को है। मुद्रण-कला के साथ-साथ खड़ीबोली हिंदी का प्रचार बहुत तेज़ी से बढ़ा। उन्नीसवीं सदी तक पद्य में प्रायः ब्रजभाषा का प्रयोग होता रहा, किंतु बीसवीं सदी में आते-आते खड़ीबोली हिंदी संपूर्ण मध्यदेश की, गद्य और पद्य दोनों ही की एकमात्र साहित्यिक भाषा हो गई है। ब्रजभाषा में कविता करने की शैली अभी तक पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुई है, किंतु इस के दिन इने-गिने हैं। यहां यह स्मरण दिलाना अनुपयुक्त न होगा कि बीसवीं सदी को साहित्यिक ब्रजभाषा का आधार मध्यकाल के उत्तरार्द्ध की साहित्यिक ब्रजभाषा है, न कि आजकल की ब्रज-प्रदेश की वास्तविक बोली। खड़ीबोली-पद्य के प्रारंभ के कवियों की भाषा में भी लल्लूलाल आदि प्रथम गद्य-लेखकों के समान ब्रजभाषा की झलक पर्याप्त है। श्रीधर पाठक की खड़ीबोली कविता की मिठास का कारण बहुत कुछ ब्रजभाषा के रूपों का व्यवहार है, यह परिवर्तन-काल शीघ्र ही दूर हो गया और अब तो खड़ीबोली कविता की भाषा से भी ब्रजभाषा की छाप बिल्कुल हट गई है। गत डेढ़-दो सौ वर्षों से साहित्यिक खड़ी-बोली—आधुनिक हिंदी और उर्दू—मेरठ-बिजनौर की जनता की खड़ीबोली से स्वतंत्र होकर अपने-अपने ढंग से विकास को प्राप्त कर रही है। स्वाभाविक बोली के प्रभाव से पृथक् हो जाने के कारण इस के व्याकरण का ढाँचा तथा शब्दसमूह निराला होता जाता है। तो भी अभी तक आधुनिक हिंदी-उर्दू के व्याकरण का स्वरूप मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली से बहुत अधिक भिन्न नहीं हो पाया है। भेद की अपेक्षा साम्य की मात्रा विशेष है।

साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली हिंदी के व्यापक प्रभाव के रहते हुए भी हिंदी की अन्य प्रादेशिक बोलियां अपने-अपने प्रदेशों में आज भी पूर्ण-रूप से जीवितावस्था में हैं। मध्यदेश के गाँवों की समस्त जनता अब भी खड़ीबोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के आधुनिक रूपों का व्यवहार कर रही है।

गाँव के अपढ़ लोग बोलचाल की आधुनिक साहित्यिक हिंदी को समझ बराबर लेते हैं, किंतु ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। गाँव की बोलियों में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। जायसी की अवधी तथा आजकल की अवधी में पर्याप्त भेद हो गया है। इसी तरह सूरदास की ब्रजभाषा से आजकल की ब्रज की बोली कुछ भिन्न हो गई है। इन परिवर्तनों को प्रारंभ हुए सौ-सवा सौ वर्ष अवश्य बीत चुके हैं, इसी लिए लगभग १८०० ई० से हिंदी भाषा के इतिहास के तीसरे काल का प्रारंभ माना जा सकता है। यद्यपि अभी भेदों की मात्रा अधिक नहीं हो पाई है, किंतु संभावना यही है कि ये भेद बढ़ते ही जावेंगे, और सौ दो सौ वर्ष के अंदर ही ऐसी परिस्थिति आ सकती है जब तुलसी सूर आदि की भाषा को स्वाभाविक ढंग से समझ लेना अवध और ब्रज के लोगों के लिए कठिन हो जावेगा। इस प्रगति का प्रारंभ हो गया है।

ए. देवनागरी लिपि और अंक

यद्यपि हिंदी प्रदेश में उर्दू, रोमन, कैथी, मुड़िया, मैथिली आदि अनेक लिपियों का थोड़ा-बहुत व्यवहार है किंतु देवनागरी लिपि का स्थान इन में सर्वोपरि है। लिखने के अतिरिक्त छपाई में तो प्रायः एकमात्र इसी का व्यवहार होता है। यदि देवनागरी लिपि की प्रतिद्वंद्विता किसी से है तो उर्दू लिपि से है। भारतवर्ष के अधिकांश पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा पंजाब और आगरा-दिल्ली की तरफ़ के हिंदुओं में उर्दू लिपि का व्यवहार पाया जाता है किंतु देवनागरी लिपि की लोकप्रियता उर्दू लिपि को भी नहीं प्राप्त है। देवनागरी लिपि का प्रचार समस्त हिंदी प्रदेश में तथा उस के बाहर महाराष्ट्र में है। ऐतिहासिक दृष्टि से देवनागरी का मूल संबंध भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से है। ब्राह्मी और देवनागरी का संबंध समझने के लिए भारतीय लिपियों के संबंध में विशेषज्ञों[1] ने जो खोज की है उस का सार नीचे दिया जाता है।

प्राचीन वैदिक तथा बौद्ध साहित्य के बाह्य-रूप तथा उसमें पाए जानेवाले उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि भारत में लेखन-कला का प्रचार चौथी शताब्दी पूर्व ईसा से बहुत पहले मौजूद था। ऐसी अवस्था में कुछ योरोपीय विद्वानों का यह मत बहुत सारयुक्त नहीं मालूम होता कि भारतीय लोगों ने चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दी पूर्व

---

[1]ओझा, भा० प्रा० लि०, प्रथम संस्करण १९१८; बूहलर, 'आन दि ओरिजिन आव् दी इंडियन ब्राह्म अलफ़ाबेट', प्रथम संस्करण, १८९५; द्वितीय संस्करण १८९८

ईसा में किन्हीं विदेशियों से लिखने की कला सीखी। जो हो भारतवर्ष में लिखने के प्रचार की प्राचीनता तथा उसका उद्गम हमारे प्रस्तुत विषय से विशेष संबंध नहीं रखता, अतः इस का विस्तृत विवेचन यहां अनावश्यक है।

प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी (पाली बंभी) और खरोष्ठी नाम की दो लिपियां प्रचलित थीं। इन में से ब्राह्मी एक प्रकार से राष्ट्रीय लिपि थी, क्योंकि इस का प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़ कर शेष समस्त भारत में था। देवनागरी आदि आधुनिक भारतीय लिपियों की तरह यह भी बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश में खरोष्ठी[1] लिपि का प्रचार था और यह आधुनिक विदेशी उर्दू लिपि की तरह दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी। यह निश्चित है कि खरोष्ठी लिपि आर्य-लिपि नहीं है बल्कि इस का संबंध विदेशी सेमिटिक अरमइक् लिपि से है। खरोष्ठी लिपि की उत्पत्ति के संबंध में ओझा[2] लिखते हैं कि "जैसे मुसलमानों के राज्य-समय में ईरान की फ़ारसी लिपि का हिंदुस्तान में प्रवेश हुआ और उस में कुछ अक्षर और मिलाने से हिंदी भाषा के पढ़े-लिखे लोगों के लिए कामचलाऊ उर्दू लिपि बनी वैसे ही जब ईरानियों का अधिकार पंजाब के कुछ अंश पर हुआ तब उन की राजकीय लिपि अरमइक् का वहां प्रवेश हुआ, परंतु उस में केवल २२ अक्षर, जो आर्यभाषाओं के केवल १८ उच्चारणों को व्यक्त कर सकते थे, होने तथा स्वरों में ह्रस्व-दीर्घ भेद का और स्वरों की मात्राओं के न होने के कारण यहां के विद्वानों में से खरोष्ठी या किसी और ने नए अक्षरों तथा ह्रस्व स्वरों की मात्राओं की योजना कर मामूली पढ़े हुए लोगों के लिए, जिन को शुद्धाशुद्ध की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी, कामचलाऊ लिपि बना दी।" इस लिपि का प्रचार भारत के पश्चिमोत्तरी प्रदेश के आसपास तीसरी शताब्दी पूर्व-ईसा से तीसरी शताब्दी ईसवी तक रहा।

तीसरी शताब्दी ईसवी के बाद इस प्रदेश में भी ब्राह्मी के विकसित रूप व्यवहृत होने लगे। उर्दू लिपि का विकास खरोष्ठी से नहीं हुआ है। उर्दू और खरोष्ठी का मूल तो एक ही है, किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से उर्दू लिपि मुसलमानों के भारत में आने पर उन की फ़ारसी-अरबी लिपि के आधार पर कुछ अक्षरों को जोड़ कर बनाई गई थी।

मध्य तथा आधुनिक कालों की समस्त भारतीय लिपियों का उद्गम प्राचीन राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से हुआ है, इस संबंध में कोई भी मतभेद नहीं है, किंतु स्वयं ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के संबंध में दो मुख्य मत हैं। बूहलर तथा वेबर आदि विद्वानों का एक

---

[1] खरोष्ठी का शब्दार्थ 'गधे के होठ वाली' है।

[2] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० १७

समूह ब्राह्मी का संबंध पश्चिम एशिया की किसी न किसी विदेशी लिपि से जोड़ता है। इन विद्वानों में इस विषय के विशेषज्ञ बूहलर ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि ब्राह्मी लिपि के २२ अक्षर उत्तरी सेमिटिक लिपियों से लिए गए हैं और बाकी उन्हीं अक्षरों के आधार पर बनाए गए हैं। कनिंघम तथा ओझा आदि विद्वानों का दूसरा समूह ब्राह्मी की उत्पत्ति विदेशी लिपियों से नहीं मानता। ब्राह्मी की उत्पत्ति के संबंध में ओझा[1] का कहना है कि "यह भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इस की प्राचीनता और सर्वांग-सुंदरता से चाहे इस का कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इस का नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इस में संदेह नहीं कि इस का फ़िनीशिअन से कुछ भी संबंध नहीं।" ब्राह्मी लिपि का उद्‌गम चाहे जो हो किंतु इतना निश्चित है कि मौर्यकाल में इस का प्रचार समस्त भारत में था। ब्राह्मी लिपि में लिखे गए सब से प्राचीन लेख पाँचवीं शताब्दी पूर्व ईसवी काल तक के पाए गए हैं। अशोक के प्रसिद्ध शिलालेखों तथा अन्य प्राचीन लेखों की लिपि ब्राह्मी ही है।

ब्राह्मी लिपि का प्रचार भारत में लगभग ३५० ईसवी तक रहा। इस समय तक उत्तर और दक्षिण की ब्राह्मी लिपि में पर्याप्त अंतर हो गया था, तामिल, तेलगू, ग्रंथ आदि दक्षिण भारत की समस्त आधुनिक तथा मध्यकालीन लिपियों का संबंध ब्राह्मी की दक्षिण शैली से है। चौथी शताब्दी के लगभग उत्तर की प्रचलित शैली का कल्पित नाम गुप्तलिपि रक्खा गया है। गुप्त साम्राज्य के प्रभाव के कारण इस का प्रचार चौथी और पाँचवीं शताब्दी में समस्त उत्तर-भारत में था। इस के उदाहरण गुप्तकालीन शिलालेखों तथा ताम्रपत्रादि में मिलते हैं। "गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियां नागरी से कुछ-कुछ मिलती हुई होने लगीं। सिरों के चिह्न जो पहले बहुत छोटे थे बढ़ कर कुछ लंबे बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिह्न लुप्त होकर नए रूपों में परिणत हो गए।[2]"

गुप्तलिपि के विकसित रूप का कल्पित नाम 'कुटिल लिपि' रखा गया है। इस का प्रचार छठी से नवीं शताब्दी ईसवी तक उत्तर-भारत में रहा। 'कुटिलाक्षर' नाम का प्रयोग प्राचीन है। अक्षरों तथा स्वरों की कुटिल आकृतियों के कारण ही यह लिपि कुटिल कहलाई जाने लगी। इस काल के शिलालेख तथा दानपत्र आदि इस लिपि में लिखे पाए जाते हैं। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा

---

[1] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० २८

[2] ओझा, भा० प्र० लि०, पृ० ६०

विकसित हुई। शारदा से वर्तमान काश्मीरी, टाकरी तथा गुरुमुखी लिपियां निकली हैं। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग प्राचीन बँगला लिपि निकली जिस के आधुनिक परिवर्तित रूप बँगला, मैथिली, उड़िया तथा नेपाली लिपियों के रूप में प्रचलित हैं। प्राचीन नागरी से ही गुजराती, कैथी तथा महाजनी आदि उत्तर भारत की अन्य लिपियां भी संबद्ध हैं।

नागरी[1] लिपि का प्रयोग उत्तर-भारत में दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से मिलता है, किंतु दक्षिण-भारत में कुछ लेख आठवीं शताब्दी तक के पाए जाते हैं। दक्षिण की नागरी लिपि 'नंदि नागरी' नाम से प्रसिद्ध है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों के लिखने में उस का प्रचार है। राजस्थान, संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्यभारत, तथा मध्यप्रांत में इस काल के लिखे प्रायः समस्त शिलालेख, ताम्रपत्र, आदि में नागरी लिपि ही पाई जाती है। "ई० स० की १०वीं शताब्दी की उत्तरी भारतवर्ष की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की नाईं, अ, आ, घ, प, म, य, ष और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परंतु ११वीं शताब्दी से ये दोनों अंश मिल कर सिर की एक लकीर बन जाती है और प्रत्येक अक्षर का सिर उतना लंबा रहता है जितनी कि अक्षर की चौड़ाई होती है। ११वीं शताब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती है और १२वीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई है।........ई० स० की १२वीं शताब्दी से लगा कर अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।"[2] इस तरह आधुनिक देवनागरी लिपि दसवीं शताब्दी ईसवी की प्राचीन नागरी लिपि का ही विकसित रूप है।

जिस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि ब्राह्मी लिपि का परिवर्तित रूप है उसी प्रकार वर्तमान नागरी अंक भी प्राचीन ब्राह्मी अंकों के परिवर्तन से बने हैं। "लिपियों की तरह प्राचीन और अर्वाचीन अंकों में भी अंतर है। यह अंतर केवल उन की

---

[1] 'नागरी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान इस का संबंध 'नागर' ब्राह्मणों से लगाते हैं अर्थात् नागर ब्राह्मणों में प्रचलित लिपि नागरी कहलाई, कुछ 'नगर' शब्द से संबंध जोड़ कर इस का अर्थ नागरी अर्थात् नगरों में प्रचलित लिपि लगाते हैं। एक मत यह भी है कि तांत्रिक यंत्रों में कुछ चिह्न बनते थे जो 'देवनगर' कहलाते थे, इन अक्षरों से मिलते-जुलते होने के कारण यही नाम इस लिपि के साथ संबद्ध हो गया। तांत्रिक समय में 'नागर लिपि' नाम प्रचलित था (ओझा, 'प्राचीन लिपिमाला' पृ० १८)। इस लिपि के लिए देवनागरी या नागरी नाम पड़ने का कारण वास्तव में अनिश्चित है।

[2] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० ६९-७०

आकृति में ही नहीं किंतु अंकों के लिखने की रीति में भी है। वर्तमान समय में जैसे १ से ९ तक अंक और शून्य इन १० चिह्नों से अंकविद्या का संपूर्ण व्यवहार चलता है, वैसे प्राचीन काल में नहीं था। उस समय शून्य का व्यवहार ही न था और दहाइयों, सैकड़े, हज़ार आदि के लिए भी अलग चिह्न थे।"[1] अंकों के संबंध में इन दो शैलियों को 'प्राचीन शैली' और 'नवीन शैली' कहते हैं।

भारतवर्ष में अंकों की यह प्राचीन शैली कब से प्रचलित हुई इस का ठीक पता नहीं चलता। अशोक के लेखों में पहले-पहल कुछ अंकों के चिह्न मिलते हैं। प्राचीन शैली के अंकों की उत्पत्ति के संबंध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अनेक कल्पनाएं की हैं। इस संबंध में ओझा ने बूहलर का नीचे लिखा मत उद्धृत किया है जो ध्यान देने योग्य है—"प्रिन्सेप का यह पुराना कथन कि अंक उन के सूचक शब्दों के प्रथम अक्षर हैं, छोड़ देना चाहिए। परंतु अब तक इस प्रश्न का संतोषदायक समाधान नहीं हुआ। पंडित भगवानलाल ने आर्यभट्ट और मंत्र-शास्त्र की अक्षरों द्वारा अंक सूचित करने की रीति को भी जाँचा परंतु उस में सफलता न हुई अर्थात् अक्षरों के क्रम की कोई कुंजी न मिली, और न मैं इस रहस्य की कोई कुँजी प्राप्त करने का दावा करता हूँ। मैं केवल यही बतलाऊँगा कि इन अंकों में अनुनासिक, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का होना प्रकट करता है कि उन (अंकों) को ब्राह्मणों ने निर्माण किया था न कि वाणिआओं (महाजनों) ने और न बौद्धों ने जो प्राकृत को काम में लाते थे।"[2] कुछ विद्वानों के इस मत को कि भारतीय मूल अंक विदेशी अंकों से प्रभावित हैं ओझा आदि विद्वानों का समूह नहीं मानता। ओझा के अनुसार "प्राचीन शैली के भारतीय अंक भारतीय आर्यों के स्वतंत्र निर्माण किए हुए हैं।"[3]

नवीन शैली के अंकक्रम का प्रचार पाँचवीं शताब्दी के लगभग से सर्वसाधारण में था, यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का ही प्रायः उपयोग किया जाता था। नवीन शैली की उत्पत्ति के संबंध में ओझा का मत है कि "शून्य की योजना कर नव अंकों से गणितशास्त्र को सरल करने वाले नवीन शैली के अंकों का प्रचार पहले-पहल किस विद्वान ने किया इस का कुछ भी पता नहीं चलता। केवल यही पाया

---

[1]ओझा, भा० प्रा० लि० पृ० १०३
[2]वही, पृ० ११०
[3]वही, पृ० ११४

जाता है कि नवीन शैली के अंकों की सृष्टि भारतवर्ष में हुई फिर वहाँ से अरबों ने यह क्रम सीखा और अरबों से उस का प्रवेश यूरोप में हुआ।"[१]

भाषा और लिपि दो भिन्न वस्तुएं होते हुए भी व्यवहार में ये अभिन्न रहते हैं। इसी कारण संक्षेप में हिंदी भाषा की देवनागरी लिपि और हिंदी अंकों के विकास का दिग्दर्शन यहां कर देना उचित समझा गया। लिपि तथा अंक के चिह्नों के इतिहास के संबंध में विस्तृत सामग्री ओझा-लिखित 'प्राचीन लिपिमाला' में संकलित है।

---

[१] ओझा, भा० प्रा० लि०, पृ० ११७

इतिहास

अध्याय १

हिंदी ध्वनिसमूह

अ. हिंदी वर्णमाला का इतिहास

क. वैदिक तथा संस्कृत ध्वनिसमूह

१. हिंदी ध्वनिसमूह पर विचार करने के पूर्व हिंदी की पूर्ववर्ती आर्य-भाषाओं के ध्वनिसमूह की अवस्था पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। हिंदी ध्वनिसमूह के मूलाधार वास्तव में ये प्राचीन ध्वनिसमूह ही हैं।

भारतीय आर्य-भाषाओं के ध्वनिसमूह का प्राचीनतम रूप वैदिक ध्वनियों के रूप में मिलता है। वैदिक भाषा में ५२ मूल ध्वनियां हैं[1]। इन में १३ स्वर तथा ३९ व्यंजन हैं। देवनागरी लिपि में ये ध्वनियां नीचे लिखे ढंग से प्रकट की जा सकती हैं :—

(१) नौ मूलस्वर[2] : अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ

(२) चार संयुक्त स्वर : ए (अइ) ओ (अउ) ऐ (आइ) औ (आउ)

---

[1] मैकडानेल, वेदिक ग्रैमर, § ४

[2] आधुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्वर वे ध्वनियां कहलाती हैं जिन के उच्चारण में मुखद्वार कम-ज्यादः तो किया जाता है किंतु न तो कभी बिल्कुल बंद किया जाता है और न इतना अधिक बंद कि निःश्वास रगड़ खा कर निकले। ऐसा न होने से ध्वनि व्यंजन कहलाती है।

(३) सत्ताईस स्पर्श[१] व्यंजन, जो स्थान-भेद के अनुसार प्रायः पाँच वर्गों में रक्खे जाते हैं :

कंठ्य : क् ख् ग् घ् ङ्

तालव्य : च् छ् ज् झ् ञ्

मूर्द्धन्य : ट् ठ् ड् ढ् ण्

दंत्य : त् थ् द् ध् न्

ओष्ठ्य : प् फ् ब् भ् म

(४) छ अंतस्थ[२] : इ् *(य्)* र् ल ळ् ळ्ह् उ् *(.व्)*

(५) छ अघोष[३] ऊष्म[४] : श् ष् स्

---

[१] स्पर्श उन ध्वनियों को कहते हैं जिन के उच्चारण में मुख के अंदर या बाहर के दो उच्चारण-अवयव एक दूसरे को इतनी ज़ोर से स्पर्श कर के सहसा खुलते हैं कि निःश्वास थोड़ी देर के लिए बिल्कुल रुक कर फिर वेग के साथ सहसा बाहर निकलती है। पंचवर्ग इस के उदाहरण हैं। स्पर्श ध्वनियों को स्फोटक भी कहते हैं।

स्पर्श ध्वनियों में दो भेद हैं—अल्पप्राण और महाप्राण। अल्पप्राण ध्वनियों में ह-कार की ध्वनि का मिश्रण नहीं होता। महाप्राण ध्वनियों में ह-कार की ध्वनि मिश्रित होती है। वैदिक ध्वनिसमूह में पंचवर्गों के दूसरे चौथे वर्ण तथा ऊष्म ध्वनियें महाप्राण हैं। शेष समस्त ध्वनियें अल्पप्राण हैं। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अघोष व्यंजनों के साथ अघोष ह् आता है तथा घोष व्यंजनों के साथ घोष ह् आता है।

[२] अंतस्थ वे ध्वनियां कहलाती हैं जिन के उच्चारण में मुख विवर सकरा तो कर दिया जाता है किंतु न तो इतना अधिक कि स्पर्श अथवा संघर्षी ध्वनियें निकलें और न इतना कम कि ध्वनियें स्वर का रूप धारण कर लें। शब्दार्थ की दृष्टि से स्वर और व्यंजन के 'बीच की' ध्वनियें अंतस्थ कहलाती हैं। वैदिक अंतस्थों में से आधुनिक परिभाषा के अनुसार य्. व् अर्द्धस्वर, र् लुंठित, तथा ल् ळ् ळ्ह् पार्श्विक कहलाते हैं।

[३] अघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों की सहायता नहीं ली जाती। घोष वे ध्वनियां हैं जिन के उच्चारण में स्वरतंत्रियों की सहायता ली जाती है। स्पर्श व्यंजनों के पहले दूसरे वर्ण, ह् को छोड़ कर शेष ऊष्म ध्वनियाँ अघोष हैं तथा अन्य समस्त ध्वनियाँ घोष हैं।

[४] ऊष्म यहां उन ध्वनियों की संज्ञा है जिन में मुखविवर के खुले रहने पर भी

(विसर्जनीय या विसर्ग) :
(जिह्वामूलीय) ×
(उपध्मानीय) ×

(६) एक सघोष ऊष्म : ह्

(७) एक शुद्ध अनुस्वार :

२. वैदिक ध्वनियों का जो उच्चारण आजकल प्रचलित है ठीक वैसा ही उच्चारण वैदिक काल में भी रहा हो यह आवश्यक नहीं है। संभावना तो यह है कि उच्चारण में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ होगा। प्राचीन शिक्षाग्रंथ, प्रातिशाख्य तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों और ध्वनिशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर मूलवैदिक ध्वनियों की उच्चारण-संबंधी विशेषताओं का निर्द्धारण किया गया है। संक्षेप में ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

ऋक्प्रातिशाख्य में ऋ का उच्चारण वर्त्स्य माना गया है, साथ ही इसे मूर्द्धन्य स्वर भी कहा गया है। बाद को ऋ का उच्चारण कदाचित् जीभ को दो बार वर्त्स में छुआ कर होने लगा था। कुछ कुछ ऐसा ही उच्चारण अब भी कहीं-कहीं प्रचलित है। वास्तव में ऋ के मूल उच्चारण के संबंध में बहुत मतभेद है। ऋ का दीर्घरूप ॠ है।

ऌ का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। वैदिक धातुओं में केवल क्लृप् में यह स्वर पाया जाता है। चैटर्जी के मतानुसार[1] ऌ का उच्चारण

निःश्वास इतनी ज़ोर से फेंकी जाय कि जिस से वायु का संघर्षण हो।

[1] चै०, बे० लै०, § १३०

अंग्रेज़ी के *लिट्ल्* (little) शब्द के दूसरे ल् से मिलता-जुलता रहा होगा।

भारतीय आर्यभाषा-काल के पूर्व ए ओ संधिस्वर (*अ+इ; अ+उ*) थे। संस्कृत काल में इन का उच्चारण दीर्घमूल स्वरों के समान हो गया था, यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से ये संधिस्वर ही माने जाते थे।

वैदिक काल में आते-आते ही *आइ आउ* का पूर्व स्वर ह्रस्व हो गया था। इन संयुक्त स्वरों का यह रूप, *अइ अउ*, संस्कृत में अब तक मौजूद है। देवनागरी लिपि में ये साधारणतया ऐ औ लिखे जाते हैं।

वैदिक काल में चवर्गीय ध्वनियें आजकल की तरह स्पर्श संघर्षी न होकर केवलमात्र स्पर्श थीं।

टवर्गीय ध्वनियों का स्थान आजकल की अपेक्षा कुछ ऊपर था।

प्रातिशाख्यों के अनुसार तवर्ग का स्थान दंत न होकर वर्त्स था।

इँ उँ शुद्ध अर्द्धस्वर थे।

ळ् ळ्ह् ध्वनियें कदाचित् उस बोली में वर्तमान थीं जिसके आधार पर ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा बनी थी। दो स्वरों के बीच में आने वाले ड् ढ् से इन की उत्पत्ति मानी जा सकती है।

अनुस्वार वास्तव में स्वर के बाद आने वाली शुद्ध नासिक्य ध्वनि थी किंतु कुछ प्रातिशाख्यों से पता चलता है कि अनुस्वार तभी अनुनासिक स्वर में परिवर्तित होने लगा था। अनुस्वार केवल य् र ल् .व् श् ष् स् ह् के पहले आता था। स्पर्श व्यजनों के पहले यह वर्गीय अनुनासिक व्यंजन में परिवर्तित हो जाता था।

क् के पहले आने वाले विसर्ग का रूपांतर जिह्वामूलीय (ᳵ) कहलाता था। *ततः किं* में विसर्ग की ध्वनि कुछ कुछ ख् के समान सुनाई पड़ती है।

इसे जिह्वामूलीय कहते थे। इसी प्रकार प् के पहले आने वाले विसर्ग का रूपांतर उपध्मानीय (⨯) कहलाता था। पुनः पुनः में प्रथम विसर्ग में कुछ-कुछ ऐसी आवाज़ निकाली जा सकती है जैसी धीरे से चिराग़ बुझाते समय होठों से निकलती है। इसे उपध्मानीय कहते हैं।

शेष वैदिक ध्वनियों के उच्चारण इन के आधुनिक हिंदी उच्चारणों से विशेष भिन्न नहीं थे।

३. आधुनिक ध्वनिशास्त्र के दृष्टिकोण से ५२ वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण[1] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है :—

स्वर[2]

	अग्र		पश्च
वृत	इ ई		उ ऊ
अर्द्धसंवृत	ए		ओ
विवृत			अ आ
संयुक्त स्वर		अइ अउ	
विशेष स्वर		ऋ ॠ ऌ	
शुद्ध अनुस्वार		ं	

[1] चै., बे. लै., § १२८

[2] स्वरों के वर्गीकरण के सिद्धांत के लिए देखिए § १०

व्यंजन

	द्व्योष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श अल्पप्राण	प् ब्	त् द्	ट् ड	च् ज्	क् ग्	
स्पर्श महाप्राण	फ् भ्	थ् ध्	ठ् ढ्	छ झ्	ख घ	
अनुनासिक	म्	न्	ण	ञ्	ङ	
पार्श्विक[1] अल्पप्राण		ल्	ळ्			
पार्श्विक महाप्राण			ळ्ह्			
उत्क्षिप्त[2]		र				
संघर्षी[3]	ᳵ (उप०)	स	ष्	श्	ᳲ (जिह्वा०)	ः ह
अर्द्धस्वर	उँ(व)			इँ(य्)		

४. ळ्, ळ्ह्, जिह्वामूलीय, तथा उपध्मानीय को छोड़ कर शेष समस्त वैदिक ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में होता रहा। कुछ ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन हो गए थे। ऋ, ॠ, ऌ का मूलस्वरों के सदृश उच्चारण का

[1] पार्श्विक उन ध्वनियों को कहते हैं जिन के उच्चारण में मुखविवर को सामने से तो जीभ बंद कर दे किंतु दोनों पार्श्वों से निःश्वास निकलती रहे।

[2] उत्क्षिप्त उन ध्वनियों को कहते हैं जिन में जीभ तालु के किसी भाग को वेग से मार कर हट आवे।

[3] संघर्षी उन ध्वनियों को कहते हैं जिन के उच्चारण में मुखविवर इतना अधिक सकरा कर दिया जाता है कि निःश्वास रगड़ खाकर निकलती है। संघर्षी ध्वनियाँ ही ऊष्म कहलाती थीं।

अस्तित्व संदिग्ध है। ए ओ का उच्चारण संस्कृत में मूलस्वरों के सदृश था। आइ आउ निश्चित रूप से अइ अउ हो गए थे। पाणिनि के समय में ही उँ दंत्योष्ठ्य व् तथा द्वयोष्ठ्य व् में परिवर्तित हो चुका था तथा इँ ने बाद को य् तथा य् का रूप धारण कर लिया था। अनुस्वार पिछले स्वर से मिल कर अनुनासिक स्वर की तरह उच्चरित होने लगा था।

ख. पाली तथा प्राकृत ध्वनिसमूह

५. पाली में दस स्वर —अ आ इ ई उ ऊ ए ए ओ ओ— पाए जाते हैं। ऋ ॠ लृ ऐ औ का प्रयोग पाली भाषा में नहीं होता। ऋ ध्वनि अ इ उ आदि किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती है। ॠ लृ का प्रयोग संस्कृत में ही नहीं के बराबर हो गया था। ऐ औ के स्थान में ए ओ क्रम से हो जाते हैं। पाली में दो नए स्वर ए ओ—ह्रस्व ए ओ— पहले-पहल मिलते हैं।

व्यंजनों में पाली में श् ष् नहीं पाए जाते। श् ष् के स्थान पर भी स् का ही व्यवहार मिलता है।

पाली में विसर्ग का प्रयोग भी नहीं पाया जाता। पद के अंत में आने वाला विसर्ग पूर्ववर्ती अ से मिल कर ओ में परिवर्तित हो जाता है, अन्यत्र उस का लोप हो जाता है।

शेष ध्वनियां पाली में संस्कृत के ही समान हैं।

६. प्राकृत भाषाओं में और पाली के ध्वनिसमूह में विशेष भेद नहीं है। मागधी को छोड़ कर अन्य प्राकृतों में ष् और श् का व्यवहार प्रचलित नहीं है। मागधी में स् के स्थान पर भी श् ही मिलता है। ष् और विसर्ग का प्रयोग प्राकृतों में नहीं लौट सका। अशोक के लेखों में पश्चिमोत्तरी प्राकृत में ष् अवश्य मिलता है।

ग. हिंदी ध्वनिसमूह

७. आधुनिक साहित्यिक हिंदी में अधिकांश ध्वनियां तो परंपरागत भारतीय आर्यभाषा के ध्वनिसमूह से आई हैं, कुछ ध्वनियां आधुनिक काल में

विकसित हुई हैं, तथा कुछ ध्वनियां फ़ारसी-अरबी और अंग्रेज़ी के संपर्क से भी आ गई हैं। इस दृष्टि से साहित्यिक हिंदी में प्रचलित मूल ध्वनियां नीचे दी जाती हैं :—

(१) प्राचीन ध्वनियां :

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ
क् ख् ग् घ् ङ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न्
प् फ् ब् भ् म्
य् र् ल् व्
श् स् ह्

(२) नई विकसित ध्वनियां :

अॅ (ऐ) अॉ (औ); ड़् ढ़् .व् न्ह् म्ह्

(३) फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियां :

क़् ख़् .ग् .ज् फ़्

(४) अंग्रेज़ी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियां :

ऑ

फ़ारसी अरबी तथा अंग्रेज़ी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त विशेष ध्वनियां नगरों में शिक्षितवर्ग ही बोलता है।

८. ऋ ष् ञ् वर्ण संस्कृत तत्सम शब्दों में लिखे तो जाते हैं किंतु हिंदी-भाषाभाषी इन के मूल रूप का उच्चारण नहीं करते। सं० ऋ तत्सम शब्दों में भी उच्चारण में *रि* हो गई है, जैसे *ऋण, कृपा, प्रकृति* आदि शब्दों का वास्तविक उच्चारण हिंदी में *रिण, क्रिपा* तथा *प्रक्रिति* है। ष् का उच्चारण हिंदी में श् के समान होता है। उच्चारण की दृष्टि से *पोषक, कष्ट, कृषक* आदि *पोशक, कश्ट, क्रिशक* हो गए हैं। ञ् संस्कृत शब्दों में भी स्वतंत्र रूप से नहीं आता है। शब्द के मध्य में आने वाले ञ् का उच्चारण साहित्यिक हिंदी में न् के समान होता है, जैसे *चञ्चल, मञ्जन, काञ्चन* वास्तव में

चन्चल, मन्जन, कान्चन बोले जाते हैं। इसीलिए इन तीन ध्वनियों का उल्लेख ऊपर की सूची में नहीं किया गया है। *ण्* का उच्चारण भी हिंदी में न् के समान होता है जैसे *पण्डित, ठण्डा, ताण्डव* उच्चारण में *पन्डित, ठन्डा, तान्डव* हो जाते हैं। तत्सम शब्दों में प्रयुक्त सस्वर *ण्* का प्रयोग हिंदी में होता है, जैसे *गणना, गणेश, कण* इत्यादि में किंतु इसका शुद्ध उच्चारण पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में ही मिलता है, पूर्वीय में वास्तव में यह ड़ँ के समान बोला जाता है।

हिंदी की बोलियों में कुछ विशेष ध्वनियां पाई जाती हैं जिन का व्यवहार आधुनिक साहित्यिक हिंदी में नहीं होता। ये ध्वनियां निम्नलिखित हैं :—

अ ए ओ ऍ ऑ ऍ ऑ; इ उ ए; ञ्; र्ह्, ल्ह

६. आधुनिक साहित्यिक हिंदी तथा बोलियों में व्यवहृत समस्त ध्वनियां आधुनिक शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार नीचे दी जा रही हैं केवल बोलियों में व्यवहृत ध्वनियां कोष्ठक में दी गई हैं :—

(१) मूलस्वर : अ आ ऑ [ऑ] [ऑ] [ओ] ओ उ [उ]
ऊ ई इ [इ] ए [ए] [ए] [ऍ] [ऍ]
[अ]

मूलस्वरों के अनुनासिक तथा संयुक्त रूप भी पाए जाते हैं। इन का विवेचन आगे विस्तार से किया गया है।

(२) स्पर्श : क् क़् ख् ग् घ्
ट् ठ् ड् ढ्
त् थ् द् ध्
प् फ् ब् भ्

(३) स्पर्शसंघर्षी : च् छ् ज् झ्

(४) अनुनासिक : ङ् [ञ्] ण् न् न्ह् म् म्ह्

(५) पार्श्विक : ल् [ल्ह्]

(६) लुंठित[1] : र् [र्ह्]

(७) उत्क्षिप्त : ड़् ढ़्

(८) संघर्षी : ः ह् .ख् .ग् श् स् .ज् .फ् व्

(९) अर्द्धस्वर : य् .व्

ऊपर दिए हुए क्रम के अनुसार प्रत्येक हिंदी ध्वनि[2] का विस्तृत वर्णन उदाहरण सहित आगे दिया गया है।

आ. हिंदी ध्वनियों का वर्णन

क. मूलस्वर

१०. जीभ के अगले या पिछले भाग के ऊपर उठने की दृष्टि से स्वरों के दो मुख्य भेद माने जाते हैं जिन्हें अगले या अग्रस्वर और पिछले या

---

[1] लुंठित उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में जीभ बेलन की तरह लपेट खा कर तालु को छुए। चैटर्जी (बे. लै., § १४०) तथा क़ादरी (हि. फ़ो., पृ० ६४) आधुनिक र् को उत्क्षिप्त मानते हैं किंतु सकसेना ने (ए. अ., § १) इसे लुंठित माना है।

[2] यहाँ पर भाषा-ध्वनि (speech-sound) तथा ध्वनि-श्रेणी (phoneme) का भेद समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक भाषा-ध्वनि का उच्चारण एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न स्थलों पर कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ करता है, साथ ही भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण कुछ पृथक् ढंग से करते हैं। उदाहरण के लिए अ का उच्चारण भिन्न-भिन्न स्थलों तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा बहुत प्रकार का हो सकता है। यह अवश्य है कि अ के ऐसे भिन्न-भिन्न रूपों में बहुत ही कम अंतर होता है। साधारणतया कान इस अंतर को नहीं पकड़ता। शास्त्रीय दृष्टि से अ के ये सब भिन्न रूप पृथक् पृथक् भाषा ध्वनियाँ हैं और सूक्ष्मदृष्टि से एक-दूसरे से उसी रूप में भिन्न हैं जिस रूप में अ और ए भिन्न हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से अ की इन सब मिलती-जुलती ध्वनियों को एक ही श्रेणी में रख लिया जाता है अतः अ के ये सब मिलते-जुलते रूप अ ध्वनि-श्रेणी के अंतर्गत माने जाते हैं और व्यवहार में इन सब के लिए एक ही लिपि-चिह्न प्रयुक्त होता है।

हिंदी ध्वनियों का जो वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है वह वास्तव में ध्वनि-श्रेणियों का है। प्रत्येक ध्वनि-श्रेणी के अंतर्गत भाषा ध्वनियों के सूक्ष्म भेदों के अनुसार

पश्चस्वर कहते हैं। कुछ स्वर ऐसे भी हैं जिन के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग ऊपर उठता है। ऐसे स्वर बिचले या मध्यस्वर कहलाते हैं। प्रत्येक स्वर के उच्चारण में जीभ का अगला, बिचला या पिछला भाग भिन्न-भिन्न मात्रा में ऊपर उठता है। इस कारण मुख-द्वार के अधिक या कम खुलने की दृष्टि से स्वरों के चार भेद किए जाते हैं, (१) विवृत या खुले हुए, (२) अर्द्धविवृत या अधखुले, (३) अर्द्धसंवृत या अधसकरे और (४) संवृत या सकरे। इन दोनों प्रकार के भेदों को दृष्टि में रखते हुए आठ प्रधान स्वर माने गए हैं जो भिन्न-भिन्न भाषाओं के स्वरों के अध्ययन के लिए बाटों का काम देते हैं। इन आठ प्रधान स्वरों के स्थान नीचे दिए हुए चित्र में दिखलाए गए हैं—
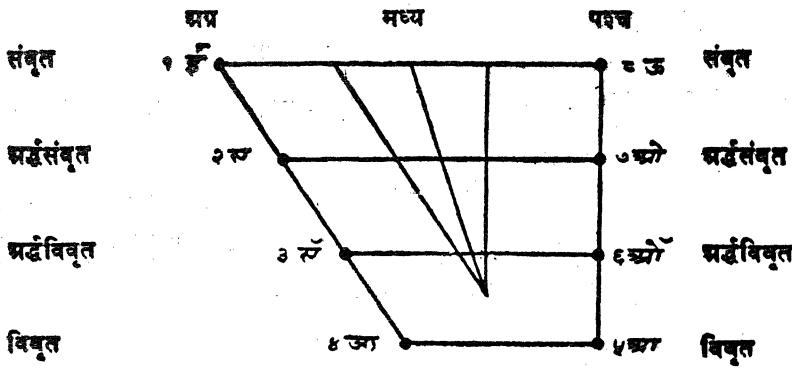
११. इन आठ प्रधान स्वरों के स्थानों को ध्यान में रखते हुए हिंदी के मूल स्वरों के स्थानों को नीचे के चित्र[1] की सहायता से समझा जा सकता है। केवल बोलियों में पाए जाने वाले स्वर कोष्ठक में दिए गए हैं:—

अनेक रूप पाए जाते हैं। इनका वर्णन ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से हिंदी ध्वनिसमूह के विस्तृत विवेचन के अन्तर्गत ही आ सकता है। हिंदी ध्वनियों का इस तरह का विवेचन प्रस्तुत पुस्तक के मुख्य विषय से संबंध नहीं रखता।

[1] क़ादरी, हि. फ़ो., पृ० ४८; सक., ए. अ., § ६; सुनीतिकुमार चैटर्जी, 'ए स्केच आव बेंगाली फ़ोनेटिक्स' (१६२१)
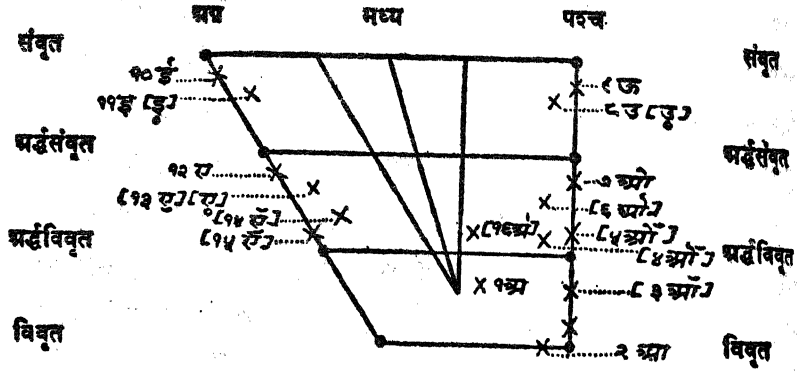
१२. अ : यह अर्द्धविवृत मध्यस्वर है अर्थात् इस के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग कुछ ऊपर उठता है और होठ कुछ खुल जाते हैं। अ का व्यवहार बहुत शब्दों में पाया जाता है। *अब, कमल, सरल,* शब्दों में *अ क म स र* में अ का उच्चारण होता है।

शब्दांश के मध्य या अंत में आने से अ की दो मुख्य भाषाध्वनियां पाई जाती हैं। शब्दांश के अंत में आने वाला अ कुछ दीर्घ होता है और कुछ अधिक खुला तथा पीछे की ओर हटा होता है। ये दो प्रकार के अ खुला अ तथा बंद अ कहला सकते हैं। ऊपर के उदाहरणों में *अ, म, र* के अ बंद अ हैं तथा *क* और *स* के अ खुले अ हैं।

हिंदी में शब्द या शब्दांश के अंत में आने वाले अ का उच्चारण नहीं होता है किंतु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं।[1] ऊपर के उदाहरणों में *ब ल ल* में उच्चारण की दृष्टि से अ नहीं है। वास्तव में इन शब्दों में ये तीनों व्यंजन अकार रहित हैं अतः उच्चारण की दृष्टि से इन शब्दों का शुद्ध लिखित रूप *अब् कमल् सरल्* होगा।

१३. आ : उच्चारण में एक या अर्द्धमात्रा काल अधिक होने के अतिरिक्त आ और अ में स्थानभेद भी है। आ विवृत पश्चस्वर है और प्रधान

---

[1] गु., हि. व्या., § ३८

स्वर आ से बहुत मिलता-जुलता है। इस के उच्चारण में जीभ के नीचे रहने पर भी उसका पिछला भाग कुछ अंदर की तरफ़ ऊपर उठ जाता है। होठ बिलकुल गोल नहीं किए जाते, अ की अपेक्षा कुछ खुल अधिक अवश्य जाते हैं। यह स्वर ह्रस्व रूप में व्यवहृत नहीं होता।

उदा० *आदमी, काला, बादाम* ।

१४. *ऑ* : अंग्रेज़ी के कुछ तत्सम शब्दों के लिखने में *ऑ* चिह्न का व्यवहार हिंदी में होने लगा है। अंग्रेज़ी *ऑ* का स्थान *आ* से काफ़ी ऊँचा है। प्रधान स्वर ऑ से *ऑ* का स्थान कुछ ही नीचा रह जाता है। अंग्रेज़ी में *ऑ* के अतिरिक्त उस का ह्रस्व रूप *ॲ* भी व्यवहृत होता है। हिंदी में दोनों के लिए दीर्घ रूप का ही व्यवहार लिखने और बोलने में साधारणतया किया जाता है।

उदा० *कॉङ्ग्रेस, कॉफ़्रेन्स, लॉर्ड* ।

१५. ऑ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्द्धविवृत पश्च प्रधान स्वर के स्थान की अपेक्षा कुछ ऊपर की तरफ़ तथा अंदर की ओर दबा हुआ रहता है और होठ खुले गोल रहते हैं। इस का व्यवहार ब्रजभाषा में पाया जाता है।

उदा० *अवलोकि हौं सोच विमोचन को* (कवितावली, बाल०, १); *बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं* जू। (कवितावली, अयोध्या०, ६)।

१६. ऑ : यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्चस्वर है और इस के उच्चारण में होठ कुछ अधिक खुले गोल रहते हैं। प्रधान स्वर *ऑ* से इस का स्थान कुछ ऊँचा है। इस का व्यवहार भी ब्रजभाषा में मिलता है। देवनागरी लिपि में इस ध्वनि के लिए पृथक् चिह्न न होने के कारण ऑ के स्थान पर ओ या औ लिख दिया जाता है किंतु वास्तव में यह ध्वनि इन दोनों से भिन्न है। ब्रज-वासियों के मुख से यह ध्वनि

स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ती है। ब्रजभाषा के *वाकों, ऐसों गायों, खायों* आदि शब्दों में वास्तव में ऑं ध्वनि है।

तेज़ी से बोलने में हिंदी संयुक्त स्वर *औ (अओ)* का उच्चारण मूल स्वर ऑं के समान हो जाता है। उदाहरण के लिए *औरत, मौन, सौ* आदि शब्दों के शीघ्र बोलने में औ ध्वनि ऑं के सदृश सुनाई पड़ने लगती है।

१७. ऑ : यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इस के उच्चारण में होठ काफ़ी अधिक गोल किए जाते हैं। प्रधान स्वर की अपेक्षा इस का उच्चारण स्थान अधिक नीचा तथा मध्य की ओर झुका है। इस का व्यवहार हिंदी की कुछ बोलियों में होता है। प्राचीन ब्रजभाषा काव्य में इस ध्वनि का व्यवहार स्वतंत्रता-पूर्वक पाया जाता है।

उदा० *पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं* (कवितावली, बाल०, ४); *ओहि केर बिटिया* (अवधी बोली)।

१८. ओ : यह अर्द्धसंवृत दीर्घ पश्चस्वर है। इस के उच्चारण में होठ स्पष्ट रूप से गोल हो जाते हैं। प्रधान स्वर से इस का उच्चारण स्थान कुछ ही नीचा है। हिंदी में यह मूल स्वर है, संयुक्त स्वर नहीं। संस्कृत की मूल ध्वनि के प्रभाव के कारण इसे संयुक्त स्वर मानने का भ्रम हिंदी में अब तक चला जा रहा है।

उदा० *ओस, बोतल, चाटो*।

१९. उ : यह संवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग काफ़ी ऊपर उठता है किंतु ऊ के स्थान की अपेक्षा नीचे तथा मध्य की ओर झुका रहता है। साथ ही होठ बंद गोल किए जाते हैं।

उदा० *उस, मधुर, ऋतु*।

२०. उ़ : हिंदी की कुछ बोलियों में फुसफुसाहट वाला उ भी पाया जाता है।

फुसफुसाहट वाले स्वर[1] तथा पूर्ण स्वर का स्थान एक ही होता है किंतु दोनों में अंतर है। पूर्ण स्वर के उच्चारण में दोनों स्वरतंत्रियां पूर्ण-रूप से तनी हुई बंद हो जाती हैं जिस से फेफड़ों से निकलती हुई हवा रगड़ खा कर निकलती है और घोष ध्वनियों का कारण होती है। फुसफुसाहट वाले स्वरों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों के दो तिहाई होठ बिल्कुल बंद रहते हैं किंतु तने नहीं रहते तथा एक तिहाई होठ खुले रहते हैं जिन से थोड़ी मात्रा में हवा धीरे-धीरे निकल सकती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि साधारण साँस लेने में स्वरतंत्रियों का मुँह बिल्कुल खुला रहता है तथा खाँसने के पहले या हम्ज़ा के उच्चारण में यह द्वार बिल्कुल बंद होकर सहसा खुलता है। कानाफूसी में जो बात-चीत होती है वह फुसफुसाहट वाली ध्वनियों की सहायता से ही होती है।

ब्रज तथा अवधी[2] में शब्दों के अंत में फुसफुसाहट वाला अर्थात् अघोष उ॒ आता है।

उदा० ब्र० *जातउ॒*, ब्र० *आवतउ॒*; अव० *ऊँटउ॒*, अव० *मोरउ॒*[2]।

२१. ऊ : यह संवृत दीर्घ पश्च स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग इतने ऊपर उठ जाता है कि कोमल तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। ऊ का उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर ऊ से कुछ ही नीचा है। उ की अपेक्षा ऊ के उच्चारण में होठ अधिक ज़ोर के साथ बंद गोल हो जाते हैं।

उदा० ऊपर, मसूर, बालू।

२२. ई : यह संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का अगला भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कठोरतालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। प्रधान स्वर ई की अपेक्षा हिंदी ई का उच्चारण-स्थान कुछ नीचा है। ई के उच्चारण में होठ फैले खुले रहते हैं।

---

[1] ब्ला., फो. इं., § ५५

[2] सक., ए. अ., § ११७

उदा० *ईख, अमीर, आती।*

२३. इ : यह संवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इस का उच्चारण स्थान ई की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा अंदर की ओर है। इस के उच्चारण में फैले हुए होठ ढीले रहते हैं।

उदा० *इस, मिलाप, आदि।*

२४. इ॰ : घोष इ का यह फुसफुसाहट वाला रूप है। उच्चारण स्थान की दृष्टि से इन दोनों में कोई भेद नहीं है किंतु इ॰ के उच्चारण में स्वरतंत्रियां घोष ध्वनि नहीं उत्पन्न करतीं बल्कि फुसफुसाहट वाली ध्वनि उत्पन्न करती हैं। यह स्वर ब्रज तथा अवधी[1] आदि बोलियों में कुछ शब्दों के अंत में पाया जाता है।

उदा० *आवतइ॰*, अव० *गीलइ॰*।

२५. ए : यह अर्द्धसंवृत दीर्घ अग्र स्वर है। इस का उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ए से कुछ नीचा है। ए के उच्चारण में होठ ई की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं।

उदा० *एक, अनेक, चले।*

२६. ऎ : यह अर्द्धसंवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ए की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा बीच की ओर झुका हुआ रहता है। इस का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में तो नहीं है किंतु हिंदी की बोलियों में इस का व्यवहार बराबर मिलता है।

उदा० *अवधेस के द्वारे सकारे गई* (कवितावली, बाल०, १), अव० *ओहि केर बेटवा।*

२७. ऎ॰ : घोष ऎ का यह फुसफुसाहट वाला रूप है। इस का उच्चारण स्थान ऎ के समान ही है, भेद केवल घोष ध्वनि और फुस-

---

[1] सक., ए. अ., § ११६

फुसाहट वाली ध्वनि का है। यह ध्वनि अवधी शब्दों[1] में मिलती है जैसे, *कहेसए*। ब्रजभाषा में कदाचित् यह ध्वनि नहीं है। साहित्यिक हिंदी में भी इस का प्रयोग नहीं पाया जाता।

२८. एँ : यह अर्द्धविवृत दीर्घ अग्र स्वर है इस का उच्चारण स्थान प्रधान स्वर ऍ से कुछ ऊँचा है। यह स्वर ब्रज की बोली की विशेषताओं में से एक है। ब्रज में संयुक्त स्वर ऐ (*अए*) के स्थान पर यह मूल स्वर ही बोला जाता है।

उदा० *ऍसो, कॅसो*।

क़ादरी[2] हिंदुस्तानी संयुक्त स्वर ऐ को संयुक्त स्वर नहीं मानते हैं। उदाहरणार्थ उन्हों ने ऐब, क़ैद, जै में यही मूल स्वर माना है। चैटर्जी[3] ने बँगला ऐ को भी मूल स्वर ही माना है। वास्तव में हिंदी ऐ साधारणतया संयुक्त स्वर है किंतु जल्दी बोलने में कभी कभी मूल ह्रस्व स्वर ऍ के समान इस का उच्चारण हो जाता है। बेली[4] ने पंजाबी भाषा में ऐ को मूल ह्रस्व स्वर माना है जैसे, पं० *पैर, पैले* (हि० *पहले*) *शैर* (हि० *शहर*)।

२९. ऍ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्र स्वर है। इस के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऍ की अपेक्षा कुछ नीचा तथा अंदर की ओर झुका रहता है। इस का व्यवहार ब्रजभाषा काव्य में बराबर मिलता है जैसे, *सुत गोद कॅ भूपति लै निकसे* (कविता०, बाल, १)। जैसे ऊपर बताया गया है, हिंदी संयुक्त स्वर ऐ शीघ्रता से बोलने में मूल ह्रस्वस्वर ऍ हो जाता है।

---

[1] सक., ए. अ., § ११८

[2] क़ादरी, हि. फ़ो., § पृ० ५१

[3] चै., बे. लै., §१४०

[4] बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV.

३०. अ : यह अर्द्धविवृत मध्य ह्रस्वार्द्ध स्वर है और हिंदी अ से मिलता-जुलता है। इस के उच्चारण में जीभ के मध्य का भाग अ की अपेक्षा कुछ अधिक ऊपर उठ जाता है। अंग्रेज़ी में इसे 'उदासीन स्वर (neutral vowel) कहते हैं और ə से चिह्नित करते हैं। यह ध्वनि अवधी[1] बोली में पाई जाती है, जैसे *सोरहीं, रामकं*। पंजाबी भाषा में[2] यह ध्वनि बहुत शब्दों में सुनाई पड़ती है जैसे, पं० *रंईस्*, *वंचारा* (हि० बिचारा), *नौकर्* (हि० नौकर्)।

ख. अनुनासिक स्वर

३१. साहित्यिक हिंदी के प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप भी पाया जाता है। फुसफुसाहट वाले स्वरों और उदासीन स्वर (*अ*) को छोड़ कर हिंदी बोलियों में आने वाले अन्य विशेष स्वरों के भी प्रायः अनुनासिक रूप होते हैं। मूलस्वरों के समान समस्त अनुनासिक स्वरों का व्यवहार शब्दों में प्रत्येक स्थान पर नहीं मिलता है।

वास्तव में अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक स्वर से बिल्कुल भिन्न मानना चाहिए क्योंकि इस भेद के कारण शब्दभेद या अर्थभेद या दोनों ही भेद हो सकते हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है किंतु साथ ही कोमल तालु और कौवा नीचे झुका आता है जिस से मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त हवा का कुछ भाग नासिका-विवर में गूँज कर निकलता है। इसी से स्वर में अनुनासिकता आ जाती है।[3]

---

[1] सक., ए. अ., § ९६

[2] लेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XIV

[3] देवनागरी लिपि में अनुनासिक स्वर को प्रकट करने के लिए स्वर के ऊपर कहीं बिंदी और कहीं अर्द्धचंद्र लगाया जाता है। इस पुस्तक में उदाहरणों में अनुनासिक स्वर के ऊपर बराबर बिंदी का ही प्रयोग किया गया है।

हिंदी की बोलियों में बुंदेली में अनुनासिक स्वरों का प्रयोग अधिक होता है।

३२. नीचे अनुनासिक स्वर उदाहरण सहित दिए गए हैं :—

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त अनुनासिक स्वर

अं : अंगरखा, हंसी, गंवार।
आं : आंसू, बांस, सांचा।
ओं : सोंठ, जानवरों, कोसों।
उं : घुंघची, बुंदेली।
ऊं : ऊंघना, सूंघता, गेहूं।
ईं : ईंगुर, सींचना, आईं।
इं : बिंदिया, सिंघाड़ा, घनिया।
एं : गेंद, बातें, में।

केवल बोलियों में प्रयुक्त अनुनासिक स्वर

ओँ : ब्र० लौं, सौं (कविता०, उत्तर०, ३५)।
औं : ब्र० भौं, हौं (कविता०, उत्तर०, ४१, ५९)।
ओं : अव० गों ठिबा[1] (हि० गांठ में बांधूँगा)।
एुं : अव०[2]एुंडुआ. (हि०सर पर मटकी या घड़े के नीचे रखने की रस्सी का गोल घेरा) घेंटुआ (हि० गला)
ऍं : ब्र० तैं, तैं (कविता०, उत्तर०, ४४, १२१)।
ऍुं : ब्र० तैं, मैं (कविता०, उत्तर०, ९१,१२८)।

---

[1] सक., ए. अ, § १२१
[2] सक., ए. अ., § १२१

ग. संयुक्तस्वर

३३. हिंदी में केवल दो संयुक्त स्वरों को लिखने के लिए देवनागरी लिपि में पृथक चिह्न हैं। ये ऐ (अए) और औ (अओ) हैं। इन्हीं चिह्नों का प्रयोग ब्रजभाषा मूलस्वर ऐं और औं के लिए तथा संस्कृत, हिंदी की कुछ बोलियों और कुछ साहित्यिक हिंदी के रूपों में पाए जाने वाले अइ और अउ संयुक्त स्वरों के लिए भी किया जाता है। इस पुस्तक में ऐ औ का प्रयोग क्रम से केवल अए अओ संयुक्त स्वरों के लिए किया गया है।

सिद्धान्त की दृष्टि से संयुक्त स्वर[1] के उच्चारण में मुख अवयव एक स्वर के उच्चारण-स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारण-स्थान की ओर सीधे मार्ग से तेज़ी से बदलते हैं जिस से साँस के एक ही झोंक में, अवयवों में परिवर्तन होती हुई अवस्था में, ध्वनि का उच्चारण होता है। अतः संयुक्त स्वर को दो भिन्न स्वरों का संयुक्त रूप मानना ठीक नहीं है। संयुक्त स्वर एक अक्षर हो जाता है किंतु निकट आने वाले दो भिन्न स्वर वास्तव में दो अक्षर हैं। यदि ठीक उच्चारण किया जाय तो ऐ (अए) और अ—ए में प्रथम संयुक्त स्वर है और दूसरा दो स्वरों का समूह मात्र है।

सच्चे संयुक्त स्वर तथा निकट में आने वाले दो या अधिक स्वतंत्र मूल स्वरों में सिद्धान्त की दृष्टि से भेद चाहे किया जा सके किंतु व्यवहारिक दृष्टि से दोनों में भेद करना कठिन है। निकट आने वाले स्वर प्रचलित उच्चारण में संयुक्त स्वर हो जाते हैं। इसी लिए यहां संयुक्त स्वर और स्वरसमूह में भेद नहीं किया गया है—दोनों ही के लिए संयुक्त स्वर शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रचलित लिपि चिह्न ऐ औ के अतिरिक्त अन्य संयुक्त स्वरों के लिए मूल स्वरों का व्यवहार किया गया है।

---

[1] वा., फ़ो. इं., § १६६

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिंदी में ऐ (अए), औ (अओ) ही संयुक्त स्वर माने जा सकेंगे।

३४. वास्तव में हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में प्रयुक्त दो स्वरों के संयुक्त रूपों की संख्या बहुत अधिक है। नीचे हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वर उदाहरण सहित दिए जा रहे हैं।

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त दो स्वरों का संयोग

औ (अओ)	:	औरत, बौनी, सौ।
अई	:	कई, गई, नई।
ऐ (अए)	:	ऐसा, कैसा, बैर।
अए	:	गए, नए, घए (चूल्हे में रोटी सेकने की जगह)
आओ	:	आओ, खाओ, लाओ।
आऊ	:	घराऊ, खाऊ, नाऊ।
आई	:	आई, काई, नाई।
आए	:	राए, गाए, जाए।
ओई	:	खोई, लोई, कोई।
ओए	:	बोए, खोए, रोए।
ओआ	:	सोआ, खोआ, चोआ।
उआ	:	बुआ, चुआ, जुआ।

[1] यहां पर यह स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि संयुक्त स्वरों के एक अंश में इ, ई, ◌ु, या ए होने पर तालव्य अर्द्ध स्वर य् तथा उ, ऊ, ओ या औ होने पर कंठ्योष्ठ्य अर्द्ध स्वर व् लिखने की प्रथा रही है, जैसे आयी, आये, लिया, वियोग बुवा, आवो, खोवा, केवड़ा आदि। उच्चारण की दृष्टि से य् या व का आना संदिग्ध है, इसीलिए इस तरह के समस्त स्वरसमूहों को संयुक्त स्वर माना गया है।

उई : सुई, चुई, रुई।

उए : चुए, कुए, चुए।

इआ : लिआ, दिआ, दुनिआ।

इओ : विओग, निओग।

इए : दिए, लिए, पिए।

एआ : खेआ, सेआ, टेआ।

एई : खेई, लेई, सेई।

ऊपर के संयुक्त स्वरों के अतिरिक्त कुछ दो स्वरों के संयुक्त रूप विशेष रूप से हिंदी बोलियों में ही पाए जाते हैं। ये उदाहरण सहित[1] नीचे दिए जाते हैं।

अओ : ब्र० गओ (हि० गया), ब्र० लओ (हि० लिया)।

अउ : अव० तउ (हि० तब), अव० सउ (हि० सौ)।

अऊ : ब्र० तऊ (हि० तो भी), ब्र० गऊ (हि० गाय)।

अइ : ब्र० अइसी (हि० ऐसी), ब्र० जइसी (हि० जैसी)।

आउ : ब्र० आउ (हि० आओ), ब्र० मुटाउ (हि० मुटाव)।

आओ : ब्र० नाओ (हि० नाव)।

आइ : ब्र० आइ (हि० आ), ब्र० जाइ (हि० जावे)।

ओउ : अव० घोउना।

ओइ : अव० होइहै (हि० होगा), ब्र० सोइ (हि० वह ही)।

ओअ : अव० घोअनु।

ओआ : अव० ढोआ।

---

[1] अवधी के समस्त उदाहरण सक., ए. अ., § १२७ से लिए गए हैं।

ओउ : अव० होउ (हि० होवे), ब्र० धोउन ।

ओओ : ब्र० धोओ (हि० धोया) ।

ओइ : अव० होइ (हि० होवे) ।

उअ : ब्र० सुअन (हि० तोतों), ब्र० चुअन (हि० चूने) ।

उइ : अव० दुइ (हि० दो) ।

ऊई : अव० रूई ।

इअ : ब्र० सिंअत (हि० सींता) ।

इउ : अव० घिउ (हि० घी), ब्र० दिउली (हि० चने के दाने) ।

इई : अव० पिई (हि० पी) ।

एओ : ब्र० नेओला, ब्र० केओड़ा, ब्र० बेओपार (हि० व्यापार) ।

एउ : अव० देउ (हि० दो—देना) ।

एओ : ब्र० देओ (हि० दो—देना), ब्र० सेओ ।

एइ : अव० देइ (हि० दे), ब्र० लेइ (हि० ले) ।

एए : अव० खेए चलउ ।

३५. हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में कुछ तीन संयुक्त स्वर भी मिलते हैं । ये उदाहरण सहित नीचे दिए जा रहे हैं ।

साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त तीन संयुक्त स्वर

अइआ : तइआरी, भइआ, मइआ ।

अउआ : कउआ, ब्र० बुलउआ (हि० बुलावा) ।

आइए : आइए, गाइए, लाइए, ।

इन के अतिरिक्त कुछ तीन-संयुक्त-स्वर विशेष रूप से बोलियों में पाए जाते हैं । ये उदाहरण सहित नीचे दिए जाते हैं ।

अउएँ : ब्र० गउएँ।

अइओ : ब्र० अइओ (हि० आना), ब्र० जइओं (हि० जाना)।

आइउ : अव० आइउ (हि० तुम आई)।

आएउ : अव० खाएउ।

आइओं : ब्र० आइओं (हि० आना), ब्र० जाइओं (हि० जाना)।

ओइआ : अव० लोइआ (हि० लोई—कम्मल)।

ओएउ : अव० धोएउ (हि० धोया)।

उइआ : ब्र० घुइआ।

इअउ : अव० जिअउ (हि० जियो)।

इआई : ब्र० सिआई (हि० सिलाई), ब्र० पिआई।

(हि० पिलाई)।

इआऊ : ब्र० पिआऊ।

इएउ : अव० पिएउ (हि० पिया)।

एएउ : अव० खेएउ (हि० खेया)।

एइया : अव० नेइआ।

घ. स्पर्श व्यंजन

३६. क़् : आधुनिक साहित्यिक हिंदी में इस ध्वनि का व्यवहार केवल फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में किया जाता है। वास्तव में यह विदेशी ध्वनि है। प्राचीन साहित्य में तथा हिंदुस्तानी जनता में क़् के स्थान पर क् या ख् हो जाता है। क़् का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु के पिछले भाग से छुआ कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय, स्पर्श व्यंजन है और इस का स्थान जीभ तथा तालु दोनों की दृष्टि से सब से पीछे है।

उदा० *क़ाबिल, मुक़ाम, ताक़।*

३७. *क़* : क़ का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। प्रा० भा० आ० काल में कवर्ग का उच्चारण कोमल तालु के स्थान की दृष्टि से आजकल की अपेक्षा कदाचित् कुछ अधिक पीछे से होता था, अतः क् उस समय क़् के कुछ अधिक निकट रहा होगा। इसी लिए कवर्ग का स्थान 'कंठ्य' माना जाता था। आजकल का स्थान कुछ आगे हट आया है।

उदा० *कमला, चकिया, एक।*

३८. *ख्* : ख् और क् के उच्चारण-स्थान में कोई भेद नहीं है किंतु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। ब्रजभाषा, अवधी आदि बोलियों में फ़ारसी-अरबी संघर्षी ख़् के स्थान पर बराबर स्पर्श ख् हो जाता है।

उदा० *खटोला, दुखड़ा, मुख।*

३९. *ग्* : ग् का उच्चारण भी जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है। हिंदी की बोलियों में फ़ारसी-अरबी ग़् के स्थान पर ग् हो जाता है किंतु साहित्यिक हिंदी में यह भेद क़ायम रक्खा जाता है।

उदा० *गमला, जगह, आग।*

४० *घ्* : घ् का स्थान पिछले कवर्गीय व्यंजनों के समान ही है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *घर, बघारना, बाघ।*

४१. *ट्* : समस्त टवर्गीय ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर उस के नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर किया जाता है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार ट आदि मूर्द्धन्य व्यंजन कहलाते हैं। ट अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। उच्चारण की कठिनाई के कारण ही बच्चे टवर्गीय व्यंजनों का उच्चारण बहुत देर में कर पाते हैं।

मूर्द्धन्य व्यंजन ध्वनियाँ भारत-यूरोपीय काल की नहीं हैं बल्कि आर्यों के भारत में आने पर अनार्यों के संपर्क से इन का व्यवहार प्रा० भा० आ० में होने लगा था। मूर्द्धन्य ध्वनि वाले शब्दों की संख्या वेदों में अपेक्षित रूप से कम **अवश्य है। हिंदी में ट् का व्यवहार काफ़ी होता है।**

उदा० *टीला, काटना, सरपट।*

अंगरेज़ी की ट्, ड् ध्वनियाँ मूर्द्धन्य नहीं है बल्कि वर्त्स्य हैं अर्थात् ऊपर के मसूड़े पर बिना उलटे हुए जीभ की नोक छुआ कर इन का उच्चारण किया जाता है। हिंदी में वर्त्स्य ट् ड् (ट़् ड़्) न होने के कारण हिंदी बोलने वाले इन ध्वनियों को या तो मूर्द्धन्य (ट् ड्) या दंत्य (त् द्) कर देते हैं।

४२. ठ् : स्थान की दृष्टि से ट् और ठ् में भेद नहीं है किंतु ठ् महाप्राण अघोष, मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *ठठेरा, कठोर, काठ।*

४३. ड् : ड् का उच्चारण भी जीभ की नोक को उलट कर कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआ कर होता है किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *डमरू, गंडेरी, खड।*

४४. ढ् : ढ् महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इस का प्रयोग हिंदी में शब्दों के आरंभ में ही पाया जाता है।

उदा० *ढकना, ढपली, ढंग।*

४५. त् : त् का उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *ताल, पत्तल, बात।*

४६. थ् : त् और थ् के उच्चारण-स्थान में कोई भेद नहीं है किंतु थ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *थोड़ा, सुथरा, साथ* ।

४७. द् : द् का उच्चारण भी जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है किंतु द् अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *दानव, बदन, चाँद* ।

४८. ध् : ध् का उच्चारण भी अन्य तवर्गीय ध्वनियों के समान ही होता है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *धान, बधाई, साध* ।

४९. प् : प् का उच्चारण दोनों होठों को छुआ कर होता है । ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से सहायता बिलकुल नहीं ली जाती । प् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है । अंत्य ओष्ठ्य ध्वनियों में स्फोट नहीं होता ।

उदा० *पान, काँपना, आप* ।

५०. फ् : प् और फ् का उच्चारण-स्थान एक है किंतु यह महाप्राण, अघोष स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *फूल, बफारा* ।

५१. ब् : ब् का उच्चारण भी दोनों होठों को छुआ कर होता है किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *बुनना, साबुन, सब* ।

५२. भ् : भ् महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है ।

उदा० *भलाई, सभा* ।

ङ स्पर्शसंघर्षी[1]

५३. च् : च् का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़े

---

[1] ध्वनि-संबंधी प्रयोग करने के बाद कुछ विद्वान् (दे., चै. बे. फ़ो § १६; क़ादरी, हि. फ़ॉ., पृ० ८२; सक., ए. अ., ३०) इस परिणाम पर पहुँ

के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। अतः यह स्पर्शसंघर्षी ध्वनि मानी जाती है। तालु के स्थान की दृष्टि से चवर्गीय व्यंजनों का स्थान टवर्गीय व्यंजनों की अपेक्षा आगे की ओर होने लगा है। प्राचीन काल में संभवतः पीछे की ओर होता था। तभी तो चवर्ग को टवर्ग के पहले रक्खा जाता था। च् अल्पप्राण, अघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० *चन्दन, कचौड़ी, सच*।

५४. छ् : च् और छ् का स्थान एक ही है किंतु छ् महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

उदा० *छीलना, कछुआ, कच्छ*।

५५. ज् : ज् का उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। किंतु ज् अल्पप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० *जगह, गरजना, साज*।

५६. झ् : झ् का स्थान भी अन्य चवर्गीय ध्वनियों के समान ही है किंतु यह महाप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है।

उदा० *झकोरा, उलझना, बाझ*।

हैं कि भारतीय आधुनिक चवर्गीय ध्वनियाँ शुद्ध स्पर्श न होकर स्पर्शसंघर्षी व्यंजन हैं। मेरी समझ में इस संबंध में एक दो से अधिक हिंदी बोलने वालों पर प्रयोग करके देखने की आवश्यकता है, तभी ठीक निर्णय हो सकेगा। अब तक की खोज के आधार पर यहां चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्शसंघर्षी मान लिया गया है। बेली ने पंजाबी च् ज् को स्पर्शसंघर्षी न मान कर स्पर्श व्यंजन माना है (बेली, पंजाबी फ़ोनेटिक रीडर, पृ० XI)। संभव है कि भारतीय चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्शसंघर्षी समझने में कुछ प्रभाव अंग्रेज़ी च् ज् ध्वनियों का भी हो। अंग्रेज़ी च् ज् अवश्य स्पर्शसंघर्षी हैं।

च. अनुनासिक

५७. ङ् : ङ् का उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से छुआ कर होता है किंतु उस के उच्चारण में कोमल तालु कौवा सहित नीचे को झुक आता है। जिस से कुछ हवा हलक़ के अन्दर नाक के छिद्रों में होकर निकलते हुए नासिका-विवर में गूँज पैदा कर देती है। कोमल तालु के नीचे झुक आने के कारण समस्त अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण में जीभ निरनुनासिक व्यंजनों की अपेक्षा तालु के कुछ अधिक पिछले भाग को छूती है। निरनुनासिक स्पर्श-व्यंजनों के उच्चारण में कौवा सहित कोमलतालु कुछ पीछे को हटा रहता है जिस से हलक़ के अन्दर नासिका के छिद्र बंद रहते हैं। ङ् सघोष अल्पप्राण, कंठ्य, अनुनासिक ध्वनि है।

स्वर सहित ङ् हिंदी में नहीं पाया जाता। शब्दों के आदि या अंत में भी इस का व्यवहार नहीं होता। शब्दों के बीच में कवर्ग के पहले ही ङ् सुनाई पड़ता है। देवनागरी लिपि में ङ् तथा समस्त अन्य पंचम अनुनासिक व्यंजनों के लिए अब प्रायः अनुस्वार लिखा जाता है।

उदा० *अंक, कंघा, बंगू।*

५८. ञ् : ञ् सघोष, अल्पप्राण, तालव्य, अनुनासिक ध्वनि है। ञ् ध्वनि साहित्यिक हिंदी के शब्दों में नहीं पाई जाती। साहित्यिक हिंदी में चवर्गीय ध्वनियों के पहले आने वाले अनुनासिक व्यंजन का उच्चारण न के समान होता है। सं० *चञ्चल, कञ्ज* आदि का उच्चारण हिंदी में चन्चल, कन्ज की तरह होता है। अवधी[1] में यह ध्वनि बतलायी जाती है किंतु जो उदाहरण दिए गए हैं (*तमंचा, पंजा, संझा*) उन में इस ध्वनि का होना संदिग्ध है। ब्रज की बोली में *नाञ्* (हि० नहीं) *साञ् साञ्* (विशेष प्रकार की आवाज़) आदि

---

[1] सक., ए. अ., § ६०

शब्दों में ञ् की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। यह ञ् भी अनुनासिक य् अर्थात् यँ से बहुत मिलता-जुलता है।

५९. ण् : ण् अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, अनुनासिक व्यंजन है। अनुनासिक होने के कारण इस का उच्चारण निरनुनासिक मूर्द्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा कठोर तालु पर कुछ अधिक पीछे की ओर उलटी जीभ की नोक छुआ कर होता है। स्वर सहित यह ध्वनि हिंदी में केवल तत्सम संस्कृत शब्दों में मिलती है और उन में भी शब्दों के आदि में नहीं पाई जाती।

उदा० *गुण, परिणाम, चरण*।

हिंदी में व्यवहृत संस्कृत शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श-व्यंजनों के पूर्व हलंत ण् का उच्चारण न् के समान हो गया है। जैसे सं० *पण्डित, कण्टक* आदि शब्दों का उच्चारण हिंदी में *पन्डित, कन्टक* की तरह होता है। अर्द्धस्वरों के पहले ण् ध्वनि रहती है, जैसे *कण्व, पुण्य* आदि। हिंदी की बोलियों में ण् ध्वनि का व्यवहार बिल्कुल भी नहीं होता है। ण् के स्थान पर बराबर न् हो जाता है जैसे *चरन, गनेस, गुन*। वास्तव में हिंदी ण् का उच्चारण ड़ँ से बहुत मिलता-जुलता होता है।

६०. न् : न् अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक दंत्य स्पर्श व्यंजनों के समान दाँतों की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूड़ों को छूती है। अतः प्राचीन प्रथा के अनुसार न् को दंत्य मानना ठीक नहीं है। यह वास्तव में वर्त्स्य है।

उदा० *निमक, बन्दर, कान*।

६१. न्ह् : न्ह महाप्राण, सघोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन है। हिंदी में इसे मूल ध्वनि नहीं माना जाता रहा है किंतु आधुनिक विद्वान्[1] इसे संयुक्त

---

[1] क़ादरी. हि. फो., पृ० ८८

मक., ए. अ., ६ ४२

व्यंजन न मान कर घ्, ध्, भ् आदि की तरह मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं।

उदा० *उन्हों ने, कन्हैया, जिन्हों ने।*

६२. *म्* : *म्* का उच्चारण भी ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों होठों को छुआ कर होता है किंतु इस के उच्चारण में अन्य अनुनासिक व्यंजनों के समान कुछ हवा हलक़ के नाक के छिद्रों में होकर नासिका-विवर में गूँज उत्पन्न करती है। म् अल्पप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है।

उदा० *माता, कमाना, आम।*

६३. *म्ह्* : *म्ह्* महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। *न्ह्* के समान इसे भी आधुनिक विद्वान्[1] संयुक्त व्यंजन न मान कर मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं।

उदा० *तुम्हारा, कुम्हार,* अव० *बम्हा* (हि० ब्रह्मा)

छ. पार्श्विक

६४. *ल्* : *ल्* के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है किंतु साथ ही जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिस के कारण हवा पार्श्वों से निकलती रहती है। इसलिए *ल्* ध्वनि देर तक कही जा सकती है। *ल्* पार्श्विक, अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है। *ल्* ध्वनि का उच्चारण *र्* के स्थान से ही होता है किंतु इस का उच्चारण *र्* की अपेक्षा सरल है इसलिए आरंभ में बच्चे *र्* की जगह *ल्* बोलते हैं।

उदा० *लाभ, खलना, बाल।*

६५. *ल्ह्* : यह *ल्* का महाप्राण रूप है। बोलियों में इस का प्रयोग

---

[1] क़ादरी, हि. फ़ो., पृ० ८७
सक., ए. अ., § ६१

बराबर मिलता है। न्ह्, म्ह् की तरह इसे भी अन्य महाप्राण व्यंजनों के समान माना गया है।[1]

उदा० ब्र० *सल्हा* (हि० सलाह), अव० *पल्हावब्*, ब्र० *काल्हि* (हि० कल)।

ज. लुंठित

६६. र् : र् के उच्चारण में जीभ की नोक दो-तीन बार वर्त्स या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से छूती है। र् लुंठित, अल्पप्राण, वर्त्स्य, सघोष ध्वनि है। बच्चों को इस तरह जीभ रखने में बहुत कठिनाई पड़ती है इसी लिए बच्चे बहुत दिनों तक र् का उच्चारण नहीं कर पाते।

उदा० *राम*, *चरण*, *पार*।

६७. र्ह् : यह र् का महाप्राण रूप है। बोलियों में इस का प्रयोग बराबर होता है। यह ध्वनि शब्द के मध्य में ही मिलती है। ल्ह् आदि के समान र्ह् भी मूल ध्वनि[2] मानी जाती है।

उदा० ब्र० *कर्हानो* (हि० कराहना), अव० *अर्है* (हि० अरहर)।

झ. उत्क्षिप्त

६८. ड़् : ड़् का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर नीचे के हिस्से से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। ड़् न तो ड् की तरह स्पर्श ध्वनि है और न र् की तरह लुंठित ध्वनि है। ड़् अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। हिंदी में यह नवीन ध्वनियों में

---

[1] क़ादरी, हि. फ़ो., पृ० ६०
सक., ए. अ., § ७५

[2] क़ादरी, हि. फ़ो., पृ० ६२
सक., ए. अ., § ७२

से एक है। ड़् शब्दों के मध्य या अंत में प्रायः दो स्वरों के बीच में ही आता है।

उदा० *पेड़, बड़ा, गड़बड़।*

६९. ढ़् : ड़् और ढ़् का उच्चारण-स्थान एक ही है किंतु ढ़् महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। ढ़् वास्तव में ड़् का रूपांतर है ढ का नहीं। यह ध्वनि भी हिंदी में नवीन है और शब्दों के मध्य या अंत में प्रायः दो स्वरों के बीच में पाई जाती है।

उद० *बढ़िया, बूढ़ा, बढ़।*

ञ. संघर्षी

७०. *ह़्* : विसर्ग या अघोष *ह़्–ह़्–*के उच्चारण में जीभ और तालु अथवा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती। हवा को अंदर से ज़ोर से फेंक कर मुखद्वार के खुले रहते हुए स्वरयंत्र के मुख पर रगड़ उत्पन्न कर के इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। विसर्ग या *ह़्* और *अ* के उच्चारण में मुख के समस्त अवयव समान रहते हैं, भेद केवल इतना होता है कि *अ* के उच्चारण में हवा ज़ोर से नहीं फेंकी जाती और विसर्ग के उच्चारण में हवा ज़ोर से फेंकी जाती है। साथ ही विसर्ग *अ* के समान घोष ध्वनि नहीं है। विसर्ग वास्तव में अघोष *ह़्–ह़्* मात्र है अतः इसे स्वरयंत्रमुखी, अघोष, संघर्षी ध्वनि कह सकते हैं।

हिंदी में विसर्ग का प्रयोग थोड़े से संस्कृत तत्सम शब्दों में होता है। हिंदी के शब्दों में छः शब्द तथा छिः आदि विस्मयादि बोधक शब्दों में भी इस का व्यवहार मिलता है। दुःख शब्द में विसर्ग (प्रा० भा० आ० का जिह्वामूलीय) लिखा तो जाता है, लेकिन इस का उच्चारण क् के समान होता है। *ख् (क्+ह़्) ठ् (ट्+ह़्)*, आदि अघोष महाप्राण व्यंजनों में भी विसर्ग या *ह़्* ही पाया जाता है।

उदा० *पुनः, प्रायः, छः।*

७१. *ह् : ह्* और विसर्ग या *ह्* का उच्चारण-स्थान एक ही है, भेद केवल इतना है कि विसर्ग अघोष ध्वनि है और *ह्* सघोष ध्वनि है। शब्द के अंत में आने वाला *ह्*[1] घोष रहता है, जैसे *यह, वह, आह*। शब्द के आदि में आने वाले *ह्* के घोष होने में मतभेद है।[2] *घ् (ग्+ह्) ढ् (ड्+ह्)* आदि घोष महाप्राण व्यंजनों में घोष *ह्* पाया जाता है। *ह्* स्वरयंत्रमुखी, सघोष, संघर्षी ध्वनि है।

उदा० *हाथी, कहता, साहूकार*।

७२. *ख़् : ख़्* का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु से लगा कर किया जाता है किंतु इस के उच्चारण में हलक़ का दरवाज़ा बिल्कुल बंद नहीं किया जाता अतः हवा रगड़ खा कर निकलती रहती है। *क़्* के समान स्पर्श ध्वनि न हो कर *ख़्* जिह्वामूलीय, अघोष, संघर्षी ध्वनि है, अतः *ख्* आदि स्पर्श व्यंजनों के साथ इसे रखना ठीक नहीं है। *ख़्* ध्वनि हिंदी में फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है। यह भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि नहीं है। कौवे के निकट से बोली जाने वाली प्राचीन ध्वनियां हिंदी में नहीं थीं अतः हिंदी बोलियों में *ख़्* के स्थान पर प्रायः *ख्* का उच्चारण किया जाता है।

उदा० *ख़राब, बुख़ार, बलख़*।

७३. *ग़् : ख़्* और *ग़्* के उच्चारण-स्थान एक ही हैं। *ग़्* भी जिह्वा-मूलीय, संघर्षी ध्वनि है किंतु यह अघोष न हो कर सघोष है। *ग़्* भी भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि नहीं है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही पाई जाती है। उच्चारण की दृष्टि से *ग़्* को *ग्* का रूपांतर समझना भूल है

---

[1] सक. ए. अ., § ८६

[2] सक. ए. अ., § ८५; क़ादरी, हि. फ़ो., पृ० ६६

यद्यपि हिंदी बोलियों में ग़् के स्थान पर प्रायः ग् का ही प्रयोग किया जाता है ।

उदा० *ग़रीब, चोग़ा, दाग़* ।

७४. श् : श् का उच्चारण जीभ की नोक को कठोर तालु को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है । श् अघोष, संघर्षी, तालव्य ध्वनि है । यह ध्वनि प्राचीन है और फ़ारसी-अरबी तथा अंग्रेज़ी आदि से आए हुए विदेशी शब्दों में भी मिलती है । हिंदी बोलियों में श् के स्थान पर प्रायः स् का उच्चारण होता है ।

उदा० *शब्द, पशु, वश, शायद, पश्मीना; शेयर* (Share) ।

७५. स् : स् का उच्चारण जीभ की नोक से वर्त्स स्थान को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है । स् वर्त्स्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है ।

उदा० *सेना, कसना, पास* ।

७६. ज़् : ज़् और स् का उच्चारण-स्थान एक ही है अर्थात् ज़् भी वर्त्स्य, संघर्षी ध्वनि है किंतु यह स् की तरह अघोष न हो कर सघोष है । अतः वास्तव में ज़् स्पर्श ज् का रूपांतर न होकर स् का रूपांतर है । ज़् भी विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है । हिंदी बोलियों में ज़् के स्थान पर ज् हो जाता है ।

उदा० *ज़ालिम, गुज़र, बाज़* ।

७७. फ़् : फ़् का उच्चारण नीचे के होठ को ऊपर की दाँतों की पंक्ति से लगा कर किया जाता है, साथ ही होठों और दाँतों के बीच से रगड़ के साथ हवा निकलती रहती है । फ़् दंत्योष्ठ्य, संघर्षी, अघोष ध्वनि है । ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से फ़् को स्पर्श फ् का रूपांतर मानना उचित नहीं है । फ़् भी हिंदी में विदेशी ध्वनि है और फ़ारसी-अरबी के तत्सम शब्दों में ही व्यवहृत होती है । हिंदी बोलियों में इस का स्थान फ् ले लेता है क्योंकि यह हिंदी की प्राचीन ध्वनियों में फ़् के निकटतम है ।

उदा० *फ़ारसी, साफ़, बर्फ़।*

७८. व् : व् का उच्चारण भी नीचे के होठ को ऊपर के दाँतों से लगा कर किया जाता है, साथ ही होठ और दाँतों के बीच से रगड़ खाकर कुछ हवा निकलती रहती है। व् दंत्योष्ठ्य, संघर्षी, सघोष ध्वनि है[१]। व् की अपेक्षा ब् ध्वनि सरल है। हिंदी की बोलियों में व् के स्थान पर प्रायः ब् का ही उच्चारण होता है। व् प्राचीन ध्वनि है। हिंदी में व्यवहृत विदेशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उदा० *वन, चावल, यादव, वलवला।*

८. अर्द्धस्वर

७९. य् : य् का उच्चारण जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जा कर किया जाता है किंतु जीभ न चवर्गीय ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह छूती ही है और न इ आदि तालव्य स्वरों के समान दूर ही रहती है। अतः य् को अंतस्थ या अर्द्धस्वर अर्थात् व्यंजन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है। जीभ को इस तरह तालु के निकट रखना कठिन है, इसी लिए हिंदी बोलियों में प्रायः य् के स्थान पर शब्द के आरंभ में प्रायः ज् हो जाता है। य् तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। य् का उच्चारण एअ से मिलता-जुलता होता है।

उदा० *यम, नियम, आय।*

८०. व् : व् जब शब्द के मध्य में स्वरहीन व्यंजन के बाद आता है तो इस का उच्चारण दंत्योष्ठ्य न होकर द्वयोष्ठ्य हो जाता है। किंतु

---

[१] क़ादरी ने (हि. फ़ो, पृ० ६४) महाप्राण व् अर्थात् व्ह् का उल्लेख भी किया है। व् के बाद यदि स्वर+ह् हो तो तेज़ बोलने में स्वर के लुप्त हो जाने से व् का उच्चारण व्ह् के समान हो जाता है, जैसे वहां>व्हां, वही>व्ही। हिंदी में अभी महाप्राण व् का उच्चारण स्थायी रूप से नहीं होता है।

३. दो स्थान से उच्चरित ध्वनियाँ दूसरे स्थान के खाने में गोल कोष्ठक में दी गई हैं।

साधारण नाम	मुखद्वार को अपेक्षाकृत खुला या बंद रखने की दृष्टि से वर्णन	आभ्यंतर प्रयत्न अथवा उच्चारण की प्रकृति की दृष्टि से भेद / उच्चारण स्थान की दृष्टि से भेद	होठ: दोनों होठ (द्व्योष्ठ्य)	होठ: ऊपर के दाँत और नीचे का होठ (दंत्योष्ठ्य)	जीभ का अगला हिस्सा और ऊपर के दाँतों की पंक्ति अंदर की ओर (दंत्य)	जीभ का अगला हिस्सा और ऊपर के दाँतों के अंदर के मसूड़े (वर्त्स्य)	जीभ का अगला हिस्सा और कठोर तालु (तालव्य)	जीभ की नोक उलटी हुई और कठोर तालु (मूर्द्धन्य)	जीभ का अगला ऊपरी हिस्सा और कठोर तालु (तालव्य)	जीभ का पिछला हिस्सा और कोमल तालु (कंठ्य)	जीभ की जड़ या जिह्वामूल और कोमल तालु का पिछला भाग (जिह्वामूलीय)	स्वरयंत्रमुख सकरा जिससे हवा रगड़ खाकर मुखद्वार से निकले (स्वरयंत्रमुखी)
व्यंजन	मुखद्वार को बिल्कुल बंद करके खोलना	स्पर्श : अल्पप्राण ,, : महाप्राण	प् ब् फ् भ्		त् द् थ् ध्			ट् ड् ठ् ढ्		क् ग् ख् घ्	क़्	
	मुखद्वार को बंद करके रगड़ के साथ खोलना	स्पर्शसंघर्षी : अल्पप्राण ,, : महाप्राण							च् ज् छ् झ्			
	मुखद्वार को बिल्कुल बंद करके खोलना किंतु साथ ही नाक के रास्ते को खुला रखना	अनुनासिक : अल्पप्राण ,, : महाप्राण	म् म्ह्			न् न्ह्		ण्	[ञ्]	ङ्		
	मुखद्वार को बीच में बंद कर देना किंतु दोनों तरफ़ रास्ता खुला रहना	पार्श्विक : अल्पप्राण ,, : महाप्राण				ल् [ल्ह्]						
	मुखद्वार को जीभ की नोक से बहुत जल्द-जल्द बंद करके दो-तीन बार खोलना	लुंठित : अल्पप्राण ,, : महाप्राण				र् [र्ह्]						
	जीभ की नोक उलट कर तालु को कुछ दूर तक छूकर मुखद्वार को झटके के साथ खोलना	उत्क्षिप्त : अल्पप्राण ,, : महाप्राण						ड़् ढ़्				
	मुखद्वार को इतना सकरा कर देना कि हवा रगड़ खाकर निकले	संघर्षी		फ़् व़्		स् ज़्	श्				ख़् ग़्	ह् (ः) ह्
	मुखद्वार बहुत सकरा किंतु इतना अधिक नहीं कि हवा रगड़ खाकर निकले	अर्द्धस्वर	(व़्)						य्	व़्		
स्वर	मुखद्वार बहुत सकरा किंतु इतना अधिक नहीं कि किसी प्रकार भी स्पर्श अथवा हवा की रगड़ हो	संवृत							ई इ [इ̥]	ऊ [उ̥] उ		
	मुखद्वार अधसकरा	अर्द्धसंवृत							ए [ए̥] [ए] [अ]	ओ [ओ]		
	मुखद्वार अधखुला	अर्द्धविवृत							[ऍ] [ऍ] अ	[ऑ] [ऑ]		
	मुखद्वार खुला	विवृत								ऑ आ		

सूचना १—इ̥, ए̥, उ̥, अ को छोड़ कर शेष समस्त स्वरों का उच्चारण नासिका-विवर में हवा की गूँज के साथ भी होता है। इन्हें अनुनासिक स्वर कहते हैं, जैसे अं, इं, उं इत्यादि।

सूचना २—जब स्वरों का उच्चारण मुखद्वार की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित होते समय किया जाता है तो वे संयुक्त स्वर कहलाते हैं, जैसे ऐ, औ, अइ, अउ इत्यादि।

(१२१ पृष्ठ के सामने)

ब् के उच्चारण की तरह दोनों होठ बिल्कुल बंद नहीं किए जाते और न संघर्ष ही होता है। .व् के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग भी कोमल तालु की तरफ़ उठता है किंतु कोमल तालु को स्पर्श नहीं करता। .व् कंठ्योष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। हिंदी बोलियों[1] में भी यह ध्वनि विशेष रूप से पाई जाती है। .व् का उच्चारण ओ़ से मिलता-जुलता होता है।

उदा० *क्वारा, स्वाद, स्वर।*

८१. ऊपर वर्णित समस्त ध्वनियों का वर्गीकरण कोष्ठक में विस्तार से किया गया है। आशा है प्रत्येक हिंदी ध्वनि के ठीक रूप को तथा ध्वनियों के आपस के भेद को समझने में यह वर्गीकरण विशेष रूप से सहायक होगा।

अध्याय २

हिंदी ध्वनियों का इतिहास

८२. पिछले अध्याय में साहित्यिक हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में पाई जाने वाली समस्त ध्वनियों का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। इस अध्याय में आधुनिक साहित्यिक हिंदी में प्रयुक्त ध्वनियों का इतिहास देने का यत्न किया जायगा। बोलियों में प्रयुक्त विशेष ध्वनियों के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री की कमी के कारण बोली वाली ध्वनियों का इतिहास नहीं दिया जा सका है। फ़ारसी-अरबी तथा अंग्रेज़ी से आई हुई विशेष ध्वनियों का उल्लेख भी नहीं किया गया है, क्योंकि इन का इतिहास स्पष्ट ही है। हिंदी में आने पर विदेशी शब्दों तथा उन में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों की विस्तृत समीक्षा अगले अध्याय में की गई है। इस अध्याय में प्राचीन भारतीय आर्य-ध्वनियों के उद्‌गम से आई हुई ध्वनियों पर ही विचार किया गया है।

ध्वनि-संबंधी परिवर्तनों को दिखलाने के लिए तत्सम शब्दों से बिल्कुल भी सहायता नहीं मिलती है। आधुनिक साहित्यिक हिंदी में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। क्योंकि ध्वनियों के इतिहास का अध्ययन केवल तद्भव शब्दों में ही हो सकता है, अतः इस अध्याय के उदाहरण के अंशों में प्रायः ऐसे शब्द दिखलाई पड़ेंगे जिन का प्रयोग साहित्यिक हिंदी की अपेक्षा हिंदी की बोलियों में विशेष रूप से होता है। केवल बोलियों

में प्रयुक्त शब्दों का निर्देश कर दिया है। इस अध्याय का समस्त विवेचन हिंदी ध्वनिसमूह के दृष्टिकोण से है अतः उदाहरणों[1] में आधुनिक काल से पीछे की ओर जाने का यत्न किया गया है—पहले हिंदी का रूप दिया गया है और उसके सामने संस्कृत का तत्सम रूप दिया गया है। बहुत कम शब्दों के निश्चित प्राकृत रूप मिलने के कारण प्राकृत उदाहरण बिल्कुल ही छोड़ दिए गए हैं। इस कारण ध्वनि-परिवर्तन की मध्य अवस्था सामने नहीं आ पाती, किंतु इस कठिनाई को दूर करने का अभी कोई उपाय नहीं था। स्थानाभाव के कारण ध्वनि-परिवर्तनों पर विस्तार से विचार नहीं किया जा सका है। तुलनात्मक ढंग से केवल संस्कृत और हिंदी रूप देकर ही संतोष करना पड़ा है। हिंदी ध्वनियों के इतिहास में संस्कृत से नियमित अथवा अपवाद-स्वरूप से आने वाली ध्वनियों का भेद नहीं दिखलाया जा सका है। इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी विषय का विवेचन मौलिक ढंग से किया गया है, और कदाचित् हिंदी में अपने ढंग का पहला है।

अ. स्वर-परिवर्तन संबंधी कुछ साधारण नियम

८३. संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपों में ध्वनि-संबंधी परिवर्तन बहुत हुए हैं, किंतु हिंदी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं में आने पर इस तरह के परिवर्तन अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में आने पर प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं, यद्यपि बहुत से उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिन में स्वर-परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में हिंदी में आने पर संस्कृत के स्वरों में अनेक प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं। स्वरों का एक-दूसरे में परिवर्तित हो जाना साधारण बात है। ये परिवर्तन एक ही स्वर के ह्रस्व

---

[1] उदाहरण इकट्ठे करने में बी., क. ग्रै., तथा चै., बे. लै. से विशेष सहायता ली गई है।

और दीर्घ रूपों में भी पाए जाते हैं तथा भिन्न स्थान वाले स्वरों में भी आपस में पाए जाते हैं। हिंदी के दृष्टि-कोण से इन परिवर्तनों के पर्याप्त उदाहरण आगे दिए गए हैं।

८४. बीम्स[1] आदि विद्वानों ने भारतीय आर्यभाषाओं के स्वर-परिवर्तनों के संबंध में कुछ साधारण नियम दिए हैं किंतु ये व्यापक सिद्ध नियम नहीं समझे जा सकते। इन में से उदाहरण-स्वरूप कुछ मुख्य नियम नीचे दिए जाते हैं :—

(१) संस्कृत शब्दों का अंतिम स्वर म० भा० आ० काल के अंत तक चला था, बल्कि कुछ कुछ तो आधुनिक काल के आरंभ में भी पाया जाता था। म० भा० आ० काल के अंत में दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, धीरे धीरे -अ, -इ, -उ, में परिवर्तित हो गए थे और -ए, -ओ का परिवर्तन -इ -उ में हो गया था। इन दीर्घ तथा संयुक्त से ह्रस्व हुए स्वरों और मूल ह्रस्व स्वरों में कोई भेद नहीं रह सका। आ० भा० आ० में शब्दों के अंत में ये ह्रस्व स्वर कुछ दिनों रहे किंतु धीरे-धीरे इन का भी लोप हो गया। अब हिंदी के तद्भव शब्द उच्चारण की दृष्टि से बहुत संख्या में व्यंजनांत हो गए हैं। लिखने में यह परिवर्तन अभी साधारणतया नहीं किया जाता है। हिंदी की कुछ बोलियों में अंत्य -अ, -इ, आदि का उच्चारण कुछ कुछ प्रचलित है।[2]

(२) गुणवृद्धि परिवर्तन संस्कृत में पाए जाते हैं। प्राकृत में इन परिवर्तनों का अभाव है अतः आ० भा० आ० में भी ये प्रायः नहीं पाए जाते। किंतु हिंदी में संधि के पूर्व के इ उ ह्रस्व स्वर कभी-कभी दीर्घ

---

[1] बी., क. ग्रै., भा० १, अ० २

चै., बे. लै., § १४८

[2] ध्वनि-संबंधी प्रयोगों के बाद सकसेना (ए. अ. § ११४) इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि अवधी में कुछ अंत्य स्वर केवल फुसफुसाहट वाले हैं।

में न बदल कर कदाचित् ए ओ होकर अंत में गुण (ए ओ) में बदल जाते हैं :—

कोढ़ < कुष्ठ
कोख < कुक्षि
बेल < बिल्व
सेम < शिम्बा

तत्सम शब्दों को छोड़ कर हिंदी में तद्भव शब्दों में वृद्धि-स्वरों (ऐ, औ) का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ऐ औ प्रायः ए, ओ में परिवर्तित हो जाते हैं :—

केवट < कैवर्त्त
गेरू < गैरिक
गोरा < गौर

(३) ऋ का उच्चारण कदाचित् संस्कृत में ही शुद्ध मूल स्वर के समान नहीं रह गया था। प्राकृत में तो ऋ मिलती ही नहीं, इस के स्थान में अ इ उ आदि कोई अन्य स्वर हो जाता है। कुछ प्राकृत शब्दों में *रि* या *रु* रूप भी मिलते हैं। हिंदी तत्सम शब्दों में ऋ का उच्चारण *रि* होता है। तद्भव शब्दों में ऋ किसी अन्य स्वर में परिवर्तित हो जाती है। इन परिवर्तनों के उदाहरण आगे दिए गए हैं। नीचे दिए हुए समस्त ध्वनि-परिवर्तन एक तरह से अपवाद-स्वरूप हैं। साधारण नियम यही है कि संस्कृत शब्दों के स्वर हिंदी में प्रायः ज्यों के त्यों रहते हैं।

आ. हिंदी स्वरों का इतिहास

८५. हिंदी के एक-एक स्वर को लेकर नीचे यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि यह किन किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है। उदाहरणों में पहिले हिंदी का शब्द दिया गया है तथा उस के आगे उस शब्द

का संस्कृत पूर्व-रूप दिया गया है। बहुत से हिंदी शब्द प्राकृत काल के बाद संस्कृत से सीधे लिए गए थे अतः उनके वर्तमान रूप प्राकृत रूपों से विकसित नहीं हुए हैं। ऐसे शब्दों की ध्वनियों के अध्ययन में प्राकृत रूपों से विशेष सहायता नहीं मिल सकती। तो भी ध्वनियों के इतिहास के अध्ययन में प्राकृत रूप कुछ न कुछ साधारण सहायता अवश्य देते हैं। कुछ नहीं तो इतनी बात तो निश्चित हो ही जाती है कि अमुक हिंदी शब्द प्राचीन तद्भव है अर्थात् प्राकृत भाषाओं से हो कर आया हुआ है, अथवा आधुनिक तद्भव है अर्थात् प्राकृत काल के बाद का आया हुआ है। क्योंकि प्राकृत साहित्य परिमित है अतः प्रत्येक हिंदी शब्द का प्राकृत रूप मिल सके यह आवश्यक नहीं है। अनुमान के आधार पर प्राकृत रूप गढ़े जा सकते हैं, किंतु ऐसे रूपों से ठीक निर्णय पर पहुँचना संभव नहीं है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण, जैसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है, इस अध्याय में प्राकृत शब्दों के देने का प्रयास ही नहीं किया गया है। प्रायः एक ही शब्द में अनेक ध्वनि-परिवर्तन हुए हैं अतः एक ही शब्द कभी-कभी कई स्थलों पर उदाहरण-स्वरूप मिलेगा। प्रत्येक स्थल पर उस शब्द में पाये जाने वाले निर्दिष्ट ध्वनि-परिवर्तन पर ही ध्यान देना उचित होगा।

क. मूलस्वर

८६. *हि० अ*[1] *:*

सं० अ	*: पहर*	*प्रहर*
	थन	*स्तन*
	थल	*स्थल*

[1] अंत्य अ का उच्चारण साहित्यिक हिंदी में प्रायः नहीं होता किंतु बोलियों में यह कुछ-कुछ अब भी चला जाता है। इन उदाहरणों में अंत्य अ का होना मान लिया गया है।

सं० आ :	अचरज	आश्चर्य
	महंगा	महार्घ
	मंजन	मार्जन
सं० इ :	बादल	वारिद
	भबूत	विभूति
सं० ई :		
	गाभिन	गर्भिणी
	गहरा	गंभीर
	पाकड़	पर्कटी
सं० उ :		
	कबरा	कर्बुर
	चोंच	चंचु
	बूंद	विंदु
सं० ऋ :		
	मरा	मृत
	घर[1]	गृह

८७. हि० आ :

सं० आ :		
	आम	आम्र
	आस	आशा
	थान	स्थान

---

[1] टर्नर (दे., नेपाली डिक्शनरी पृ० १५४) हि० घर की व्युत्पत्ति सं० गृह से न मान कर भा० यू० घ्वोरो (अर्थ-अग्नि, गरमी, घर में अग्नि का स्थान) से मानते हैं यह स्मरण रखना चाहिए कि यह संभावित रूप मात्र है।

सं० अ :

काम	कर्म
बकरा	बर्कर
मंहगा	महार्घ

सं० ऋ :

साकर	शृंखला
कान्ह	कृष्ण
नाच	नृत्य

८८. हि० ओ :

सं० ओ :

घोड़ा	घोटक
कोइल	कोकिल
होठ	ओष्ठ

सं० अ :

चोंच	चंचु
नोन (बो०)	लवण
पोहे (बो०)	पशु

सं० उ :

पोखर	पुष्कर
कोख	कुक्षि
कोढ	कुष्ठ

सं० औ :

गोरा	गौर
मोती	मौक्तिक
झोली	झौलिक

८९. हि० उ :

सं० उ :

कुंजी	कुंचिका
उजला	उज्ज्वल

सं० अ :

उंगली	अंगुली
पुआल	पलाल
खुजली	खर्जू-

सं० ऊ :

महुआ	मधूक
सुई	सूचिका

सं० ऋ :

मुआ (ब्र०)	मृत
सुरत (ब्र०)	स्मृति

सं० व :

सुर	स्वर
तुरत	त्वरित

९०. हिं० ऊ :

सं० ऊ :

ऊन	ऊर्णा
रूखा	रूक्षक

सं० श्र :

मूछ	श्मश्रु

सं० इ :

बूंद	विंदु
ऊख	इक्षु
बिच्छू	वृश्चिक

सं० उ :

मूसल	मुषल
बालू	वालुका

सं० ऋ :

बूढ़ा	वृद्ध
रूख (ब्र०)	वृक्ष
पूछे	पृच्छति

९१. हिं० ई :

सं० ई :

पानी	पानीय
सीस	शीर्ष
कीड़ा	कीट

सं० अ :

बहुंगी	वाहांग
करसी	करीषिका
तीसी	अतसीका

सं० इ :

चीता	चित्रक
जीभ	जिह्वा
हाथी	हस्तिन्

सं० उ :

बाई	वायु
बिंदी	विंदुका

सं० ऋ :

सींग	शृंग
भतीजा	भ्रातृज–
जमाई	जामातृ–

हि० इ :

सं० इ :

किरन	किरण
बहिरा	वधिर
गाभिन	गर्भिणी

सं० अ :

पिंजड़ा	पंजर

गिनना	गणन
इमली	अम्लिका

सं० ई :

दिया	दीपक
दिवाली	दीपावली

सं० ऋ :

बिच्छू	वृश्चिक
मिट्टी	मृत्तिका
गिद्ध	गृद्ध्

९३. हि० ए :

सं० ए :

एक	एक
जेठ	ज्येष्ठ
सेठ	श्रेष्ठिन्

सं० अ :

सेंध	संधि
केकड़ा	कर्कट
छेरी	छगलिका

सं० इ :

बेल	बिल्व
बेंदी	विंदु
सेम	शिंबा

सं० उ :

फेफड़ा	फुप्फुस

सं० ऊ :

नेउर	नूपुर

सं० ऋ :

देखना	√दृश्

सं० ऐ :

गेरू	गैरिक
केवट	कैवर्त
तेल	तैल

सं० ओ :

गेहूं	गोधूम

ख. अनुनासिक स्वर

६४. हिंदी में प्रायः प्रत्येक स्वर अननुनासिक और अनुनासिक दोनों रूपों में व्यवहृत होता है। अनुनासिक स्वर प्रायः उन शब्दों में पाए जाते हैं जिन के तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक व्यंजन रहा हो और उस का लोप हो गया हो, जैसे :—

कांटा	कंटक
कांपना	कंपन
क्वांरा	कुमार
पैंतीस	पञ्चत्रिंशत्
चांद	चंद्र

भौंरा	भ्रमर
साँई	स्वामी
भुइं (बो०)	भूमि

९५. उच्चारण की दृष्टि से अनुनासिक व्यंजनों के निकटवर्ती स्वर अनुनासिक हो जाते हैं यद्यपि साधारणतया लिखने में यह परिवर्तन नहीं दिखलाया जाता,[1] जैसे :—

लिखित	उच्चरित रूप
आम	आंम
राम	रांम
हनूमान	हंनूंमांन
कान	कांन
तुम	तुंम
महाराज	मंहाराज़

९६. हिंदी में अनुनासिक स्वरों के कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जो अकारण ही अनुनासिक हो गए हैं, और जिन के तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक ध्वनि नहीं पाई जाती। सुविधा के लिए इसे अकारण अनुनासिकता[2] कह सकते हैं, जैसे :—

---

[1] अवधी, ब्रजभाषा आदि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में बहुत से स्थलों पर उच्चारण के अनुसार कभी-कभी लिखने में भी इस तरह के परिवर्तन दिखलाए गए हैं। तुलसीकृत 'मानस' की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इस तरह के रूप पाए जाते हैं, जैसे, रांम, कांन, जांमवन्त, अतिबलवांना आदि।

[2] सिद्धेश्वर वर्मा, नैज़ेलाइज़ेशन इन हिंदी लिटरेरी वर्क्स, (जर्नल आव दि डिपार्टमेंट आव लेटर्स, कलकत्ता, भाग १८); चै., बे. लै., § १७८.

आंसू	अश्रु
सांच (बो०)	सत्य
सांस	श्वास
भौं	भ्रू
जूं	यूक

ग. संयुक्त स्वर

६७. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में केवल ए, ओ, ऐ, औ यह चार संयुक्त स्वर माने जाते थे, और इन के संबंध में धारणा यह है कि इन के मूल रूप निम्न-लिखित स्वरों के संयोग से बने थे :—

ए	:	अ + इ
ओ	:	अ + उ
ऐ	:	आ + इ
औ	:	आ + उ

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है (दे० § २.) संस्कृत काल में ही ए, ओ का उच्चारण मूल दीर्घस्वरों के समान हो गया था, जो आज भी आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रचलित है। अतः हिंदी ए, ओ का विवेचन मूल स्वरों के साथ किया गया है। प्राकृतों में ह्रस्व ए, ओ का व्यवहार भी मिलता है। आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ये ध्वनियां अधिक शब्दों में नहीं पाई जातीं, यद्यपि हिंदी की कुछ बोलियों में इन का व्यवहार बराबर मिलता है। इन का इतिहास प्राकृत काल के पूर्व नहीं जा सकता।

वैदिक काल में ऐ औ का पूर्व स्वर दीर्घ था *(आ + इ; आ + उ)* किंतु भा० आ० भा० के मध्यकाल के पूर्व ही इस दीर्घ *आ* का उच्चारण ह्रस्व *अ* के समान होने लगा था। आजकल संस्कृत में ऐ, औ का उच्चारण अइ, अउ

के समान ही होता है । हिंदी की कुछ बोलियों में ऐ, औ का यह उच्चारण अब भी प्रचलित है । आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ऐ, औ का उच्चारण अए अओ हो गया है । प्राचीन *अइ*, *अउ* उच्चारण बहुत कम शब्दों में पाया जाता है । पाली प्राकृत में ऐ, औ संयुक्त स्वरों का बिल्कुल भी व्यवहार नहीं होता था ।

यद्यपि पाली प्राकृत वर्णमालाओं में संयुक्त स्वर एक भी नहीं रह गया था, तो भी व्यंजनों के लोप के कारण उच्चारण की दृष्टि से प्राकृत शब्दों में निकट आने वाले स्वरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी । उदाहरण के लिए जब सं० *जानाति*, *एति*, *हितं*, *प्राकृतं*, *लता* तथा *शतं* का उच्चारण महाराष्ट्री प्राकृत में क्रम से *जाणइ*, *एइ*, *हिअं*, *पाउअं*, *लआ* तथा *सअं* हो गया था, तो अनेक स्वर-समूहों का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । इस दृष्टि से प्राकृत भाषाओं में स्वर-समूहों का व्यवहार वैदिक तथा संस्कृत भाषाओं की अपेक्षा कहीं अधिक था ।

प्राकृत तथा अपभ्रंशों से विकसित होने के कारण हिंदी आदि आधुनिक आर्य-भाषाओं में भी संयुक्त स्वरों का व्यवहार संस्कृत की अपेक्षा अधिक पाया जाता है । साहित्यिक हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में व्यवहृत संयुक्त स्वरों की सूची उदाहरण सहित पिछले अध्याय में दी जा चुकी है । हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास प्रायः अपभ्रंश तथा प्राकृत भाषाओं तक ही जाता है । मूलस्वरों के समान इन का इतिहास साधारणतया प्रा० भा० आ० तक नहीं पहुँचता अपभ्रंश तथा प्राकृत के संयुक्त स्वरों का पूर्ण विवेचन सुलभ न होने के कारण हिंदी संयुक्त स्वरों का इतिहास[1] भी अभी ठीक-ठीक नहीं दिया जा सकता । ऐसी स्थिति में पिछले अध्याय में समस्त संयुक्त स्वरों तथा स्वर-समूहों की सूची देकर ही संतोष करना पड़ा है ।

---

[1] हा., हि. ग्रै., § ६८–६८
बंगाली संयक्त स्वरों के लिए दे०, चै. बे. लै., § २०४–२३१

यदि दो ह्रस्व स्वरों के समूह को सच्चा संयुक्त स्वर माना जाय तो साहित्यिक हिंदी में ऐ (अए) औ (अओ) ही संयुक्त स्वर रह जाते हैं। इन का इतिहास नीचे दिया जाता है।

९८. हि० ऐ (अए):

सं० ऐ (अइ):

बैर	वैर
वैराग	वैराग्य
चैत	चैत्र

सं० अ :

पैंसठ	पंचषष्ठि
रैन	रजनी

सं० अय :

नैन (बो०)	नयन
समै (बो०)	समय
निहिचै (बो०)	निश्चय

नोट[1]—ऐसा, कैसा आदि शब्दों में प्रा० एरिसो (सं० ईदृश), प्रा० केरिसो (सं० कीदृश) आदि के र् के लोप होने से इ के संयोग से ए का ऐ हो गया है।

९९. हि० औ (अओ)

---

[1] बी., क. ग्रै., § ३५, ४२

सं० अव :

लौंग	*लवंग*
ब्यौसाय	*व्यवसाय*

नोट[1]—(१) शब्द के मध्य में आने वाले *प* या *म* के *व* में परिवर्तित हो जाने से भी कभी-कभी *औ* की उत्पत्ति हो जाती है, जैसे :—

सौत	*सपत्नी*
कौड़ी	*कपर्द*
बौना	*वामन*
चौंरी	*चामर*

(२) प्राकृत में मध्य *त्* के लोप हो जाने से *अ* और *उ* के संयोग से भी कुछ शब्दों में *औ* आया है, जैसे—

चौथा	*चतुर्थ*
चौदह	*चतुर्दश*

इ. स्वर-संबंधी विशेष परिवर्तन

१००. ऊपर दिए हुए स्वरों के इतिहास के अतिरिक्त स्वरों के संबंध में कुछ अन्य विशेष परिवर्तन भी ध्यान देने योग्य हैं। इन में स्वरों का लोप, आगम तथा विपर्यय मुख्य हैं।

क. स्वर-लोप

बहुत से ऐसे हिंदी शब्दों के उदाहरण मिलते हैं, जिन के संस्कृत रूपों में आदि, मध्य या अंत्य स्वर वर्तमान था, किंतु बाद को उस का लोप

---

[1] बी., क. ग्रै., § ४२, ३६

हो गया। इस संबंध में बीम्स[1] ने कुछ रोचक उदाहरण संगृहीत किए हैं जिन में से थोड़े नीचे दिए जाते हैं।

आदिस्वर-लोप

अ :	*भीतर*	*अभ्यंतरे*
	भीजना	*अभि-√अञ्*
	भी	*अपि*
	रहटा	*अरघट्ट*
	तीसी	*अतिसी*
उ :	*बैठना*	*उपविष्ट्*

मध्यस्वर-लोप

मध्यस्वर का पूर्ण लोप बहुत कम पाया जाया जाता है। स्वर-परिबर्तन साधारण बात है, और इस के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। शब्दांश के अंत में आने वाले ह्रस्व अ का हिंदी में प्रायः लोप हो जाता है। लिखने में यह परिवर्तन अभी नहीं दिखाया जाता है। जैसे—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
इमली	*इम्ली*
बोलना	*बोल्ना*
चलना	*चल्ना*
गरदन	*गर्दन*
कमरा	*कम्रा*
तरबूज़	*तर्बूज़*

---

[1] बी., क. ग्रै., § ४६

दिखलाया	*दिख्‌लाया*
समझना	*समझ्‌ना*
बलहीन	*बल्‌हीन*

अंत्यस्वर-लोप

अ : ऊपर बतलाया जा चुका है कि आधुनिक साहित्यिक हिंदी में अंत्य *अ* का लोप अत्यंत साधारण परिवर्तन है। इस कारण अधिकांश अकारांत शब्द व्यंजनांत हो गए हैं। लिखने में यह परिवर्तन अभी नहीं दिखाया जाता है, जैसे—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
चल	*चल्*
घर	*घर्*
सब	*सब्*
परिवर्तन	*परिवर्तन्*
साधारण	*साधारण्*
केवल	*केवल्*
तत्सम	*तत्सम्*

इस नियम के कई अपवाद[1] भी हैं। अंत्य *अ* के पहले यदि संयुक्त व्यंजन हो तो *अ* का उच्चारण होता है, जैसे *कर्तव्य, प्रारंभ, दीर्घ, आर्य, संबंध* आदि। यदि अंत्य *अ* के पहले *इ, ई,* वा *ऊ* के आगे आने वाला *य* हो तो भी अंत्य *अ* का उच्चारण होता है जैसे *प्रिय, सीय, राजसूय* इत्यादि।

शब्दांश अथवा शब्द के अंत में आने वाले *अ* का लोप आधुनिक है।

---

[1] गु., हि. व्या., § ३८

हिंदी की बोलियों में अभी यह ढंग प्रचलित नहीं हुआ है। पुराने हिंदी काव्य-ग्रंथों में भी अंत्य अ का उच्चारण किया जाता है।

अन्य अंत्य स्वरों के लोप के उदाहरण भी बराबर पाए जाते हैं, जैसे—

आ :

नींद्	निद्रा
दूब्	दूर्वा
बात्	वार्ता
दाख्	द्राक्षा
परख्	परीक्षा
जीभ्	जिह्वा

इ :

पाकड़्	पर्कटि
बिपत् (बो०)	विपत्ति
आग्	अग्नि

ई :

गाभिन्	गर्भिणी
बहिन्	भगिनी

उ :

बाह	बाहु

ए : संस्कृत सप्तमी के रूपों से विकसित हिंदी शब्दों में ए के लोप के दाहरण मिलते हैं, जैसे—

पास	पार्श्वे
निकट	निकटे
संग	संगे

ख. स्वरागम

१०१. हिंदी के कुछ शब्दों में नए स्वरों का आगम हो जाता है चाहे तत्सम रूप में उस जगह पर कोई भी स्वर न हो।

आदि-स्वरागम

तत्सम शब्द में आरंभ में ही स् के साथ संयुक्त व्यंजन होने से उच्चारण की सुविधा के लिए आदि में कोई स्वर बढ़ा लिया जाता है। साहित्यिक हिंदी में इस तरह के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, किंतु बोलियों में आदि स्वरागम साधारण बात है, जैसे—

इ :	*इस्त्री*	*स्त्री*
अ :	*अस्नान*	*स्नान*
	अस्तुति	*स्तुति*

मध्य-स्वरागम

शब्द के मध्य में भी स्वरागम प्रायः तब पाया जाता है जब उच्चारण की सुविधा के लिए संयुक्त व्यंजनों को तोड़ने की आवश्यकता होती है। यह प्रवृत्ति भी बोलियों में विशेष पाई जाती है, जैसे—

अ :	*किशन्*	*कृष्ण*
	गरब्	*गर्व*
	चंदर्मा	*चंद्रमा*
	जनम्	*जन्म*
इ :	*तिरिया*	*स्त्री*
	गिरहन्	*ग्रहण*
	गिलानि	*ग्लानि*
उ :	*सुमरन्*	*स्मरण*

ग. स्वर विपर्यय

१०२. कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि स्वर का स्थान बदल जाता है, या दो स्वरों में कदाचित् उच्चारण की सुविधा के लिए स्थान परिवर्तन हो जाता है, जैसे—

लूका	*उल्का*
रेंडी	*एरंड*
उंगली	*अंगुली*
इमली	*अम्लिका*
बूंद	*विंदु*
ऊख	*इक्षु*
मूछ	*श्मश्रु*

कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिन में एक स्वर दूसरे को प्रभावित कर उसे या तो परिवर्तित कर देता है या दोनों मिल कर तीसरा रूप ग्रहण कर लेते हैं—

सेंध	*सन्धि*
पोहे (बो०)	*पशु*

ई. व्यंजन-परिवर्तन-संबंधी कुछ साधारण नियम

१०३. बीम्स[1] के आधार पर व्यंजन-परिवर्तनों के संबंध में कुछ साधारण नियम संक्षेप में नीचे दिए जाते हैं।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा० १, अ० ३, ४

६. असंयुक्त व्यंजन

आदि-व्यंजन

आदि संयुक्त व्यंजन में प्रायः कोई भी परिवर्तन नहीं होता। यह प्रवृत्ति प्रायः समस्त भारत-यूरोपीय कुल की भाषाओं में किसी न किसी रूप में पाई जाती है। हिंदी में इस के अनेक उदाहरण मिलते हैं—

कोइल	*कोकिल*
नंगा	*नग्न*
रोना	*रोदन*
हाथ	*हस्त*

शब्द के अंदर होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव कभी-कभी आदि-व्यंजन पर आकर पड़ जाता है, ऐसी अवस्था में आदि-व्यंजन में भी परिवर्तन हो जाता है। नीचे के उदाहरणों में ह् या ऊष्म ध्वनियों के प्रभाव के कारण आदि-व्यंजन अल्पप्राण से महाप्राण हो गया है—

भाप	*बाष्प*
घर	*गृह*
धी (बो०)	*दुहितृ*

कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिन में संस्कृत दंत्य व्यंजन हिंदी में मूर्द्धन्य में परिवर्तित हो जाता है—

डसना	√*दंश्*
डाह	√*दह्*
डोला	√*दुल्*

मध्य-व्यंजन

शब्दों के मध्य में आने वाले व्यंजनों में सब से अधिक परिवर्तन होते हैं यद्यपि ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन में या तो व्यंजन में कोई भी

परिवर्तन नहीं होता या उस का लोप हो जाता है। इस संबंध में कुछ प्रवृत्तियां अत्यंत रोचक हैं—

(१) अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन के अपने वर्ग के सघोष अल्पप्राण व्यंजन में परिवर्तित हो जाने के बहुत उदाहरण मिलते हैं—

साग	*शाक*
कुंजी	*कुंचिक*
कीड़ा	*कीट—*
सवा	*सपादिक*

(२) प के संबंध में ऐसे उदाहरण अधिक मिलते हैं जिन में प् केवल ब् में परिवर्तित होकर नहीं रुक जाता बल्कि स्पर्श ब् अथवा व् अंतस्थ व् में परिवर्तित होकर अंत में उ का रूप धारण कर लेता है। यह मूलस्वर उ अपने गुणरूप ओ अथवा वृद्धिरूप औ में परिवर्तित हो जाता है—

सोना	*स्वपनं*
बोना	*वपनं*
कौड़ी	*कपर्द*
सौत	*सपत्नी*

इसी ढंग का परिवर्तन म् के संबंध में भी मिलता है—

गौना	*गमनं*
बौना	*वामन*
चौरी	*चामर*

(३) महाप्राण स्पर्श व्यंजनों मे संबंध में एक परिवर्तन बहुत साधारण है। ऐसे व्यंजनों में एक अंश वर्गीय-स्पर्श का रहता है तथा दूसरा अंश हकार का। अकसर यह देखा जाता है कि महाप्राण का वर्गीय अंश लुप्त हो जाता है और केवल हकार शेष रह जाता है—

मेह	मेघ
कहना	कथन
बहरा	बधिर
अहीर	आभीर

छ् झ्, ठ् ढ् तथा फ् के संबंध में यह परिवर्तन कम मिलता है।

(४) साधारणतया ऊष्म ध्वनियों में यह परिवर्तन नहीं होता किंतु कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिन में संस्कृत ऊष्म भी ह् में परिवर्तित हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति हिंदी की अपेक्षा सिंधी और पंजाबी में विशेष पाई जाती है—

बारह	द्वादश
केहरी	केसरी
इकहत्तर	एकसप्तति

(५) मध्य म् का एक विशेष परिवर्तन अत्यंत रोचक है। म् ओष्ठ्य अनुनासिक है अतः कभी-कभी यह देखा जाता है कि इस के ये दोनों अंश पृथक् हो जाते हैं। अनुनासिक अंश पिछले स्वर को अनुनासिक कर देता है और ओष्ठ्य अंश का व् हो जाता है—

आँवला	आमलक
गाँव	ग्राम
साँवला	श्यामल
कुंवर	कुमार

(६) मध्य ण् प्रायः न् में परिवर्तित हो जाता है—

घिन	घृणा
गिनना	गणन

सुनना	*श्रवण*
पन्डित	*पण्डित*

(७) मध्य व्यंजन का लोप होना प्राकृत में साधारण नियम था, हिंदी में भी इस के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं —

कोइल	*कोकिल*
सुनार	*स्वर्णकार*
नेवला	*नकुल*

इन परिवर्तनों के संबंध में बीम्स[1] ने कुछ कारण दिए हैं जो रोचक हैं, किंतु ये निश्चित नियम नहीं माने जा सकते।

अंत्य-व्यंजन

साधारणतया हिंदी में व्यंजनांत शब्दों की संख्या बहुत कम है। यह बतलाया जा चुका है कि आधुनिक काल में अंत्य अ के उच्चारण का लोप हो जाने के कारण हिंदी के बहुत से शब्द व्यंजनांत हो गए हैं। आधुनिक परिवर्तन होने के कारण इस का अंत्य व्यंजन पर अभी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

कुछ परिवर्तन बोलियों में विशेष रूप से पाए जाते हैं। इन में से मुख्य-मुख्य नीचे दिए जाते हैं—

य् > ज्	*जोत*	*योत्र*
	काज	*कार्य*
	जमुना	*यमुना*
ल् > र्	*केरा*	*केला*
	महिरारू	*महिला*

[1] बी., क. ग्रे., § ५४, ५५

			थरिया	स्थाली
व्	>	ब्	सब	सर्व
			बिरिया	वेला
श्	>	स्	बस	वश
			सरीर	शरीर
ष्	>	ख्	भाखा	भाषा
			हरख	हर्ष
			मेख (मीनमेख)	मेष (मीनमेष)

र्, ह्, और स् में परिवर्तन बहुत कम होते हैं।

ख. संयुक्त व्यंजन

१०४. संस्कृत शब्दों में आदि अथवा मध्य में आने वाले संयुक्त व्यंजनों में हिंदी में प्राय: एक ही व्यंजन रह जाता है। प्राकृत भाषाओं में प्रायः एक व्यंजन दूसरे का रूप ग्रहण कर लेता था। इस संबंध में मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियां[1] नीचे दी जाती हैं—

---

[1]बीम्स ने (क.ग्रै., भा० १, अ० ४) संयुक्त व्यंजनों में ध्वनि-परिवर्तन के इतिहास की दृष्टि से व्यंजनों के दो विभाग किए हैं—१. बली व्यंजन अर्थात् पँचवर्गों के प्रथम चार स्पर्श व्यंजन और २. बलहीन व्यंजन अर्थात् पाँच स्पर्श अनुनासिक, अंतस्थ, और ऊष्म। इस दृष्टि से संयुक्त व्यंजनों के तीन भेद हो सकते हैं—१. बली संयुक्त व्यंजन, जैसे प्त्, ग्ध्, ब्ज्। २. बलहीन संयुक्त व्यंजन जैसे श्र्, र्य्, ल्व्। ३. मिश्र संयुक्त व्यंजन जैसे, त्न, ध्य्, ग्र्। इन तीनों प्रकार के संयुक्त व्यंजनों के ध्वनि-परिवर्तन संबंधी नियम बीम्स ने नीचे लिख दिये हैं और ये साधारणतया ठीक उतरते हैं—

१. बली संयुक्त व्यंजन में हिंदी में पहले व्यंजन का प्रायः लोप हो जाता है और पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है।

(१) स्पर्श + स्पर्श : ऐसी परिस्थिति में हिंदी में प्रायः पहले व्यंजन का लोप हो जाता है साथ ही संयुक्त व्यंजन का पूर्वस्वर दीर्घ हो जाता है—

मूंग	*मुद्ग*
दूध	*दुग्ध*
सात	*सप्त*

रूप-परिवर्तन के भी कुछ उदाहरण हिंदी में मिल जाते हैं—

सत्तर	*सप्तति*
सत्तरह	*सप्तदश*

(२) स्पर्श + अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति में यदि स्पर्श पहले आवे तो अनुनासिक व्यंजन का प्रायः लोप हो जाता है—

आग	*अग्नि*
तीखा	*तीक्ष्ण*

ज्ञ (ज् + ञ्) के संयुक्त रूप में कई प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं—

आग्या	*आज्ञा*
जनेऊ	*यज्ञोपवीत*
जग्य, जाग (बो०)	*यज्ञ*
रानी	*राज्ञी*

---

२. बलहीन संयुक्त व्यंजनों में प्रायः अधिक निर्बल व्यंजन का लोप हो जाता है, जैसे स्पर्श-अनुनासिक और अंतस्थ में अंतस्थ अधिक निर्बल ठहरता है।

३. मिश्र व्यंजनों में प्रायः बलहीन व्यंजन का लोप हो जाता है।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों को, इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त करके, परीक्षा करना रोचक होगा।

यदि अनुनासिक व्यंजन पहले हो तो उस का लोप तो हो जाता है किंतु पूर्वस्वर अनुनासिक हो जाता है—

जाघ	*जङ्घा*
काटा	*कण्टक*
चाद	*चन्द्र*
कापना	*कंपन*

(३) स्पर्श + अंतस्थ *(य्, र्, ल्, व्)* : ऐसी परिस्थिति में स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, अंतस्थ का प्रायः लोप हो जाता है—

य् :	*जोग (बो०)*	*योग्य*
	चूना	*च्यु*
र् :	*बाघ*	*व्याघ्र*
	पनाली	*प्रणाली*
	दुबला	*दुर्बल*
व् :	*पका*	*पक्व*
	तुरत	*त्वरित*

दंत्य स्पर्श व्यंजनों का संयोग जब किसी अंतस्थ से होता है तो एक असाधारण परिवर्तन मिलता है। अंतस्थ लुप्त होने के साथ स्पर्श व्यंजन को अपने स्थान के स्पर्श व्यंजन में परिवर्तित कर देता है अर्थात् दंत्य स्पर्श य् के संयोग से तालव्य स्पर्श (चवर्ग), र् के संयोग से मूर्द्धन्य स्पर्श (टवर्ग), तथा व् के संयोग से ओष्ठ्य स्पर्श (पवर्ग) में परिवर्तित हो जाता है—

य् :	*सच*	*सत्य*
	नाच	*नृत्य*

आज	अद्य
बाँझ	वन्ध्या
साँझ (बो०)	सन्ध्या
बटेर	वर्तिक
र् : काटना	कर्तन
कौड़ी	कपर्द
गाड़ी	गंत्री
व् : बुढ़ापा	वृद्धत्व
बारह	द्वादश

(४) स्पर्श + ऊष्म (श्, ष्, स्, ह्) : ऐसी परिस्थिति में, स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, ऊष्म का प्रायः लोप हो जाता है साथ ही यदि स्पर्श व्यंजन अल्पप्राण हो तो महाप्राण हो जाता है—

श् : पछाँव (बो०)	पश्चिम
ष् : आँख	अक्षि
खेत	क्षेत्र
काठ	काष्ठ
पीठ	पृष्ठ
स् : थन	स्तन
हाथ	हस्त
ह् : जीभ	जिह्वा
गुझिया	गुह्य

(५) अनुनासिक + अनुनासिक : ऐसी परिस्थिति बहुत कम पाई जाती है। न् और म् का संयोग कभी-कभी मिलता है। किंतु ऐसी हालत में दोनों अनुनासिक रह जाते हैं—

जनम (बो०)	जन्म

(६) अनुनासिक + अंतस्थ : ऐसी परिस्थिति में अंतस्थ का लोप हो जाता है—

अरना (भैंसा)	अरण्य
सूना	शून्य
ऊन	ऊर्ण
कान	कर्ण
काम	कर्म

(७) अनुनासिक + ऊष्म : ऐसी परिस्थिति में कई प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं। कभी अनुनासिक का लोप हो जाता है, कभी ऊष्म का, कभी दोनों किसी न किसी रूप में ठहर जाते हैं, तथा कभी-कभी ऊष्म ह् में परिवर्तित हो जाता है—

रास	रश्मि
मसान	स्मशान
सनेह, नेह	स्नेह
नहान	स्नान
कान्ह	कृष्ण

(८) अंतस्थ + अंतस्थ : ऐसी परिस्थिति के लिए भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी एक अंतस्थ का लोप हो जाता है और कभी दोनों अंतस्थ किसी न किसी रूप में रह जाते हैं—

मोल	मूल्य
सब	सर्व
चोरी	चौर्य

सूरज (बो०)	*सूर्य*
परब (बो०)	*पर्व*
बरत (बो०)	*व्रत*

(६) अंतस्थ + ऊष्म : ऐसी परिस्थिति के लिए भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी अंतस्थ रह जाता है, कभी ऊष्म, और कभी दोनों रह जाते हैं—

पास	*पार्श्व*
साला	*श्याला*
ससुर	*श्वशुर*
आसरा	*आश्रय*

उ. हिंदी व्यंजनों का इतिहास[1]

अब हिंदी के एक-एक व्यंजन को लेकर यह दिखलाने का यत्न किया जायगा कि यह प्रायः किन-किन संस्कृत ध्वनियों का परिवर्तित रूप हो सकता है।

क. स्पर्श व्यंजन

१. कंठ्य [क्, ख्, ग्, घ्]

१०५. हिं० क् :

---

[1] इस अंश के क्रम तथा उदाहरणों में चै., बे. लै., § २५०-३०५ से विशेष सहायता ली गई है। गुजराती के संबंध में इस प्रकार के शास्त्रीय विवेचन के लिए दे., टर्नर, गुजराती फोनोलोजी ज. रा. ए. सो., १६२१, पृ० ३२६, ५०५

सं० च् :	*कपूर*	*कर्पूर*
	काम	*कर्म*
सं० क्क् :	*चिकना*	*चिक्कण*
	कूकुर (ग्रा०)	*कुक्कुर*
सं० क्य् :	*मानिक*	*माणिक्य*
सं० क्र् :	कोस	कोश
	चाक	चक्र
सं० क्व् :	पका	पक्व
सं० ङ्क् :	आक	अंक
सं० र्क् :	*शकर*	*शर्करा*
	पाकड़	पर्कटी
सं० स्क् :	कंधा	स्कंध

क् ध्वनि कुछ देशी शब्दों[1] में भी मिलती है जैसे *झकी; हाँकना* आदि ।

बैठक, झलक आदि शब्दों में प्रत्यय के रूप में आने वाली क् ध्वनि की व्युत्पत्ति के लिए अध्याय ५ देखिए ।

उच्चारण में शब्द के मध्य तथा अंत में आने वाले ख् का उच्चारण कभी-कभी क् के समान हो जाता है, जैसे *भूख, झखना,* आदि उच्चारण में प्रायः *भूक, झकना* हो जाते हैं । इस तरह के परिवर्तनों पर साधारणतया ध्यान नहीं दिया जाता ।

विदेशी भाषाओं की क् ध्वनि हिंदी विदेशी शब्दों में बराबर पाई जाती है, जैसे अं० *कोट, सिकत्तर,* फ़ा० *कारगुजार,* अ० *मकान* ।

---

[1] चै., बे. लै., भा० १, पृ० ४५७

फ़ारसी, अरबी क़ ध्वनि पुरानी हिंदी तथा आधुनिक बोलियों में बराबर क् में परिवर्तित हो जाती है, जैसे कुलफ़ी (फ़ा०), कीमत (अ०), नुकसान (अ०), संदूक (अ०)।

१०६. हि० ख् :

सं० क्ष् :	खीर	क्षीर
	खत्री	क्षत्रिय
	आंख	अक्षि
	लाख	लक्ष
सं० क्ष्ण् :	तीखा	तीक्ष्ण
सं० ख् :	खाट	खट्वा
	खजूर	खर्जूर
	मूरख (बो०)	मूर्ख
सं० :ख् :	दुख	दुःख
सं० ख्य् :	बखानना	व्याख्यान
सं० ष्क् :	पोखर	पुष्कर
	सूखा	शुष्क

हिंदी बोलियों में सं० ष् के स्थान पर ख् बोला जाता है—

दोख	दोष
बरखा	वर्षा
मीनमेख	मीनमेष

लिखने में ख और र व के रूपों में संदेह होने के कारण पुरानी हस्तलिखित पोथियों में ख लिए ष लिखने लगे थे, जैसे षबरि, मुष आदि। हिंदी

की दृष्टि से ष् चिह्न मूर्द्धन्य ष् के लिए अनावश्यक समझा गया, क्योंकि
का शुद्ध उच्चारण लोग भूल गए थे और उच्चारण की दृष्टि से हिंदी-भा
भाषी ष् और श् को समान ही समझते थे। इस तरह जब ष् चिह्न ख् त
ष् दोनों के लिए प्रयुक्त होने लगा तो संस्कृत ष् का उच्चारण भी भ्रम
ख् के समान किया जाने लगा।

हिंदी बोलियों में फ़ा० अ० ख़् का उच्चारण ख् के समान होता है-

खोजा	फ़ा० ख़्वाजह
चरखा	फ़ा० चर्ख़
बखत	अ० वक़्त

अंतिम उदाहरण में अ० क़् के लिए साहित्यिक हिंदी में भी प्रायः
या ख् हो जाता है।

१०७. हि० ग् :

सं० क् :	गेंद	कंदुक (गेन्दुक)
	ग्यारह	एकादश
	मगर	मकर
	पगार	प्राकार
	भगत (बो०)	भक्त
	साग	शाक
सं० ग् :	गांठ	ग्रन्थि
	गेरू	गैरिक
	गोरा	गौर
सं० ग्न् :	आग	अग्नि
	लगन	लग्न

नंगा	नग्न + क :
सं० ग्य् : जोग (बो०)	योग, योग्य
सं० ग्र् : गाँव	ग्राम
आगे	अग्र
अगहन	अग्रहायण
सं० ङ्ग् : लौंग	लवङ्ग
भाँग	भङ्ग
सींग	शृङ्ग
सं० द्ग् : मूंग	मुद्ग
मुगरी	मुद्गर
सं० ल्ग् : फागुन	फाल्गुन
बाग	वल्गा

विदेशी ग़् ध्वनि हिंदी बोलियों में ग् हो जाती है—

गरीब	ग़रीब
बाग	बाग़

१०८. हि० घ् :

सं० घ् : घड़ा	घट
घाम	घर्म

की दृष्टि से ष् चिह्न मूर्द्धन्य ष् के लिए अनावश्यक समझा गया, क्योंकि इस का शुद्ध उच्चारण लोग भूल गए थे और उच्चारण की दृष्टि से हिंदी-भाषा-भाषी ष् और श् को समान ही समझते थे। इस तरह जब ष् चिह्न ख् तथा ष् दोनों के लिए प्रयुक्त होने लगा तो संस्कृत ष् का उच्चारण भी भ्रमवश ख् के समान किया जाने लगा।

हिंदी बोलियों में फ़ा० अ० ख़् का उच्चारण ख् के समान होता है—

खोजा	फ़ा० ख़्वाजह
चरखा	फ़ा० चर्ख़
बखत	अ० वक़्त

अंतिम उदाहरण में अ० क़् के लिए साहित्यिक हिंदी में भी प्रायः ख् या ख़् हो जाता है।

१०७. हि० ग् :

सं० क् :	गेंद	कंदुक (गेन्दुक)
	ग्यारह	एकादश
	मगर	मकर
	पगार	प्राकार
	भगत (बो०)	भक्त
	साग	शाक
सं० ग् :	गाँठ	ग्रन्थि
	गेरू	गैरिक
	गोरा	गौर
सं० ग्न् :	आग	अग्नि
	लगन	लग्न

की दृष्टि से ष् चिह्न मूर्द्धन्य ष् के लिए अनावश्यक समझा गया, क्योंकि इस का शुद्ध उच्चारण लोग भूल गए थे और उच्चारण की दृष्टि से हिंदी-भाषा-भाषी ष् और श् को समान ही समझते थे। इस तरह जब ष् चिह्न ख् तथा ष् दोनों के लिए प्रयुक्त होने लगा तो संस्कृत ष् का उच्चारण भी भ्रमवश ख् के समान किया जाने लगा।

हिंदी बोलियों में फ़ा० अ० ख़् का उच्चारण ख् के समान होता है—

खोजा	फ़ा० ख़्वाजह
चरखा	फ़ा० चर्ख़
बखत	अ० वक़्त

अंतिम उदाहरण में अ० क़् के लिए साहित्यिक हिंदी में भी प्रायः ख् या ख़् हो जाता है।

१०७. हि० ग् :

सं० क् :	गेंद	कंदुक (गेन्दुक)
	ग्यारह	एकादश
	मगर	मकर
	पगार	प्राकार
	भगत (बो०)	भक्त
	साग	शाक
सं० ग् :	गाँठ	ग्रन्थि
	गेरू	गैरिक
	गोरा	गौर
सं० ग्न् :	आग	अग्नि
	लगन	लग्न

नंगा	नग्न + क
सं० ग्य् : जोग (बो०)	योग, योग्य
सं० ग्र् : गांव	ग्राम
आगे	अग्र
अगहन	अग्रहायण
सं० ङ्ग् : लौंग	लवङ्ग
भांग	भङ्ग
सींग	शृङ्ग
सं० द्ग् : मूंग	मुद्ग
मुगरी	मुद्गर
सं० ल्ग् : फागुन	फाल्गुन
बाग	वल्गा

विदेशी ग़् ध्वनि हिंदी बोलियों में ग् हो जाती है—

गरीब	ग़रीब
बाग	बाग़

१०८. हि० घ् :

सं० घ् : घड़ा	घट
घाम	घर्म

२. मूर्द्धन्य[1] [ट् ठ् ड् ढ्]

१०६. हि० ट्:

सं० ट् :	टकसाल	टङ्कशाला
सं० ट्ट् :	लंगोट	लिंगपट्ट
	हाट	हट्ट
सं० ण्ट् :	कांटा	कण्टक
	बांटना	√वण्ट्
सं० त्र् :	टूटना	√त्रुट्
सं० र्त् :	काटना	कर्तनं
	कटारी	कर्तरिका
	केवट	कैवर्त
सं० ष्ट् :	ईंट	इष्टक.
सं० ष्ट्र् :	ऊंट	उष्ट्र
सं० ष्ठ् :	कोट (क़िला)	कोष्ठ
	छटा	षष्ठकः
	कटहल	काष्ठफल

---

[1] हिंदी मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों का उच्चारण प्रा० भा० आ० की इन ध्वनियों की अपेक्षा बहुत आगे को हट आया है।

मूर्द्धन्य ध्वनियां भारतीय आर्य ध्वनियां हैं, या किसी अनार्य भाषा के प्रभाव से मूल आर्यभाषा में आ गईं यह प्रश्न हमारे क्षेत्र के बाहर है। भारतीय आर्यभाषाओं में ये आदि काल से मौजूद रही हैं। इस विषय पर दे., चै., बे. लै., § २६६; बी. क. ग्रै., § ५६

११०. हि० ठ् :

सं० ण्ठ् :	सोंठ	शुण्ठि
सं० न्थ् :	गाठ	ग्रन्थि
सं० र्थ् :	अहुठ (३½) (बो०)	अर्द्ध चतुर्थ
सं० ष्ट् :	मीठा	मिष्ट
	मूठ	मुष्टि
	ढीठ	धृष्ट
	डीठि (बो०)	दृष्टि
	लाठी	यष्टि
	साठ	षष्टि
सं० ष्ठ् :	कोठा	कोष्ठकः
	जेठ	ज्येष्ठ
	निठुर	निष्ठुर
सं० स्थ् :	पठाना (बो०)	प्रस्थापयति

१११. हि० ड् :

सं० ड :	डाइन	डाकिनी
सं० ण्ड् :	भंडार	भाण्डागार
सं० द् :	डोली	दोलिका
	डोरा	दोरक
	डांड	दण्ड
	ड़ीवट	दीपवर्तिका

११२. हि० ढ् :

सं० धृ :	ढीठ	धृष्ट

३. दंत्य [त्, थ्, द्, ध्]

११३. हि० त् :

सं० क्त् :	सत्तू	सक्तु
	भात	भक्त
	मोती	मौक्तिक
	राते (ब्रो०)	रक्त
सं० त् :	तेल	तैल
	तांत	तन्तु
सं० त्त् :	माता (मद–)	मत्त
	भीत	भित्ति
	पीतल	पित्तल
	उतरना	उत्तरति
सं० त्र् :	तीन	त्रीणि
	तोड़ी (रागिनी)	त्रोटिका
	तोड़ना	√त्रुट्
	खेत	क्षेत्र
	चीता	चित्रक
	छाता	छत्र

सं० त्व् :	तू	त्वया
	तुरंत	त्वरित; त्वरंत
सं० न्त् :	दांत	दन्त
	संताल (जाति)	सामन्त पाल
सं० न्त्र् :	आंत	अन्त्र
सं० प्त् :	नाती	नप्तृ
	विनती	विज्ञप्ति
	सतरह	सप्तदश
	तत्ता (बो०)	तप्त
सं० र्त् :	कातिक	कार्तिक
	बत्ती	वर्तिका

११४. हि० थ् :

सं० त्थ् :	कैथ	कपित्थ
	कुलथी (दाल)	कुलत्थ
सं० र्थ् :	साथ	सार्थ
	चौथा	चतुर्थ
सं० स्त् :	माथा	मस्तक
	हाथ	हस्त
	पाथर (बो०)	प्रस्तर

११५. हि० द् :

सं० द् :	दांत	दंत

	दूध	दुग्ध
	दाहिना	दक्षिण
सं० द्र् :	नींद	निद्रा
	भादौं	भाद्रपद
	हल्दी	हरिद्रा
सं० द्व् :	दो	द्वौ
	दूना	द्विगुण
	दीप (जै०, जम्बू दीप)	द्वीप
सं० न्द् :	सेंदुर	सिन्दूर
	ननद	ननान्द
सं० न्द्र :	चांद	चन्द्र
सं० र्द् :	चौदह	चतुर्दश

११६. हि० ध् :

सं० ग्ध :	दूध	दुग्ध
सं० द्ध् :	ऊधौ	उद्धव
	उधार	उद्धार
सं० द्ध्र् :	गीध (ब्रो०)	गृद्ध्
सं० ध् :	धान	धान्य
	धुआँ	धूम
	धरना	धरति
सं० न्ध् :	अंधेरा	अन्धकार
	आंधी	अन्धिका

	बांधना	√बन्ध्
सं० द्ध् :	आधा	अर्द्ध
	गधा (बो०)	गर्दभ

४. ओष्ठ्य [प्, फ्, ब्, भ्]

११७. हि० प् :

सं० त्प् :	उपज—	उत्पद्य—
सं० त्म् :	अपना	आत्मनः
सं० प् :	पान	पर्ण
	पौन	पादोन
	पीपल	पिप्पल
सं० प्य् :	रुपया	रूप्यकः
सं० प्र् :	पिया (बो०)	प्रिय
	पावस	प्रावृष्
	पहर	प्रहर
सं० म्प् :	कांपना	√कम्प्
सं० र्प् :	कपड़ा	कर्पट
	कपास	कर्पास
	सांप	सर्प
सं० ष्प् :	भाप	बाष्प
सं० स्प् :	परस	स्पर्श

११८. हि० फ् :

सं० फ् :	फलारी (मिठाई)	फलाहार
	फूल	फुल्ल
सं० स्फ् :	फोड़ा	स्फोटक
	फटकरी	स्फटकारिका
	फुर्ती	स्फूर्ति

११९. हि० ब् :

सं० ड्व् :	छबीस	षड्विंश
सं० द्व् :	बारह	द्वादश
	बाईस	द्वाविंशति
सं० प् :	बैठना	√उपविष्ट्
सं० ब् :	बाँझ	बन्ध्या
	बाह	बाहु
	बकरा	बर्कर
	बाँधना	√बन्ध्
सं० ब्र् :	बाम्हन (बो०)	ब्राह्मण
सं० म्ब् :	नीबू	निम्बुक
सं० म्र् :	ताँबा	ताम्र
	अँबिया (बो०)	आम्र
सं० र्ब :	दुबला	दुर्बल
सं० र्व् :	चबाना	चर्वण

सब	सर्व
सं० व् : बाँका	वक्र
बावला	वातुल
बहू	वधू
बूंद	बिंदु
सं० व्य् : बखानना (बो०)	व्याख्यान
बाघ	व्याघ्र

१२०. हि० भ् :

सं० ब् : भूख	बुभुक्षा
भाप	बाष्प
सं० भ् : भात	भक्त
भीख	भिक्षा
सं० भ्य् : भीतर	अभ्यन्तर
भीजना	√अभ्यंज्
सं० भ्र् : भौंरा	भ्रमर
भाई	भ्रातृ
भावज	भ्रातृजाया
सं० र्भ् : गाभिन	गर्भिणी
सं० व् : भेष	वेष
सं० ह्व् : जीभ	जिह्वा

ख. स्पर्श-संघर्षी [च्, छ्, ज्, झ्,]

१२१. प्रा० भा० आ० में च्, छ्, ज्, झ्, तालव्य स्पर्श व्यंजन[1] थे उन दिनों च् की ध्वनि कुछ-कुछ क्य के सदृश रही होगी। म० भा० आ० प्रारंभिक काल में ही ये तालव्य स्पर्श ध्वनियां स्पर्शसंघर्षी हो गई थीं। य परिवर्तन कदाचित् मगध आदि पूर्वी देशों की भाषाओं से आरंभ हुआ था मध्यदेश और पश्चिमी आर्यावर्त की भाषाओं में कुछ दिनों तक स्पर्श उच्चार चलता रहा। म० भा० आ० के अंतिम समय तक प्रायः समस्त भारती आर्यभाषाओं में इन स्पर्श ध्वनियों का स्पर्श-संघर्षी उच्चारण फैल गया आ० भा० आ० में अब चवर्गीय ध्वनियां स्पर्श न हो कर स्पर्श-संघर्षी हो ग हैं। आसामी, मराठी, गुजराती आदि कुछ आधुनिक बोलियों में तो इन झुकाव दंत्य ध्वनियों की ओर हो गया है। हिंदी स्पर्श-संघर्षी ध्वनियों इतिहास नीचे दिया जाता है।

१२२. हि० च् :

सं० च् :	चांद	चंद्र
	चाक	चक्र
	कांच	काच
सं० ञ्च् :	पांच	पञ्च
	आंचल	अञ्चल
सं० त्य् :	नाच	नृत्य
	मीचु (ब्रो०)	मृत्यु
	सांच (ब्रो०)	सत्य
सं० र्च् :	कूची	कूर्चिका

---

[1] चै., वे. लै., § १३२, § २५५

१२३. हि० छ् :

सं० क्ष् : छुरा	क्षुरकः
छत्री (बो०)	क्षत्रिय
रींछ	ऋक्ष
छिन (बो०)	क्षण
सं० च्छ् : पूछना	√पृच्छ्
सं० छ् : छाता	छत्र
छेरी (बो०)	छगल
छाह (बो०)	छाया
सं० श् : छिलका	शल्कल
छकड़ा	शकटकः
सं० श्च् : बीछू	वृश्चिक
सं० ष् : छः	षट्

१२४. हि० ज् :

सं० ज् : जागता	जागर्ति
भावज	भ्रातृजाया
बिजना (बो०)	व्यजन
जनम (बो०)	जन्म
सं० ज्ज् : काजल	कज्जल
लाज	लज्जा
सं० ज्य् : जेठ	ज्येष्ठ

	राज	राज्य
	बनजारा	वाणिज्य + कार
सं० ज्व् :	उजला	उज्वल
सं० ञ्ज् :	मूंज	मुञ्ज
	पिंजड़ा	पञ्जर
सं० द्य् :	अनाज	अन्नाद्य
	जुआ	द्यूत
	आज	अद्य
	बिजली	विद्युत्-
सं० य् :	जौ, जवा	यवकः
	जाना	√या
	जाँता	यंत्र
सं० य्य् :	सेज	शय्या
सं० र्ज् :	खुजली	खर्जुर
	भोजपत्र	भूर्जपत्रं
	माँजना	मार्जनं
सं० र्य् :	आजी	आर्यिका
	काज (बो०)	कार्य

१२५. हि० झ् :

सं० ध्य् :	ओझा	उपाध्याय
	समझना	संबुध्यति
	बूझना	बुध्य—

जूझना (बो०) *युध्यति*

सं० *न्ध्य्* : *सांझ* (बो०) *सन्ध्या*

बांझ *बन्ध्या*

ग. अनुनासिक [ङ्, ञ्, ण्, न्, न्ह्, म्, म्ह्]

१२६. संस्कृत में ङ् ध्वनि कंठ्य व्यंजनों के पहले केवल मात्र शब्द के मध्य में आती थी। हिंदी में भी इस का यही प्रयोग मिलता है किंतु केवल **ह्रस्व स्वर के बाद**।

हि० ङ् < सं० ङ्

अङ्गुल	*अङ्गुलि*
कङ्गाल	*कङ्काल*
जङ्गल	*जङ्गल*

कुछ देशी शब्दों में भी यह ध्वनि पाई जाती है, जैसे *बङ्गू*, *चङ्गा* विदेशी शब्दों में भी ऊपर दी हुई परिस्थिति में ङ् ध्वनि पाई जाती है, जैसे *जङ्ग*, *तङ्ग*।

१२७. संस्कृत में ञ् ध्वनि केवल मात्र शब्द के मध्य में तालव्य व्यंजनों के पहले आती थी। तालव्य व्यंजनों के उच्चारण में स्थान-परिवर्तन होने के कारण हिंदी में ऐसे स्थलों पर अब ञ् के स्थान पर न् का उच्चारण होने लगा है। लिखने में अभी यह परिवर्तन नहीं दिखाया जाता।

लिखित रूप	उच्चरित रूप
चञ्चल	चन्चल
पञ्जा	पन्जा
कञ्ज	कन्ज

आधुनिक साहित्यिक हिंदी में ञ् का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं मिलता किंतु हिंदी की कुछ बोलियों में ञ् से मिलती-जुलती एक ध्वनि है किंतु यह वास्तव में यँ मात्र है, जैसे ब्र० *नाञ्* या *नायँ* (नहीं), *जाञ्* या *जायँ* (जावें), *बाञे* या *बायें* (बांये) ।

१२८. प्राकृतों में *ण्* का प्रयोग बहुत होता था। आजकल पंजाबी में इस का व्यवहार विशेष पाया जाता है । तत्सम शब्दों में हिंदी में भी संस्कृत *ण्* का व्यवहार शब्द के मध्य या अंत में मिलता है, जैसे *गुण*, *गणपति*, *ऋण*, *हरिण* इत्यादि । तद्भव रूपों में हिंदी में *ण्* के स्थान पर बराबर *न्* हो जाता है, जैसे *गुनी*, *हिरन*, *गनेस* । तत्सम शब्दों में भी मध्य हलंत *ण्* के स्थान पर *न्* का ही उच्चारण होता है, यद्यपि लिखा *ण्* जाता है—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
पण्डित	*पन्डित*
खण्ड	*खन्ड*
मुण्ड	*मुन्ड*

१२९. हिंदी *न्* वास्तव में दंत्य ध्वनि नहीं रही है बल्कि वर्त्स्य ध्वनि हो गई है । *न्* का प्रयोग हिंदी में आदि, मध्य और अंत सब स्थानों पर स्वतंत्रता-पूर्वक होता है । हिंदी में संस्कृत के पाँच अनुनासिक व्यंजनों के स्थान पर दो—*न्* और *म्*—का ही प्रयोग विशेष होता है । *ङ्* केवल कुछ शब्दों के मध्य में मिलता है, *ण्* कुछ तत्सम शब्दों में जब सस्वर हो और *ञ्* का व्यवहार बिल्कुल भी नहीं होता । *न्* का इतिहास नीचे दिया है—

हि० *न्* :

सं० *ज्ञ्* :	*विनती*	*विज्ञप्तिका*
सं० *ञ्* :	*चन्चल*	*चञ्चल*
	पन्जा	*पञ्चकः*
	कन्ज	*कञ्ज*

सं० ण् :	कनी	कणिका
	कंगन	कंकण
	दुगना	द्विगुण
	पन्डित	पण्डित
	खन्ड	खण्ड
	मुन्ड	मुण्ड
सं० ण्य् :	पुन्न (बो०)	पुण्य
	अरना (बो०)	अरण्य
सं० न् :	नींद	निद्रा
	निउला	नकुल
	थन	स्तन
	पानी	पानीय
सं० न्य् :	धान	धान्य
	सूना	शून्य
	मान(आदरणीय संबंधी)	मान्य
सं० र्ण् :	पान	पर्ण
	कान	कर्ण

१३०. हि० न्ह् :

सं० ष्ण् :	कान्ह (बो०)	कृष्ण
सं० स्न् :	अन्हाना (बो०)	स्नान

१३१. हि० म् :

सं० म् :	मेह	मेघ
	मूंग	मुद्ग
	माथा	मस्तक
सं० म्ब् :	नीम	निम्ब
	जामुन	जम्बु
	कदम (बो०)	कदम्ब
सं० म्र :	आम	आम्र
सं० श्म् :	मसान (बो०)	श्मशान

१३२. हि० म्ह् :

सं० म्भ् :	कुम्हार	कुम्भकार
सं० ष्म् :	तुम्हें	युष्मे
सं० ह्म् :	ब्रम्हा (बो०)	ब्रह्मा

घ. पार्श्विक [ल्]

१३३. हि० ल् :

सं० ड् :	सोलह	षोडश
सं० त् :	अलसी	अतीसी
सं० द्र् :	भला	भद्र
सं० य् :	लाठी	यष्टिका

सं० र् : चालीस चत्वारिंशत्

हलदी हरिद्रा

सं० र्य् : पलंग पर्यङ्क

सं० ल् : लाख लक्ष

लगन लग्न

आँवला आमलक

काजल कज्जल

सं० ल्य् : कल कल्य

मोल मूल्य

सं० ल्व् : बेल बिल्व

कुछ विदेशी शब्दों के न् का उच्चारण हिंदी बोलियों में ल् के समान होता है, जैसे लोट < अं० नोट, लंबर < अं० नम्बर।

ङ. लुंठित[1] [र्]

१३४. हि० र् :

सं० त् : सत्तर सप्तति

---

[1] र् और ल् के प्रयोग की दृष्टि से प्रा० तथा म० भा० आ० भाषाओं में तीन विभाग मिलते हैं—१. पश्चिमी, जिसमें र् का प्रयोग विशेष है; २. मध्यवर्त्ती, जिन में र् और ल् दोनों का व्यवहार मिलता है; और ३. पूर्वी जिन में ल् का व्यवहार विशेष है। यह विशेषता कुछ कुछ आ० आ० भा० में भी पाई जाती है। हिंदी मध्यवर्त्ती भाषा है अतः इस में र् और ल् दोनों का व्यवहार मिलता है। इस संबंध में विस्तृत विवेचन के लिए दे., चै., बें. लैं., § ३२, § २६१

सं० द् : बारह	द्वादश
ग्यारह	एकादश
सं० र् : रात	रात्रि
रानी	राज्ञी
और	अपर
गहिरा	गभीर
सं० ल् : पखारना (ब्रो०)	प्रक्षालन
बेर	वेला

च. उत्क्षिप्त [ड़् ढ़्][1]

१३५. वैदिक भाषा में दो स्वरों के बीच में आने वाले ड् ढ् का उच्चारण ळ् ळ्ह् होता था। पाली में भी यह विशेषता पाई जाती है, किंतु संस्कृत में यह परिवर्तन नहीं होता था। म० भा० आ० में किसी समय स्वर के बीच में आने वाला ड् ढ् का उच्चारण कदाचित् ड़् ढ़् के समान होने लगा था।

धीरे-धीरे कुछ अन्य मूर्द्धन्य ध्वनियें भी ड़् ढ़् में परिवर्तित हो गईं। ड़् ढ़्, सदा शब्द के मध्य में दो स्वरों के बीच में आते हैं। आज कल अनेक आ० भा० आ० भाषाओं में ये ध्वनियें पाई जाती हैं। हिंदी ड़् ढ़् का इतिहास नीचे दिया जाता है—

१३६. हि० ड़् :

सं० ट् : बाड़ी	वाटिका
कड़ाही	कटाह
घोड़ा	घोटक

---

[1] चै., ब्रें. लैं., § १३३, § २७०

बड़	वट
खड़िया	खटिका

सं० ड्य् : जाड़ा	जाड्य

सं० ण्ड् : खाड़	खण्ड
पाड़े	पण्डित
मांड़	मण्ड
सूड़	सुण्ड

सं० र्द् : कौड़ी	कपर्द

१३७. हि० ढ़् :

सं० ठ् : मढ़ी	मठिका
पीढ़ा	पीठिका
पढ़ना	पठति

सं० द्ध् : बूढ़ा	वृद्ध

सं० ध्य् : कुढ़ना	कुध्यति

सं० र्द्ध् : साढ़े	सार्द्ध
बढ़ई	वर्द्धकिन

सं० र्ध् : बढ़ना	वर्धते

छ. संघर्षी [ह्, ह्, श्, स्, व्]

१३८. विसर्ग अथवा अघोष ह् केवल थोड़े से तत्सम शब्दों में आता है।

हि० : :

सं० :	: प्रायः	प्रायः
	पुनः	पुनः
सं० जिह्वामूलीय :	अंतःकरण	अंतःकरण

शब्द के अंत में आने वाले घोष ह् का उच्चारण हिंदी में प्रायः अघोष ह के समान हो जाता है किंतु लिखने में यह परिवर्तन नहीं दिखाया जाता।

लिखित रूप	उच्चरित रूप
वह	वः या वह
कह	कः या कह्
स्नेह	स्नेः या स्नेह्
मुह	मुः या मुह

यह भी स्मरण दिला देना अनुचित न होगा कि घोष महाप्राण स्पर्श व्यंजनों में घोष ह् आता है और अघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजनों में अघोष ह् आता है किंतु देवनागरी लिपि में यह भेद नहीं दिखलाया जाता।

१३९. घोष ह् शब्द के मध्य या आदि में आता है। अंत्य घोष ह् उच्चारण में अब अघोष हो गया है।

हि० ह् :

सं० ख् :	मुंह	मुख
	अहेरी	आखेटिक
	नह (ग्रो०)	नख

सं० घ् : रहटा	अरघट्ट
सं० थ् : कहना	कथनं
सं० ध् : साहु	साधु
बहू	वधू
दही	दधि
सं० भ् : गहिरा	गभीर
सुहाग	सौभाग्य
हो	√भू
सं० श् : बारह	द्वादश
सोलह	षोडश
सं० ष् : पुहुप (बो०)	पुष्प
सं० ह् : बांह	बाहु
हाथी	हस्तिन्
हीरा	हीरक

१४०. हिंदी बोलियों में[1] साधारणतया केवल दंत्य स् का प्रयोग विशेष पाया जाता है और श् के स्थान पर भी स् कर लिया जाता है किंतु साहित्यिक हिंदी में तत्सम शब्दों में तालव्य श् का व्यवहार बराबर होता है। उच्चारण की दृष्टि से सं० मूर्द्धन्य ष् हिंदी में तालव्य श् में परिवर्तित हो गया है किंतु तत्सम शब्दों के लिखने में श् और ष् का भेद अभी बराबर

[1] बंगाली आदि पूर्वी आ० भा० आ० भाषाओं में तथा पहाड़ी भाषाओं में स् के स्थान पर भी श् का ही व्यवहार विशेष होता है। हिंदी से प्रभावित हो जाने के कारण बिहारी में स् का प्राधान्य है। श् और स् का यह भौगोलिक भेद बहुत प्राचीन है।

दिखलाया जाता है। उच्चारण की दृष्टि से हिंदी में मूर्द्धन्य ष् अब नहीं है।

१४१. हि० श् :

सं० श् :	पशु	पशु
	विश्व	विश्व
सं० ष् :	शेश	शेष
	कशाय	कषाय

१४२. हि० स् :

सं० श् :	संख	शंख
	सलाई	शलाकिया
	सास	श्वश्रू
सं० ष् :	सिरस	शिरीष
	कसेला	कषाय
	असाढ़	आषाढ़
सं० स् :	सूत	सूत्र
	सुहाग	सौभाग्य
	सोना	स्वर्ण

१४३. व् केवल तत्सम शब्दों में रह गया है। हिंदी बोलियों में व् के स्थान पर बराबर ब् हो जाता है।

हि० व् :

सं० व् :	वेला	वेला
	वाम	वाम
	कवि	कवि

सूचना—अन्य संघर्षी फ़् ज़् ख़् ग़् ध्वनियें केवल विदेशी शब्दों में पाई जाती हैं इन का विवेचन अगले अध्याय में किया गया है।

ज. अर्द्धस्वर (य़् व़्)

१४४. प्रा० भा० आ० काल में य़् व़् शुद्ध अर्द्धस्वर इॅ उॅ थे। संस्कृत में उॅ दंत्योष्ठ्य संघर्षी व् में परिवर्तित हो गया था। साथ ही ओष्ठ्य व़् रूपांतर भी बहुत प्राचीन समय से मिलता है। इॅ भी म० भा० आ० में ही य् के सदृश हो गई थी। संस्कृत के य् और व् हिंदी में शब्द के आदि में प्रायः ज् और ब् हो गए तथा शब्द के मध्य में इन का लोप हो जाता था। बाद को दो स्वरों के बीच में श्रुति के रूप में य् और व़् का फिर विकास हुआ, जैसे सं० *एकादश* > प्रा० *एआरह* > हि० *ग्यारह*।

१४५. हिंदी में य् का उच्चारण बहुत स्पष्ट नहीं होता। उच्चारण की दृष्टि से संयुक्त स्वर इअ या एअ और अर्द्धस्वर य् बहुत मिलते-जुलते हैं। अ तथा इ ई या ए के बीच में आने पर य् ध्वनि बिल्कुल ही अस्पष्ट हो जाती है जैसे *गये, गयी* आदि में। किंतु *गया, आया* में य् श्रुति स्पष्ट सुनाई पड़ती है। विदेशी शब्दों के अतिरिक्त य् ध्वनि तत्सम शब्दों में विशेष पाई जाती है।

तत्सम	तद्भव
यज्ञ	*जाग*
योधा	*जोधा*
वीर्य	*बीज*
कार्य	*काज*
यमुना	*जमुना*

१४६. व़् अर्द्धस्वर शब्द के मध्य में प्रयुक्त होता है। लिखने में व़् और व् में कोई भेद नहीं किया जाता है। व़् का व् के सदृश उच्चारण बहुत प्राचीन है।

व़् :

सं० व् : स्व़ामी		स्वामी
ज्व़र		ज्वर
सं० म् : क्व़ारा		कुमार
आव़ला	(बो०)	आमलक
चंव़र	(बो०)	चमर

ऊ. व्यंजन-संबंधी कुछ विशेष परिवर्तन

क. अनुरूपता

१४७. हिंदी शब्दों में कुछ उदाहरण मिलते हैं जिन में भिन्न-स्थानीय संयुक्त व्यंजनों में से एक दूसरे का रूप धारण कर लेता है, या उसी स्थान के व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है—

शक्कर	*शर्करा*
छत्तीस	*षट्त्रिंशत्*
बत्ती	*वर्तिका*

कुछ बोलियों में, विशेषतया कनौजी में, र् का निकट के व्यंजन में परिवर्तित हो जाना साधारण नियम है—

कनौ०	हिं०
उद्द	*उर्द*
हद्दी	*हलदी*
मिच्चैं	*मिरचें*

बोलने में अनुरूपता के बहुत उदाहरण मिलते हैं, किंतु इन्हें लिखने में नहीं दिखाया जाता है—

लिखित रूप	उच्चरित रूप
डाक घर	डाग्घर
एक गाड़ी	एग्गाड़ी
आध सेर	आस्सेर

ख. व्यंजन-विपर्यय

१४८. व्यंजन-विपर्यय के अनेक उदाहरण प्राचीन तथा आधुनिक शब्दों में बराबर मिलते हैं। विदेशी शब्दों में भी अकसर व्यंजनों के स्थान में परिवर्तन हो जाता है। नीचे कुछ रोचक उदाहरण दिए जा रहे हैं—

बिलारी	बिडाल
हलुक (बो०)	लघु-क
घर	गृह
पहिरना	√परि + धा
गडुर (बो०)	गरुड्
नखलऊ (बो०)	लखनऊ
नुस्कान (बो०)	नुक़्सान

अध्याय ३

विदेशी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

अ. फ़ारसी-अरबी

१४९. विदेशी शब्दों के संबंध में भूमिका में साधारण विवेचन हो चुका है। यहां इन विदेशी शब्दों के हिंदी में आने पर ध्वनि परिवर्तन के संबंध में विचार किया जायगा। हिंदी में सब से अधिक विदेशी शब्द फ़ारसी-अरबी के हैं। प्रायः यह भुला दिया जाता है कि इन विदेशी भाषाओं में फ़ारसी आर्यभाषा है जिस के प्राचीनतम रूप—अवस्ता की भाषा—का ऋग्वेद की भाषा से बहुत निकट का संबंध है, और अरबी भिन्न कुल की भाषा है जिस का आर्यभाषाओं से अब तक किसी प्रकार का भी संबंध स्थापित नहीं हो सका है। अरबी और फ़ारसी शब्दों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तन को समझने के लिए अरबी और फ़ारसी की ध्वनियों के संबंध में ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है, अतः इन भाषाओं की ध्वनियों का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जाता है।

क. अरबी ध्वनिसमूह

१५०. अरबी ध्वनिसमूह[१] में ३२ व्यंजन, ६ मूलस्वर तथा ४ संयुक्त स्वर हैं। आधुनिक शास्त्रीय दृष्टि से ये नीचे वर्गीकृत[२] हैं—

---

[१] गेर्डनर, फ़ोनेटिक्स आव ऐरेबिक।

[२] चै., बें. लैं., § ३०८

व्यंजन	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंतमध्यस्थानीय	वर्त्स्य या दंत्य		तालु तथा वर्त्स्य स्थानीय	तालव्य	कंठ्य	अलिजिह्व	उपालिजिह्व	स्वरयंत्रमुखी
				साधारण	कंठस्थान युक्त						
स्पर्श	ब्			त् द्	त़् द़्		ज्	क् ग्	क़्		ॽ
अनुनासिक	म्			न्							
पार्श्विक					ल़ झ़्	ल्					
कंपनयुक्त						र्					
संघर्षी		फ़्	थ़् द़्	स् ज़्	स़् ज़्	श् झ़्			ख़् ग़्	ह़् ॽ	ह्
अर्द्धस्वर	व्						य्				
स्वर	इन नौ मूल स्वरों के अतिरिक्त अइ, अउ, ओइ और ओउ ये चार मुख्य संयुक्त स्वर माने जाते हैं।						ई ए ऍ अ	ऊ ओ ऑ आ			

(स्वर-खंड में मध्य में "अ" भी अंकित है।)

सूचना—अघोष ध्वनियों के नीचे लकीर खिंची है, शेष ध्वनियां घोष हैं।

अरबी ध्वनिसमूह में कुछ ध्वनियां असाधारण हैं। त़्, द़्, ल़्, झ़्, स़्, ज़् कंठस्थान युक्त वर्त्स्य ध्वनियें हैं। इन के उच्चारण में जीभ की नोक वर्त्स स्थान को छूती है और साथ ही जीभ का पिछला भाग कोमल तालु

की ओर उठता है। इस तरह जीभ बीच में नीची और आगे पीछे ऊँची हो जाती है। ल़् ध्वनि अरबी में केवल *अल्लाह* शब्द के उच्चारण में प्रयुक्त होती है। ये समस्त ध्वनियां एक तरह से द्विस्थानीय हैं।

ह़् का उच्चारण कौवे के पीछे हलक़ की नली की पिछली दीवार से जिह्वामूल के नीचे उपालिजिह्वा को छुवा कर किया जाता है। इस के उच्चारण में एक विशेष प्रकार की ज़ोरदार फुसफुसाहट की आवाज़ होती है। ह़् उपालिजिह्व अघोष संघर्षी ध्वनि है, और ' अर्थात् ऐन् (अ) उपालिजिह्व घोष संघर्षी ध्वनि है।

' अर्थात् हम्ज़ा-अलिफ़ के उच्चारण में स्वरयंत्र मुख बिल्कुल बंद होकर सहसा खुलता है। इस का उच्चारण हलके खाँसने की ध्वनि से मिलता-जुलता समझना चाहिए। ' स्वरयंत्रमुखी अघोष स्पर्श ध्वनि है। ह् स्वरयंत्रमुखी घोष संघर्षी ध्वनि है।

१५१. अरबी लिपि में केवल व्यंजनों के लिए लिपि-चिह्न हैं, स्वरों के लिए पृथक् चिह्न नहीं हैं। दीर्घ स्वरों में से तीन तथा दो संयुक्त स्वरों के लिए व्यंजन चिह्नों में से ही तीन प्रयुक्त होते हैं—'हम्ज़ा' (ء) के बिना 'अलिफ़' (ا) *आ* के लिए, 'इये' (ی) ई, अइ के लिए तथा 'वाओ' (و) ऊ अउ के लिए। शेष स्वरों को लिपि द्वारा प्रकट करने का कोई साधन मूल अरबी में नहीं है। ३२ व्यंजन ध्वनियों को प्रकट करने के लिए भी केवल २८ चिह्न हैं अतः नीचे लिखी सात ध्वनियां केवल तीन चिह्नों से प्रकट की जाती हैं—'ज़ोय' (ظ) झ़् ज़् के लिए, 'लाम' (ل) ल् ल़् के लिए और 'जीम' (ج) झ़् ज् और ग् के लिए प्रयुक्त होती है।

ख. फ़ारसी ध्वनिसमूह

१५२. अरबी से प्रभावित होने के पूर्व छठी सदी ईसवी तक फ़ारसी भाषा पहलवी लिपि में लिखी जाती थी। नीचे मध्यकालीन फ़ारसी (पहलवी) की २४ व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण[1] दिया जा रहा है—

[1] चैं., बें. लैं., § ३०७

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंत्य	तालव्य-वर्त्स्य	कंठ्य	जिह्वा-मूलीय	स्वरयंत्र-मुखी
स्पर्श	प् ब्		त् द्		क् ग्		
स्पर्श संघर्षी				च् ज्			
अनुनासिक	म्		न्				
पार्श्विक				ल्			
कंपन-युक्त				र्			
संघर्षी		फ् व्	स् ज् द्	श् झ्		ख् ग्	ह्
अर्द्ध स्वर	व्			य्			

अरबी के समान पहलवी में भी स्वरों के लिए पृथक् चिह्न नहीं थे। उच्चारण की दृष्टि से पहलवी में व्यवहृत स्वरों को नीचे लिखे ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है —

स्वर

	अग्र	पश्च
संवृत	ई इ	ऊ उ
अर्द्धसंवृत	ए ए	ओ ओ
विवृत	अ	आ
संयुक्त स्वर	अइ	अउ

१५३. सातवीं सदी ईसवी में जब अरबों ने ईरान को पराजित कर ईरानी धर्म और सभ्यता के स्थान पर अपने इस्लाम धर्म और अरबी सभ्यता को स्थानापन्न किया तो बहुत बड़ी संख्या में अरबी शब्दसमूह को लेने के साथ-साथ फ़ारसी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाने लगी। फ़ारसी के लिए व्यवहृत होने पर अरबी वर्णों के उच्चारण तथा संख्या दोनों में परिवर्तन करना पड़ा। अरबी वर्णों की संख्या फ़ारसी में ३२ कर दी गई। इस का तात्पर्य यह है कि पहलवी में पाए जाने वाले २४ वर्णों में आठ नए अरबी वर्ण जोड़ दिए गए, यद्यपि फ़ारसी में आने पर इन मूल अरबी वर्णों के उच्चारण भिन्न अवश्य हो गए। अरबी के ये आठ विशेष वर्ण निम्न लिखित हैं—

वर्ण का उर्दू नाम	अरबी उच्चारण	फ़ारसी उच्चारण
से (ث)	थ़्	स्
हे (ح)	ह्	ह्
स्वाद् (ص)	स़्	स
ज़्वाद् (ض)	द	ज़्
तोय (ط)	त्	त्
ज़ोय (ظ)	ज़्	ज़्
ऐन् (ع)	؟	अ
क़ाफ़ (ق)	क़्	क़्

अरबी ध्वनियों का उच्चारण फ़ारसी ध्वनियों के सदृश कर लेने के कारण इस नई फ़ारसी-अरबी वर्णमाला में कई-कई वर्णों के उच्चारण में सादृश्य हो गया। यह नीचे दिखलाया जा रहा है—

वर्ण का उर्दू नाम	अरबी उच्चारण	फ़ारसी उच्चारण
सीन (س)	स्	स्
स्वाद् (ص)	स़्	
से (ث)	थ़्	

ज़े	(ز)	ज़्	ज़्
ज़ोय	(ظ)	ज़्	
ज़्वाद	(ض)	द़्	
हे	(ح)	ह़्	ह्
हे	(ہ)	ह्	
ते	(ت)	त्	त्
तोय	(ط)	त़्	

अलिफ़-हम्ज़ा में हम्ज़ा का उच्चारण फ़ारसी में नहीं होता था।

साथ ही फ़ारसी में चार नई ध्वनियां थीं जो अरबी में मौजूद नहीं थीं। इन के लिए अरबी चिह्नों को कुछ परिवर्तित करके नए चिह्न गढ़े गए। ये चार ध्वनियां और चिह्न निम्नलिखित हैं—

ध्वनियां	नए चिह्न	
प्	پ	(पे)
च्	چ	(चे)
झ़्	ژ	(झ़े)
ग्	گ	(गाफ़्)

इन परिवर्तनों को करने के बाद अरबी वर्णमाला के फ़ारसी रूपांतर में वर्णों की संख्या ३२ (२४+८) हो गई। अरबी के समान ये भी सब व्यंजन ही रहे। यह स्मरण रखना चाहिए कि हिंदुस्तान में फ़ारसी भाषा तथा शब्द-समूह लगभग १००० से १६०० ईसवी के बीच में आया था अतः हिंदुस्तान की फ़ारसी भाषा तथा शब्द-समूह में कुछ पुरानापन है जो फ़ारस की आधुनिक फ़ारसी में नहीं पाया जाता। आधुनिक फ़ारसी और मध्यकालीन फ़ारसी के ध्वनिसमूह में विशेष अंतर नहीं है।

ग. उर्दू वर्णमाला

१५४. १२०० ईसवी के बाद जब मुसलमान विजेताओं के साथ-साथ अरबी और फ़ारसी भाषा तथा अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रचार हिंदुस्तान में हुआ तब हिंदुस्तानी भाषाओं के शब्दों को लिखने के लिए अरबी-फ़ारसी लिपि में फिर कुछ परिवर्तन करने पड़े। कुछ विशेष हिंदुस्तानी ध्वनियों को प्रकट करने के लिए तीन नए चिह्न बना कर बढ़ाए गए। ये चिह्न और ध्वनियां नीचे दी हैं—

नई ध्वनियां	नए चिह्न	
ट्	ٹ	(टे)
ड्	ڈ	(डाल्)
ड़्	ڑ	(ड़े)

इस तरह मूल अरबी लिपि के वर्तमान हिंदुस्तानी रूप में, जो साधारणतया उर्दू लिपि के नाम से पुकारी जाती है, वर्णों की संख्या ३५ (३२+३) है।

स्वरों का बोध कराने के लिए व्यंजनों के साथ नीचे लिखे चिह्नों तथा व्यंजनों का व्यवहार किया जाता है—

स्वर	चिह्नों के नाम	चिह्न	उदाहरण
अ	ज़बर्	َ	سَت (सत)
इ	.जेर्	ِ	سِت (सित)
उ	पेश्	ُ	سُت (सुत)
आ	अलिफ़+हम्ज़ा	ا	سات (सात)
ई	.जेर+इये	ِی	سِیت (सीत)
ए	इये	ی	سیت (सेत)
ऐ	ज़बर+इये	َی	سَیت (सैत)
ऊ	पेश+वाओ	ُو	سُوت (सूत)

ओ	वाओ	و	سوت	(सोत)
औ	ज़बर + वाओ	وَ	سَوت	(सौत)

नित्य-प्रति के लिखने में .जेर, ज़बर, पेश् प्रायः नहीं लगाए जाते, अतः तीन ह्रस्व स्वरों का भेद दिखलाया ही नहीं जाता तथा शेष सात दीर्घ स्वरों में आ के लिए 'अलिफ़' (ا), ई, ए, ऐ के लिए 'इये' (ی) तथा ऊ, ओ, औ के लिए 'वाओ' (و) का व्यवहार किया जाता है। मुड़िया के समान उर्दू लिपि के पढ़ने में सब से अधिक कठिनाई इसी कारण पड़ती है। साथ ही इन उर्दू मात्राओं के न लगाने से मुड़िया की तरह उर्दू लिपि भी देवनागरी की अपेक्षा कुछ अधिक तेज़ी से लिखी जा सकती है।[1]

---

[1] अरबी-फ़ारसी लिपि में तीन चिह्न बढ़ा लेने के बाद भी उर्दू लिपि समस्त हिंदी ध्वनियों को प्रकट करने में असमर्थ रही अतः संयुक्त चिह्नों से काम लिया जाने लगा। उदाहरण के लिए हिंदी की समस्त महाप्राण ध्वनियां रोमन अनुलिपि के समान अल्पप्राण चिह्न में ह् (ھ) लगा कर प्रकट की जाती हैं। ङ्, ञ् और ण् अनुनासिक व्यंजनों को प्रकट करने के लिए अब भी कोई चिह्न नहीं हैं। स्वरों के लिए भी विशेष चिह्नों का प्रयोग साधारणतया नहीं किया जाता।

हिंदी वर्णमाला की उर्दू अनुलिपि निम्नलिखित है—

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
	ا	ـِ	ـِی	و	وُ	ی	یَ	و	وَ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
ک	کھ	گ	گھ	×
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
چ	چھ	ج	جھ	×
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ٹ	ٹھ	ڈ	ڈھ	×
त्	थ्	द्	ध्	न्
ت	تھ	د	دھ	ن

१५५. नीचे के कोष्ठक में अरबी, फ़ारसी, तथा उर्दू वर्णमालाएं तुलनात्मक ढंग से दी गई हैं। साथ में देवनागरी के आधार पर बनाए गए लिपि-चिह्न तथा उर्दू वर्णमाला की देवनागरी अनुलिपि भी दी गई है—

अरबी		फ़ारसी		उर्दू		
अरबी लिपि-चिह्न	ध्वनि देवनागरी में	फ़ारसी लिपि-चिह्न	ध्वनि देवनागरी में	उर्दू लिपि-चिह्न	देवनागरी अनु-लिपि	ध्वनि देवनागरी में
أ	ʔ	أ	अ	أ	अ	अ
ب	ब्	ب	ब्	ب	ब्	ब्
×	×	پ	प्*	پ	प्	प्
ت	त्	ت	त्	ت	त	त्
×	×	×	×	ٹ§	ट्	ट्
ث	थ्	ث	स†	ث	स्	स्
ج	ज्	ج	ज्	ج	ज्	ज्
×	×	چ	च्*	چ	च्	च्

प् फ् ब् भ् म्

پ پھ ب بھ م

य् र् ल् व्

ي ر ل و

श् स् ह्

ش س ه या

ड़् ढ़्

ڑ ڑھ

ح	ह़्	ح	ह़्†	ح	ह़्	ह़्
خ	ख़्	خ	ख़्	خ	ख़्	ख़्
د	द्	د	द्	د	द्	द्
×	×	×	×	ڈ§	ड्	ड्
ذ	द़्	ذ	ज़् (द़्)	ذ	ज़्	ज़्
ر	र्	ر	र्	ر	र्	र्
×	×	×	×	ڑ§	ड़्	ड़्
ز	ज़्	ز	ज़्	ز	ज़्	ज़्
×	×	ژ	झ़्*	ژ	झ़्	झ़्
س	स्	س	स्	س	स्	स्
ش	श्	ش	श्	ش	श्	श्
ص	स़्	ص	स़्†	ص	स़्	स़्
ض	द़्	ض	ज़्†	ض	ज़्	ज़्
ط	त़्	ط	त़्†	ط	त़्	त़्
ظ	ज़्	ظ	ज़्†	ظ	ज़्	ज़्
ع	ॽ	ع	अ†	ع	अ़	अ
غ	ग़्	غ	ग़्	غ	ग़्	ग़्
ف	फ़्	ف	फ़्	ف	फ़्	फ़्
ق	क़्	ق	क़्†	ق	क़्	क़्
ک	क्	ک	क्	ک	क्	क्
×	×	گ	ग्*	گ	ग्	ग
ل	ल्	ل	ल्	ل	ल्	ल्

م	म्	م	म्	م	म्	म्
ن	न्	ن	न्	ن	न्	न्
و	व्	و	व्	و	व्	व्
ه	ह्	ه	ह्	ه	ह्	ह्
ی	य्	ی	य्	ی	य्	य्
२८		३२		३५		

सूचना—+ये चिह्न उन आठ वर्णों पर लगाए गए हैं जो अरबी के विशेष वर्ण होने के कारण फ़ारसी के मूल २४ पहलवी वर्ण-समूह में जोड़े गए थे जिस से फ़ारसी में व्यवहृत अरबी शब्द सुविधा से लिखे जा सकें। इन को छोड़ कर शेष २४ वर्ण फ़ारसी के अपने हैं। इन नए आठ वर्णों का प्रयोग केवल अरबी शब्दों में मिलता है।

* ये चिह्न फ़ारसी के उन चार विशेष वर्णों पर लगाए गए हैं जिन के लिए अरबी में ध्वनि-चिह्न मौजूद नहीं थे, न ये ध्वनियां ही अरबी में थीं। अतः फ़ारसी भाषा लिखने को प्रयुक्त होने पर मूल अरबी लिपि में इन के लिए चार नए चिह्न गढ़े गए थे।

§ ये चिह्न उन तीन वर्णों पर लगाए गए हैं जो हिंदुस्तानी भाषाओं की आवश्यकता के कारण अरबी-फ़ारसी लिपि में बढ़ाए गए थे।

फ़ारसी वर्णमाला के समान ही उर्दू वर्णमाला में भी अरबी के तत्सम शब्दों में अरबी वर्ण लिखे तो जाते हैं किंतु उन का उच्चारण हिंदुस्तानी मुसलमान भी साधारणतया अपनी ध्वनियों की तरह करते हैं। अतः लिखने में भिन्न चिह्नों का प्रयोग करने पर भी उच्चारण की दृष्टि से स़् (ث) स़् (ص) स् (س) का उच्चारण स् (س), त़् (ط) त् (ت) का उच्चारण त् (ت), ह़् (ح) ह् (ہ) का उच्चारण ह् (ہ), और ज़् (ذ) ज़् (ض) ज़् (ظ) ज़् (ز) का उच्चारण ज़्

(ز) के समान होता है। ९ (ع) का उच्चारण भी अ (ا) से भिन्न साधारणतया नहीं किया जाता।

घ. फ़ारसी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

१५६. ऊपर के विवेचन से यह कदाचित् स्पष्ट हो गया होगा कि हिंदी में अरबी तथा तुर्की शब्द भी फ़ारसी भाषा के द्वारा आए हैं अतः ऐसे शब्दों के साथ मूल अरबी या तुर्की ध्वनियां नहीं आ सकी हैं। फ़ारसी में आने पर अरबी और तुर्की शब्दों की ध्वनियों में जो परिवर्तन हो चुके थे उन्हीं परिवर्तित रूपों में ये शब्द साधारणतया हिंदी में पहुँचे हैं। व्यवहारिक दृष्टि से हिंदी के लिए ये शब्द अरबी या तुर्की भाषा के न होकर फ़ारसी भाषा के ही हैं।

फ़ारसी और हिंदी की अधिकांश ध्वनियों में समानता है, किन्तु फ़ारसी में कुछ ऐसी ध्वनियां हैं जो हिंदी में नहीं हैं। ये ध्वनियां फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों में सुनाई पड़ती हैं और इन के लिए देवनागरी में निम्नलिखित परिवर्तित लिपि-चिह्नों का प्रयोग होता आया है—क़् ख़् ग़् ज़् फ़्। इन में झ़् भी शामिल किया जा सकता है। श़् ध्वनि संस्कृत में पहले ही से मौजूद थी। फ़ारसी श़् तथा संस्कृत श़् में थोड़ा ही भेद है। साहित्यिक हिंदी में फ़ारसी-अरबी शब्दों की इन विशेष ध्वनियों का उच्चारण तथा लिखने में बराबर प्रयोग किया जाता है।

फ़ारसी तत्सम शब्दों से पूर्ण उर्दू भाषा के बोले जाने वाले या लिखे जाने वाले रूप से अधिक परिचित होने के कारण पश्चिमी संयुक्त प्रांत तथा दिल्ली प्रांत के रहने वाले हिंदी लेखक इन विदेशी ध्वनियों का व्यवहार बातचीत तथा लिखने दोनों में ही शुद्ध रीति से कर सकते हैं, और बराबर करते हैं। किंतु पूर्वी संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्यप्रांत, मध्यप्रदेश, राजस्थान, तथा कमायूं-गढ़वाल के प्रदेशों में रहनेवाले हिंदी बोलने वालों तथा हिंदी लेखकों को दिल्ली, आगरा, तथा लखनऊ के उर्दू केंद्रों से दूर रहने के कारण इन विदेशी

ध्वनियों के व्यवहार में कठिनाई पड़ती है और ये लोग इन ध्वनियों का व्यवहार प्रायः शुद्ध नहीं कर पाते। इसी कारण कभी-कभी इन विदेशी ध्वनियों तथा उन के लिए प्रयुक्त विशेष लिपि-चिह्नों के व्यवहार को साहित्यिक हिंदी से हटा देने का प्रस्ताव उठा करता है।

हिंदी के केंद्र संयुक्तप्रांत की विशेष परिस्थिति के कारण यहां के शिष्ट लोगों में *ज़रा* को *जरा*, *ग़रीब* को *गरीब*, *ख़राब* को *खराब* बोलना या लिखना ग्राम्य दोष समझा जाता है और कदाचित् भविष्य में भी अभी कुछ दिनों तक समझा जायगा। इस का मुख्य कारण संयुक्तप्रांत में उर्दू भाषा तथा मुसलमानी संस्कृति का प्रभाव ही है। इन दोनों प्रभावों के निकट भविष्य में पूर्णतया लुप्त होने की संभावना नहीं दिखलाई पड़ती। ऐसी परिस्थिति में इन विशेष ध्वनियों वाले फ़ारसी शब्दों को साहित्यिक हिंदी में निकटतम तत्सम रूपों में ही लिखना तथा बोलना अभी उचित प्रतीत होता है। उपर्युक्त प्रभावों से दूर होने के कारण बंगाली, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में फ़ारसी शब्दों की विशेष ध्वनियों के संबंध में 'इस तरह की कठिनाई नहीं उठती। इन भाषाओं के साहित्यिक रूपों में भी, हिंदी की ग्रामीण बोलियों के समान, ऐसी विशेष विदेशी ध्वनियों के स्थान पर भारतीय निकटवर्ती ध्वनियों का व्यवहार पढ़े-लिखे लोगों के बीच में पूर्ण स्वतंत्रता से होता आया है। परिस्थिति की विभिन्नता के कारण साहित्यिक हिंदी को इस बात में बंगाली आदि की नक़ल नहीं करनी चाहिए।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि लिखने में भेद करने पर भी बोलने में साधारणतया फ़ारसी में ही कई-कई ध्वनियों में साम्य हो गया था। उर्दू में भी इन विशेष वर्ण-समूहों में उच्चारण की दृष्टि से भेद नहीं किया जाता, अतः हिंदी में इन भिन्न वर्णों के लिए इकहरे वर्णों अर्थात् स्, ज़्, त्, अ तथा ह् का व्यवहार करना युक्ति-संगत ही है। साहित्यिक हिंदी में शिष्ट भाषा में ध्वनि-संबंधी इन मुख्य परिवर्तनों को करने के बाद फ़ारसी-अरबी शब्दों का

न्यूनाधिक व्यवहार बराबर पाया जाता है।

१५७. फ़ारसी-अरबी शब्दों के हिंदी में प्रयुक्त होने पर मुख्य-मुख्य परिवर्तनों का उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जाता है[1]—

स्वर

(१) फ़ारसी इ ई उ ऊ ए ओ ध्वनियां फ़ारसी और हिंदी में समान हैं अतः इन में साधारणतया कोई परिवर्तन नहीं होता—

	हि०	फ़ा०
इ :	*इनाम*	*इनाम्*
ई :	*ईमान*	*ईमान्*
उ :	*फ़ुरसत*	*फ़ुरसत्*
ऊ :	*क़ानून*	*क़ानून्*
ए :	*तेज़*	*तेज़्*
ओ :	*ज़ोर*	*ज़ोर्*

(२) फ़ारसी अ अग्र विवृत स्वर था, हिंदी में यह अर्द्धविवृत मध्य स्वर अ हो जाता है—

हि० *क़दम* फ़ा० *क़ॅदॅम्*

हि० *मसला* फ़ा० *मॅसॅलॅह्*

(३) फ़ारसी में ए ओ ध्वनियां हैं अवश्य किंतु उच्चारण में इन का झुकाव बराबर इ उ की तरफ़ रहता है। हिंदी में इन के स्थान पर बराबर इ उ ही मिलता है।

---

[1] चै., बे. लै., § ३१२-३५३

सकसेना, पर्शियन लोनवर्ड्स इन दि रामायन आव तुलसीदास, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, भाग १, पृ० ६३

(४) फ़ारसी संयुक्त स्वर अइ अउ हिंदी में क्रम से ऐ (अए) औ (अओ) हो जाते हैं—

फ़ा० अइ : हि० मैदान फ़ा० मइदान्

फ़ा० अउ : हि० मौसम फ़ा० मउसम्

(५) स्वरलोप तथा स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी बराबर पाए जाते हैं—

हिं०	फ़ा०
मसला	मसलह्
ज़्यादती	ज़ियादती
मामला	मुआमलह्
माफ़िक़	मुवाफ़िक़्

(६) स्वरागम के उदाहरण भी बराबर मिलते हैं—

हि०	फ़ा०
निरख	निर्ख्
शामियाना	शामानह्
हुकुम	हुक्म्

व्यंजन

(७) अरबी ह और ह़ फ़ारसी में ह परिवर्तित हो गए थे। में फ़ारसी ह़ के स्थान पर प्रायः ह हो जाता है—

हि०	फ़ा०
हवा	ह़वा
हुनर	ह़ुनर्
मुहर्रम	मुह़र्रम्

संयुक्त व्यंजनों के आने पर ह का या तो लोप हो जाता है में स्वर डाल दिया जाता है—

(४) फ़ारसी संयुक्त स्वर अइ अउ हिंदी में क्रम से ऐ (अए) औ (अओ) हो जाते हैं—

फ़ा० अइ :	हि० मैदान	फ़ा० मइदान्
फ़ा० अउ :	हि० मौसम	फ़ा० मउसम्

(५) स्वरलोप तथा स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी बराबर पाए जाते हैं—

हि०	फ़ा०
मसला	मसअलह्
ज़ात्ती	ज़ियादती
मामला	मुअामलह्
माफ़िक़	मुवाफ़िक्

(६) स्वरागम के उदाहरण भी बराबर मिलते हैं—

हि०	फ़ा०
निरख	निर्ख्
शामियाना	शामानह्
हुकुम	हुक्म्

व्यंजन

(७) अरबी ह और ह् फ़ारसी में ह् परिवर्तित हो गए थे। हिंदी में फ़ारसी ह् के स्थान पर प्रायः ह हो जाता है—

हि०	फ़ा०
हवा	हवा
हुनर	हुनर्
मुहर्रम	मुहर्रम्

संयुक्त व्यंजनों के आने पर ह् का या तो लोप हो जाता है या बीच में स्वर डाल दिया जाता है—

हि०	फ़ा०
मुहर	मुहर्
फ़ेरिस्त	फ़िह्‌रिस्त्

फ़ारसी शब्दों का 'हा—इ—मुख़्तफ़ी' अर्थात् उच्चरित न होने वाला अंत्य ह् पूर्व अ के साथ मिल कर हिंदी में आ में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	फ़ा०
किनारा	किनारह्
खज़ाना	खज़ानह्

(८) अरबी ॰ (ع) फ़ारसी में ॰ से मिलती-जुलती ध्वनि में परिवर्तित हो गया था। हिंदी में ॰ का लोप हो जाता है या इस के स्थान पर प्रायः आ हो जाता है—

हि०	फ़ा०
जमा	जम्॰
तावीज	त॰वीद
अजब	॰अजब्
अरब	॰अरब्

(९) फ़ारसी क् ग्; च् ज्; त् द्; प् ब्; ङ् न् म्; र् ल्, स्, य् हिंदी ध्वनियों के ही समान होने के कारण इन में साधारणतया परिवर्तन नहीं किए जाते—

हि०	फ़ा०
किताब	किताब्
गरम	गर्म्
चाकर	चाकर्
जमा	जम्॰

तख़्ता	तख़्तह्
दाग़	दाग़्
पीर	पीर्
बस्ता	बस्तह्
फ़िरंगी	फ़िरङ्गी
निमाज़	नमाज़्
मीनार	मीनार्
रास	रास्
लाल	लाऽल
सिपाही	सिपाही
याद	याद्

ऊपर के नियम के संबंध में कुछ अपवाद भी बराबर पाए जाते हैं।

(१०) फ़ारसी द् हिंदी में ज़् या द् में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	फ़ा०
काग़ज़, कागद (बो०)	काग़द
ख़िदमत, खिजमत (बो०)	ख़िद्मत्

(११) फ़ारसी के अंत्य न् के स्थान पर हिंदी में पिछला स्वर अनुनासिक कर दिया जाता है—

हि०	फ़ा०
ख़ाँ	ख़ान्
मियाँ	मियान्

(१२) व्यंजनों के संबंध में कुछ अन्य असाधारण परिवर्तनों के उदाहरण रोचक होंगे—

विपर्यय

हि०	फ़ा०
फलीता	फ़तीलह्
लहमा	लम्हह्
मुचलका	मुकल्चह्

लोप

हि०	फ़ा०
मज़दूर	मुज़्दूर्
मसीत (बो०)	मस्जिद्
ज़द	ज़िद्द्

(१३) हिंदी बोलियों में साधारणतया क़् ख़् ग़् ज़् फ़् श् और व् के स्थान पर क्रम से क् ख् ग् ज् फ् स् और ब् हो जाते हैं। उर्दू प्रभाव से दूर रहने वाले हिंदी लेखक या बोलने वाले साहित्यिक हिंदी में भी प्रयोग करते समय फ़ारसी-अरबी शब्दों में इस तरह के परिवर्तन कर देते हैं—

हि०	फ़ा०
कीमत	क़ीमत्
खबर	ख़बर्
गरीब	ग़रीब्
जालिम	ज़ालिम्
रजाई	रज़ाई
फारसी	फ़ारसी
निसान	निशान्
बिकालत	वकालत्

(१४) हिंदी बोलियों में कुछ असाधारण ध्वनि-परिवर्तन भी पाए जाते हैं—

फ़ा० क़् < हि० ग् : हि० तगादा फ़ा० तक़ादह्

हि० नगद फ़ा० नक़द्

आ. अंग्रेज़ी

१५८. लगभग १६०० ईसवी से भारत में यूरोपीय लोगों का आना-जाना प्रारंभ हुआ था और तभी से कुछ यूरोपीय शब्दों का व्यवहार भारत में होने लगा था। किंतु अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना हिंदी प्रदेश में लगभग १८०० ईसवी में हुई थी, और तब से अंग्रेजी सभ्यता और भाषा तथा ईसाई धर्म की गहरी छाप हिंदी भाषियों पर पड़ना प्रारंभ हुई। दक्षिण भारत तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशों की तरह हिंदी प्रदेश फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि जातियों के विशेष संपर्क में कभी नहीं आया। हिंदी में थोड़े से फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द[1] आ गए हैं, किंतु इन की संख्या अत्यंत परिमित है। हिंदी की अपेक्षा बंगाली[2] आदि में इन की संख्या कहीं अधिक है। यूरोपीय भाषाओं में से अंग्रेज़ी भाषा के शब्द हिंदी में सब से अधिक संख्या में आए हैं, और यह स्वाभाविक ही है।

क. अंग्रेज़ी ध्वनि-समूह

१५९. अंग्रेज़ी में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि संक्षेप में अंग्रेज़ी ध्वनियों को समझ लिया जाय। अंग्रेज़ी ध्वनियों का वर्गीकरण[3] निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है—

---

[1] दे., भूमिका, 'विदेशी भाषाओं के शब्द'।

[2] बंगाली में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों के संबंध में दे., चै., बे. लै., अ० ७

[3] वा. फ्रो, इं., § ९२, § ९६, § २१४

व्यंजन

	ओष्ठ्य		दंत्य		तालव्य			
	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंत्य	वर्त्स्य	तालव्य-वर्त्स्य	तालव्य	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	प् ब्			ट् ड्			क् ग्	
स्पर्शसंघर्षी					च् ज्			
अनुनासिक	म्			न्			ङ्	
पार्श्विक				ल्			ल़्	
लुंठित				र्				
संघर्षी		फ़् व़्	थ़् द़्	स् ज़्	श् ष़्			ह्
अर्द्धस्वर	व़्					य्	(व़्)	

मूलस्वर

संयुक्तस्वर

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
एइ	ओउ	अइ	अउ	ऑइ	इअ	ऍअ	ऑअ	उअ

सूचना—अंग्रेज़ी स्पर्श प् ब्, क् ग् के उच्चारण में स्वराघात-युक्त शब्दांश में कुछ हकार की ध्वनि आ जाती है[1] किंत यह हकार का अंश इतना कम होता है कि लिखने में नहीं दिखाया जाता और इस कारण ये अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हिंदी के महाप्राण स्पर्श व्यंजनों (फ् भ्, ख् घ्) के समान नहीं हो जाते।

वाक्य में ज़ोर देने के लिए तथा कुछ अन्य स्थलों पर भी अंग्रेज़ी के कुछ शब्दों में स्वरयंत्रमुखी स्पर्श[2] (अलिफ़ हम्ज़ा) की ध्वनि सुनाई पड़ती है किंतु इस की गणना साधारणतया अंग्रेज़ी मूलध्वनियों में नहीं की जाती।

ख. अंग्रेज़ी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

मूलस्वर

१६०. अंग्रेज़ी और हिंदी की अधिकांश ध्वनियां समान हैं, किंतु अंग्रेज़ी में कुछ नवीन ध्वनियां भी हैं। अंग्रेज़ी शब्दों के उच्चारण में इन नवीन ध्वनियों के संबंध में ही हिंदी-भाषियों को कठिनाई पड़ती है।

अंग्रेज़ी मूलस्वरों में ई *(सी : see)*, इ *(सिट् : sit)*, आ, *(काम् : calm)*, उ *(पुट् : Put)*, ऊ *(सून् : soon)* तथा अ *(बट् : but)* हिंदी मूलस्वरों से विशेष भिन्न नहीं हैं, अतः इन अंग्रेज़ी स्वरों का उच्चारण हिंदी भाषी शुद्ध कर लेते हैं। शेष छः मूलस्वर हिंदी में नहीं पाए जाते, अतः इन का स्थान कोई न कोई हिंदी स्वर ले लेता है।

ऍ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्रस्वर है किंतु इस का उच्चारण प्रधान स्वर ए की अपेक्षा काफ़ी ऊपर की तरफ़ होता है। हिंदी में इस अंग्रेज़ी स्वर के स्थान पर इ या ए हो जाता है।

---

[1] वा., फ़ो. इं., § २१८

[2] वा., फ़ो. इं., § २२७ (सी)

हि०	अं०
कालिज, कालेज	कॉलेंज् (college)
बिंच, बेंच	बॅन्च् (bench)

ऍ : यह भी अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्रस्वर है, किंतु इस का उच्चारण प्रधान स्वर ऍ से बहुत नीचे की तरफ़ और प्रधान स्वर अ के निकट होता है। हिंदी में यह प्रायः ऐ (अए) में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
मैन	मॅन् (man)
गैस	गॅस् (gas)

ऑ : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्चस्वर है किंतु इस का स्थान प्रधान स्वर *आ* की अपेक्षा कुछ ही ऊपर की तरफ़ है। हिंदी में यह प्रायः *आ* में परिवर्तित हो जाता है—

हि०	अं०
चाक	चॅक् (chalk)
आफिस	ऑफ़िस् (office)

ऑ : यह अर्द्धविवृत दीर्घ पश्चस्वर है किंतु इस का उच्चारणस्थान प्रधान स्वर ऑ की अपेक्षा नीचे की तरफ़ होता है। हिंदी में इस के स्थान में भी प्रायः *आ* हो जाता है। अब कुछ दिनों से ऑ, तथा *आ* दोनों के लिये *ऑ* लिखने का रिवाज हो रहा है—

हि०	अं०
ला, लॉ	लॉ (law)
बाट, बॉट	बॉट (bought)

ऍ : यह अर्द्धविवृत दीर्घ मध्यस्वर है किंतु इस का स्थान कुछ ऊपर की तरफ़ हटा है। हिंदी में इस के स्थान पर प्रायः अ हो जाता है।

हि०	अं०
बर्ड	बॅड् (bird)
लर्न	लॅन् (learn)

अं : यह अर्द्धविवृत ह्रस्व मध्यस्वर है। हिंदी में इस के स्थान पर प्रायः अ हो जाता है—

अलोन	अलोउन (alone)
बटर	बटॅ (butter)

संयुक्त स्वर

१६१. अंग्रेज़ी के ढंग के संयुक्तस्वरों का व्यवहार हिंदी में नहीं है अतः इन के स्थान पर प्रायः दीर्घ मूल स्वर या हिंदी के संयुक्त स्वर हो जाते हैं। कुछ में असाधारण संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग भी करना पड़ता है—

	हि०	अं०
अं० एइ > हि० ए :	मेल	मेइल् (mail)
	जेल	जेइल् (jail)
अं० ओउ > हि० ओ, अ :	बोट	बोउट् (boat)
	कोट	कोउट् (coat)
	रपट, रिपोट	रिपोउट् (report)
अं० अइ > हि० ऐ (अए) आइ, ए :	टैम, टाइम, टेम	टइम् (time)
	टाइप, टैप	टइप् (type)
अं० अउ > हि० औ (अओ) आउ :	टॉन, टाउन	टउन् (town)
	कौन्सिल, काउन्सिल	कउन्सिल् (council)

अं० ऑइ > हि० वाय, वाय ऐ (अए) :	ब्वाय	बॉइ	(boy)
	न्वाइज़्	नॉइज़्	(noise)
	ऐन्टमेन्ट	ऑइन्ट्मेन्ट्	(ointment)
अं० इअं > हि० इआ, इअ, ए :	**इन्डिआ**	**इन्डिअ**	(India)
	बिअर	**बिअं**	(beer)
	एरन्	इअं-रिङ्	(earring)
अं० एअं > हि० एअ, ए :	शेअर, शेर	शेंअं	(share)
	चेअर, चेर	चेंअं	(chair)
अं० ऑअं > हि० ओ :	**मोर**	**मॉअं**	**(more)**
	बोर्ड	**बॉअड्**	**(board)**
अं० उअं > हि० यो :	प्योर	पुअं	(pure)
	योर	युअं	(your)

१६२. हिंदी में व्यवहृत अंग्रेज़ी शब्दों में स्वरागम के बहुत उदाहरण मिलते हैं। स्वरलोप के उदाहरण बहुत कम पाए जाते हैं। स्वरागम के उदाहरण शब्द के आदि में संयुक्त व्यंजन के पूर्व में मिलते हैं या संयुक्त व्यंजन के टूटने पर मध्य में मिलते हैं, जैसे *इस्टाम* (stamp), *इस्कूल* (school), *फ़ारम* (form), *बुरुश* (brush), *बिरांडी* (brandy)

व्यंजन

१६३. अंग्रेज़ी व्यंजनों में से कुछ हिंदी में नहीं पाए जाते अतः ये हिंदी की निकटतम ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी असाधारण ध्वनियों का विवेचन हिंदी में पाए जाने वाले परिवर्तनों सहित नीचे दिया जा रहा है—

ट़् ड़् : अंग्रेज़ी ट़् ड़् न तो हिंदी के ट् ड् के समान मूर्द्धन्य हैं और न त् द् के समान दंत्य हैं। ये वास्तव में वर्त्स्य हैं अर्थात् जीभ की नोक को दाँतों के ऊपर मसूढ़ों पर लगा कर इन का उच्चारण किया जाता है। वर्त्स्य ट़् ड़् के अभाव के कारण हिंदी में ये ध्वनियाँ क्रम से ट् या त् और ड् या द् में परिवर्तित हो जाती हैं—

अं० ट़् > हि० ट् : रपट (report), बालस्टर (barrister)

अं० ट़् > हि० त् : अगस्त (August), सिकत्तर (secretary)

अं० ड़् > हि० ड् : डिकस (desk), डबल मार्च (double march)

अं० ड़् > हि० द् : दिसंबर (December), अर्दली (orderly)

च़् ज़् : अंग्रेज़ी च़् ज़् का उच्चारण हिंदी की तालव्य स्पर्श-संघर्षी च् ज् ध्वनियों से भिन्न है। अंग्रेज़ी ध्वनियों का उच्चारण कुछ-कुछ ट़्श़् ड़्ज़् की तरह होता है। हिंदी में इन के स्थान पर क्रम से च् ज् हो जाता है—

अं० च़् > हि० च् : चेयर (chair), चेन (chain)

अं० ज़् > हि० ज् : जज (judge) जेल (jail)

च़् ज़् के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में कुछ अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ[1] भी पाई जाती हैं, किंतु इन का व्यवहार च़् ज़् की अपेक्षा कम मिलता है। ये ध्वनियाँ मूल व्यंजनों की अपेक्षा संयुक्त व्यंजनों के अधिक समान मालूम पड़ती

---

[1] बा., फो. ई., § २३१

हैं अतः साधारणतया इन्हें अंग्रेज़ी मूल व्यंजन-ध्वनियों में नहीं सम्मिलित किया जाता। ये अन्य स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ उदाहरण सहित नीचे दी जाती हैं—

ट्थ् :	एइट्थ्	(eighth)
ड्थ् :	विड्थ्	(width)
ट्स् :	ईट्स्	(eats)
ड्ज़् :	बेड्ज़्	(beds)

ट्र् और ड्र् को भी कभी-कभी इसी श्रेणी में रख लिया जाता है, जैसे ट्री (tree) ड्रॅ (draw)।

अंग्रेज़ी अनुनासिक व्यंजन म्, न्, ङ्, का उच्चारण हिंदी के इन अनुनासिक व्यंजनों के समान होता है अतः अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में इन के आने पर हिंदी में साधारणतया किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

ल् : स्वर के पहले अंग्रेज़ी ल् का उच्चारण हिंदी ल् के समान ही होता है। इसे 'स्पष्ट ल्' कह सकते हैं। किंतु व्यंजन के पहले या शब्द के अंत में ल् का उच्चारण भिन्न ढंग से होता है जिस में जीभ की नोक से वर्त्स्य स्थान को छूने के साथ-साथ जीभ के पिछले हिस्से को कोमल तालु की ओर ऊपर उठा देते हैं, जिस से जीभ मध्यभाग में कुछ झुक जाती है। इसे 'अस्पष्ट ल्'[1] कहते हैं। देवनागरी में इसे ल़् से प्रकट किया गया है। हिंदी में अंग्रेज़ी की इन दोनों ल् ध्वनियों में भेद नहीं किया जाता और ल़् का उच्चारण भी ल् के समान ही किया जाता है, जैसे *बोतल* (bottle) पेट्रोल (petrol)।

ल् के समान अंग्रेज़ी में र् के भी दो रूप पाए जाते हैं—एक लुंठित और दूसरा संघर्षी। संघर्षी र्[2] को देवनागरी में .र् से प्रकट

---

[1] वा., फ़ो. इं., § २४०

[2] वा., फ़ो. इं., § २४८

कर सकते हैं। संघर्षी र् प्रायः शब्द के आरंभ में पाया जाता है। यह भेद इतना सूक्ष्म है कि इस पर यहां अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

संघर्षी ध्वनियों में .थ् .द् हिंदी के लिए नई ध्वनियाँ हैं। .थ् .द् दंत्य संघर्षी हैं। हिंदी में ये थ् द् अर्थात् दंत्य स्पर्श ध्वनियों में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे थर्ड (third) थर्मामेटर (thermometre)। कुछ शब्दों में अं० .थ् हिं० ट् या ठ् में भी परिवर्तित हो जाता है, जैसे ठेठर (theatre), लंकलाट (longcloth)।

अंग्रेज़ी संघर्षी ध्वनियों में से .फ् व् .ज् और श् से हिंदीभाषाभाषी संस्कृत या फ़ारसी प्रभाव के कारण परिचित थे अतः पढ़े-लिखे लोग इन का उच्चारण शुद्ध कर लेते हैं। गाँव के लोग बोली में इन ध्वनियों को क्रम से प् ब् ज् और स् में परिवर्तित कर देते हैं, जैसे फुटबाल (football), बोट (vote), सिलिङ् (shilling)। अंग्रेज़ी ह् का उच्चारण हिंदी ह् के समान है।

.झ् का प्रयोग हिंदी में प्रचलित बहुत कम अंग्रेज़ी शब्दों में पाया जाता है। यह साधारणतया .ज् में परिवर्तित कर दिया जाता है, जैसे प्लेज़र (pleasure)।

अंग्रेजी ओष्ठ्य अर्द्धस्वर .व् के स्थान पर हिंदी में प्रायः दंत्योष्ठ्य संघर्षी व् या ओष्ठ्य स्पर्श ब् हो जाता है, जैसे बास्कट (waistcoat) वेटिङ् रूम (waiting room)।

अंग्रेज़ी और हिंदी य् के उच्चारण में कोई भेद नहीं है।

१६४. अंग्रेज़ी में नई ध्वनियाँ होने के कारण ऊपर दिये हुए अनिवार्य परिवर्तनों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी विदेशी शब्दों में कुछ असाधारण ध्वनि-परिवर्तन भी पाए जाते हैं। ये उदाहरण सहित नीचे दिए जाते हैं —

(१) अनुरूपता : *कलट्टर* (collector)

(२) विपर्यय : *सिंगल* (signal), *डिकस* (desk)

(३) व्यंजन-लोप : *बास्कट* (waistcoat)

(४) व्यंजनागम : *मोटर* (मोउटं motor)

(५) वर्ग की घोष ध्वनि का अघोष तथा अघोष ध्वनि का घोष में परिवर्तित होना : *काग* (cork), *डिगरी* (decree), *लाट* (lord) ।

(६) न् का ल् में परिवर्तन : *लंबर* (number), *लमनेट* (lemonade) ।

अध्याय ४

स्वराघात

१६५. स्वराघात दो प्रकार का होता है। एक स्वराघात तो वह है जिस में आवाज़ का सुर ऊँचा या नीचा किया जाता है। इस को *गीतात्मक स्वराघात* कहते हैं। यह स्वराघात उसी प्रकार का है जैसा हम गाने में पाते हैं और इस का संबंध स्वरतंत्रियों के ढीला करने या तानने से है। दूसरे ढंग का स्वराघात वह है जिस में आवाज़ ऊँची-नीची नहीं की जाती बल्कि साँस को धक्के के साथ छोड़ कर ज़ोर दिया जाता है। इसे *बलात्मक स्वराघात* कहते हैं। इस का संबंध नादतंत्रियों से न होकर फेफड़े से हवा फेकने के ढंग पर होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि बलात्मक स्वराघात और दीर्घस्वर, तथा कभी-कभी गीतात्मक स्वराघात के भी, एक ही ध्वनि में पाए जाने के कारण इन सब में भेद करने में कठिनाई हो जाती है।

अ. भारतीय आर्यभाषाओं के स्वराघात का इतिहास

क. वैदिक स्वराघात

१६६. स्वराघात की दृष्टि से प्रा० भा० आ० भाषा की विशेषता यह है कि वह गीतात्मक स्वराघात-प्रधान भाषा है। वैदिक साहित्य में प्रत्येक शब्द के ऊपर-नीचे जो चिह्न रहते हैं वे इसी स्वराघात के सूचक हैं। गीतात्मक स्वराघात में तीन भेद हैं जिन्हें पारिभाषिक शब्दों में उदात्त अर्थात् ऊँचा

सुर; अनुदात्त अर्थात् नीचा सुर और स्वस्ति अर्थात् बीच का सुर कहते हैं।

वैदिक साहित्य में गीतात्मक स्वराघात प्रकट करने के चार भिन्न ढंग प्रचलित हैं। सामवेद को छोड़ कर ऋग्वेदादि अन्य तीनों वेदों की प्रचलित संहिताओं में उदात्त-स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। कदाचित् इस का कारण यह है कि प्रातिशाख्यों के अनुसार स्वरित का पूर्व भाग उदात्त से भी ऊँचा बोला जाता था, अतः सुर की दृष्टि से उदात्त और स्वरित में वास्तव में स्थान-परिवर्तन हो गया था। स्वरित-स्वर के ऊपर खड़ी लकीर और अनुदात्त-स्वर के नीचे बेड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे *अ॒ग्निना॑* शब्द में अ अनुदात्त, *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। पाद के आरंभ में आने वाले समस्त उदात्त चिह्न-हीन छोड़ दिए जाते हैं तथा प्रत्येक अनुदात्त चिह्नित रहता है, किंतु स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों में केवल अंतिम अनुदात्त को चिह्नित किया जाता है। जैसे *इ॒मं मे॑ गङ्गे यमुने सरस्वति शुतु॒द्रि* में *म॒* उदात्त है किंतु *गङ्गे यमुने सरस्वति* के समस्त स्वर अनुदात्त हैं, *शु* फिर उदात्त और *द्रि* अनुदात्त है। स्वराघात के चिह्नों की दृष्टि से प्रत्येक पाद पूर्ण माना जाता है। पद पाठ में प्रत्येक शब्द पृथक् तथा पूर्ण माना जाता है।

ऋग्वेद की मैत्रायणी और काठक संहिताओं में स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी लकीर न कर के उदात्त स्वर के ऊपर खड़ी लकीर की जाती है। जैसे इन संहिताओं में *अ॒ग्नि॑ना* में *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। अनुदात्त का चिह्न ऋग्वेदादि संहिताओं के समान ही है, किंतु स्वरित का चिह्न दोनों संहिताओं में कुछ भिन्न ढंग से लगाया जाता है। सामवेद में उदात्त, स्वरित और अनुदात्त स्वरों के ऊपर क्रम से १,२,३ के अंक बनाए जाते हैं, जैसे *अ॒ग्निना* (३ १ २)। शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्त चिह्नित किया जाता है, और इस के लिए स्वर के नीचे अनुदात्त वाली आड़ी लकीर का व्यवहार होता है, जैसे *अग्नि॒ना*। साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है, और इस में उदात्त सुर प्रधान है।

सुर, अनुदात्त अर्थात् नीचा सुर और स्वस्ति अर्थात् बीच का सुर कहते हैं।

वैदिक साहित्य में गीतात्मक स्वराघात प्रकट करने के चार भिन्न ढंग प्रचलित हैं। सामवेद को छोड़ कर ऋग्वेदादि अन्य तीनों वेदों की प्रचलित संहिताओं में उदात्त-स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। कदाचित् इस का कारण यह है कि प्रातिशाख्यों के अनुसार स्वरित का पूर्व भाग उदात्त से भी ऊँचा बोला जाता था, अतः सुर की दृष्टि से उदात्त और स्वरित में वास्तव में स्थान-परिवर्तन हो गया था। स्वरित-स्वर के ऊपर खड़ी लकीर और अनुदात्त-स्वर के नीचे बेड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे *अ॒ग्निना॑* शब्द में *अ* अनुदात्त, *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। पाद के आरंभ में आने वाले समस्त उदात्त चिह्न-हीन छोड़ दिए जाते हैं तथा प्रत्येक अनुदात्त चिह्नित रहता है, किंतु स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों में केवल अंतिम अनुदात्त को चिह्नित किया जाता है। जैसे *इ॒मं मे॑ गङ्गे यमुने सरस्वति शुतु॑द्रि मे म॒* उदात्त है किंतु *गङ्गे यमुने सरस्वति* के समस्त स्वर अनुदात्त हैं, शु फिर उदात्त और द्रि अनुदात्त है। स्वराघात के चिह्नों की दृष्टि से प्रत्येक पाद पूर्ण माना जाता है। पद पाठ में प्रत्येक शब्द पृथक् तथा पूर्ण माना जाता है।

ऋग्वेद की मैत्रायणी और काठक संहिताओं में स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी लकीर न कर के उदात्त स्वर के ऊपर खड़ी लकीर की जाती है। जैसे इन संहिताओं में *अ॒ग्नि॑ना* में *ग्नि* उदात्त और *ना* स्वरित है। अनुदात्त का चिह्न ऋग्वेदादि संहिताओं के समान ही है, किंतु स्वरित का चिह्न दोनों संहिताओं में कुछ भिन्न ढंग से लगाया जाता है। सामवेद में उदात्त, स्वरित और अनुदात्त स्वरों के ऊपर क्रम से १,२,३ के अंक बनाए जाते हैं, जैसे *अ॒ग्नि॒ना* (३ १ २)। शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्त चिह्नित किया जाता है, और इस के लिए स्वर के नीचे अनुदात्त वाली आड़ी लकीर का व्यवहार होता है, जैसे *अग्नि॒ना*। साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है, और इस में उदात्त सुर प्रधान है।

इस बात के चिह्न मिलते हैं कि प्रा० भा० आ० काल में गीतात्मक स्वराघात के साथ कदाचित् बलात्मक स्वराघात भी वर्तमान था, यद्यपि यह प्रधान नहीं था अतः चिह्नित भी नहीं किया जाता था।

ख. प्राकृत तथा आधुनिक काल में स्वराघात[1]

१६७. कुछ यूरोपीय विद्वानों की धारणा है कि म० भा० आ० के आदिकाल में ही भारतीय आर्यभाषाओं में बलात्मक स्वराघात पूर्ण रूप से विकसित हो गया था, और गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता नष्ट हो गई थी। यह बलात्मक स्वराघात शब्दांत के पूर्व प्रथम दीर्घ स्वर पर प्रायः रहता था[1]। संस्कृत श्लोकों के पढ़ने में अब तक इस ढंग का स्वराघात चला जा रहा है।

म० भा० आ० काल में स्वराघात की दृष्टि से प्राकृतों के दो विभाग किए जाते हैं। एक तो वे जो किसी न किसी रूप में वैदिक गीतात्मक स्वराघात को अपनाए रहीं। इस श्रेणी में महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी, जैन-मागधी, काव्य की अपभ्रंश, तथा काव्य की जैन-शौरसेनी रक्खी जाती हैं। इस से भिन्न शौरसेनी, मागधी तथा ढक्की (पंजाबी) प्राकृतों में संस्कृत के बलात्मक स्वराघात का विकसित रूप वर्तमान था ऐसा माना जाता है। प्रोफ़ेसर टर्नर आ० भा० आ० भाषाओं में भी म० भा० आ० काल के इस दोहरे स्वराघात के चिह्न पाते हैं, और वे मराठी को पहली श्रेणी में तथा गुजराती को दूसरी श्रेणी में रखते हैं। ग्रियर्सन आदि विद्वानों का एक मंडल म० भा० आ० तथा आ० भा० आ० भाषाओं में केवल बलात्मक स्वराघात के चिह्न पाता है, तथा प्रोफ़ेसर ब्लाक को इन दोनों कालों में बलात्मक स्वराघात के भी पाए जाने के बारे में संदेह है। प्रा० भा० आ० काल के बाद लिखने में स्वराघात चिह्नित करने का रिवाज उठ गया था, इस लिए बाद के कालों के स्वरघत की

---

[1] इस अंश की सामग्री का मुख्य आधार चै., बे. लै., § १४२ है।

स्थिति के संबंध में कोई भी मत विशेषतया अनुमान के आधार पर ही बनाया जा सकता है, अतः इस विषय पर मतभेद और संदेह का होना स्वाभाविक है।

हिंदी में स्वराघात

१६८. वैदिक भाषा के समान हिंदी में गीतात्मक स्वराघात शब्दों में नहीं पाया जाता। वाक्यों में इस का थोड़ा-बहुत प्रयोग अवश्य होता है जैसे प्रश्नवाचक वाक्य *क्या तुम घर जाओगे?* में *जाओगे* का उच्चारण कुछ ऊँचे सुर से होता है।

हिंदी शब्दों में बलात्मक स्वराघात अवश्य पाया जाता है, किंतु वह अंग्रेज़ी के इस प्रकार के स्वराघात के सदृश प्रत्येक शब्द में निश्चित नहीं है। इस के अतिरिक्त हिंदी में प्रायः दीर्घ स्वर पर स्वराघात होने के कारण दोनों में भेद करना साधारणतया कठिन हो जाता है। आधुनिक हिंदी शब्दों में स्वर लोप तथा ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद दिखलाना बहुत आवश्यक है। स्वराघात का भेद उतना स्पष्ट नहीं है।

हिंदी स्वराघात के संबंध में गुरु के हिंदी व्याकरण[1] में कुछ नियम दिए हैं जिन का सार नीचे दिया जाता है। नीचे दिए हुए समस्त उदाहरणों में साधारणतया उपांत्य स्वर पर स्वराघात पाया जाता है, अतः ये समस्त नियम इस एक नियम के अंतर्गत आ सकते हैं।

(१) यदि शब्द या शब्दांश के अंत में रहने वाले अ का लोप हो कर शब्द या शब्दांश उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनांत हो जाता है तो उपांत्य स्वर पर ज़ोर पड़ता है जैसे, *सब*, *आदमी*, *कमल*।

---

[1] गु., हि. व्या., § ५६

(२) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती स्वर पर ज़ोर पड़ता है जैसे, *चंन्दा*, *लंज्जा*, *विंद्या*।

(३) विसर्ग-युक्त स्वर का उच्चारण कुछ ज़ोर से होता है, जैसे *प्रायः*, *अन्तःकरण*।

(४) प्रेरणार्थक धातुओं में आ पर स्वराघात होता है जैसे *करांना*, *बुलांना*, *चुरांना*।

(५) यदि शब्द के एक ही रूप के कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अंतर केवल स्वराघात से जाना जाता है, जैसे *की* (संबंध-कारक चिह्न) और *की* (क्रिया) में दूसरी *की* का उच्चारण अधिक ज़ोर दे कर किया जाता है।

१६६. हिंदी के कुछ मात्रिक और वर्णिक छंदों का मूलाधार स्वरों की संख्या या मात्राकाल न हो कर वास्तव में बलात्मक स्वराघात ही है। यदि स्वरों के मात्राकाल के अनुसार ये मात्रिक तथा वर्णिक छंद चलते होते तो ह्रस्व स्वर सदा एक मात्रा तथा दीर्घ स्वर सदा दो मात्राकाल का माना जाता, किंतु हिंदी के इन छंदों में बराबर ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिन में स्वरों की मात्राओं में उच्चारण की दृष्टि से परिवर्तन कर लिया जाता है।

उदाहरण के लिए सवैया छंद में गणों का क्रम तथा वर्ण-संख्या बँधी हुई है। प्रत्येक पाद की वर्ण-संख्या में तो कोई गड़बड़ नहीं होता किंतु गणों के अंदर वास्तव में स्वर की ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं का ध्यान नहीं रक्खा जाता, जैसे *अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे* इस पाद में के रे रे कै मात्रा के हिसाब से दीर्घ हैं किंतु छंद की दृष्टि से इन्हें ह्रस्व मानना पड़ता है। वास्तव में इस सवैया के अंदर संस्कृत के समान गण का क्रम न हो कर प्रत्येक दो वर्ण के बाद बलात्मक स्वराघात है। स्वराघात की दृष्टि से इस पंक्ति को हम यों लिख सकते हैं—*अवधे'स के द्वा'रे सका'रे गई' सुत गो'द कै भू'पति लै' निकसे'*। इस कारण जिन वर्णों पर

बलात्मक स्वराघात नहीं है वे चाहे ह्रस्व हों या दीर्घ किंतु वे स्वराघात-हीन होने के कारण ह्रस्व के निकट हो जाते हैं। स्वराघात वाले स्वर अवश्य दीर्घ होने चाहिए।

कवित्त या घनाक्षरी छंद में भी वर्णों की निर्धारित संख्या के अतिरिक्त पाद के अंदर बलात्मक स्वराघात का क्रम रहता है।

१७०. अवधी[1] के स्वराघात का अध्ययन सकसेना ने किया है। अवधी में भी बलात्मक स्वराघात पाया जाता है। इस संबंध में सकसेना के अध्ययन का सार नीचे दिया जाता है।

एकाक्षरी शब्दों में स्वराघात केवल तब पाया जाता है जब उन का व्यवहार वाक्य में हो। दो अक्षर, तीन अक्षर तथा अधिक अक्षर वाले शब्दों में अंत के दो अक्षरों में से उस पर स्वराघात होता है जो दीर्घ हो या स्थान के कारण दीर्घ माना जाय, यदि दोनों दीर्घ या ह्रस्व हों तो स्वराघात उपांत्य अक्षर पर होता है। इन के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

दो अक्षर वाले शब्द :

पि-सा'न्, प-चीं'स्, बां'-इस्, बं'-हिन्इ़, नां'-रा।

तीन अक्षर वाले शब्द :

भा'-पं-इ, अ-ढा'-ई, सो-वां'-इस्इ़।

चार अक्षर वाले शब्द :

क-रि-हां'-उ, क-चे-ह-री'।

---

[1] सक., ए. अ., भा. १, अ. ५

अध्याय ५

रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय

१७१. संस्कृत संज्ञा प्रायः तीन अंशों से मिल कर बनती है—धातु, प्रत्यय तथा कारक-चिह्न[1]। धातु और प्रत्यय से मिल कर मूल शब्द बनता है और फिर उस में आवश्यकतानुसार कारक-चिह्न लगाए जाते हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं की संज्ञाओं में संस्कृत कारक-चिह्न प्रायः लुप्त हो गए हैं। आधुनिक भाषाओं में कारक-रचना का सिद्धांत ही भिन्न हो गया है। इस का विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा। इस अध्याय में हिंदी रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्ययों के संबंध में विचार करना है।

संस्कृत के बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्ग आधुनिक भाषाओं में आते-आते नष्टप्राय हो गए हैं, किंतु अब भी कुछ ऐसे हैं जो थोड़े या अधिक परिवर्तनों के साथ आधुनिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। कुछ काल से हिंदी में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग विशेष बढ़ गया है, अतः इन शब्दों के साथ बहुत से प्रत्यय तथा उपसर्गों का तत्सम रूपों में फिर से व्यवहार होने लगा है। नीचे तत्सम, तद्भव और विदेशी प्रत्यय तथा उपसर्गों का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है।

---

[1]बी., क. ग्रै., भा. २, § १

अ. उपसर्ग[1]

क. तत्सम उपसर्ग तथा अव्ययादि

१७२. ऊपर बतलाया जा चुका है कि तत्सम शब्दों के साथ बहुत से संस्कृत उपसर्गों का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में होने लगा है। इन्हें अभी हिंदी के उपसर्ग नहीं माना जा सकता क्योंकि ये अभी हिंदी भाषा की ऐसी संपत्ति नहीं हो पाए हैं कि जो तद्भव, विदेशी, या देशी शब्दों में स्वतंत्रता-पूर्वक लगाए जा सकें। पं० कामताप्रसाद गुरु ने हिंदी व्याकरण[2] में ऐसे तत्सम उपसर्गों तथा उपसर्गों के समान व्यवहृत संस्कृत विशेषण तथा अव्ययों की एक पूर्ण सूची दी है। उपसर्गों के इतिहास की दृष्टि से इन तत्सम उपसर्गों में कोई विशेषता नहीं दिखलाई जा सकती, अतः अनावश्यक समझ कर इन्हें यहां नहीं दिया गया है।

ख. तद्भव उपसर्ग[3]

१७३. प्रचलित तद्भव उपसर्ग व्युत्पत्ति सहित नीचे दिए जा रहे हैं—

अ < सं० अ : यह संस्कृत उपसर्ग है किंतु तद्भव शब्दों में भी इस का स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयोग होता है, जैसे, *अथाह*, *अजान*। संस्कृत में स्वर से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व अ के स्थान पर अन् हो जाता है जैसे, अनेक।

---

[1] उपसर्ग उस अक्षर या अक्षर-समूह को कहते हैं जो शब्दरचना के निमित्त शब्द के पहले लगाया जाता है, जैसे 'रूप' शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगाकर 'अनुरूप' शब्द की रचना हो जाती है।

[2] गु., हि. व्या., § ४३४, § ४३५ (क)

[3] गु., हि. व्या., § ४३५ (क)

हिंदी में व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व भी अ के स्थान पर अन मिलता है जैसे, अनमोल, अनगिनती।

अध < सं० अर्द्ध	:	आधा,	अधबिच,	अधकचरा
उन < सं० ऊन	:	एक कम,	उन्नीस,	उन्तीस
औ < सं० अव	:	हीन,	औघट,	औगुन
दु < सं० दुर्	:	बुरा,	दुबला,	दुकाल
दु < सं० द्वौ	:	दो,	दुधारा,	दुमुहा
नि < सं० निर्	:	रहित,	निकम्मा,	निडर
बिन < सं० बिना	:	अभाव,	बिनब्याहा,	बिनबोया
भर < सं० √भृ	:	पूरा,	भरपेट,	भरसक

ग. विदेशी उपसर्ग

(१) फ़ारसी-अरबी

१७४. फ़ारसी-अरबी उपसर्गों की भी एक पूर्ण सूची गुरु के हिंदी व्याकरण[1] में दी हुई है। उसी के अनुसार नीचे मुख्य-मुख्य उपसर्ग दिए जा रहे हैं।

कम	:	थोड़ा,	कमज़ोर,	कम उम्र
			कम समझ,	कम दाम
खुश	:	अच्छा,	खुशबू,	खुशदिल
ग़ैर	:	भिन्न,	ग़ैरमुल्क	ग़ैरहाज़िर
दर	:	में	दरअसल,	दरहक़ीक़त

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (क)

ना	: अभाव ,	नापसंद ,	नालायक़
ब	: अनुसार ,	बदस्तूर ,	बदौलत
बद	: बुरा ,	बदमाश ,	बदनाम
बिला	: बिना ,	बिला क़ुसूर ,	बिलाशक
बे	: बिना ,	बेईमान ,	बेरहम
ला	: बिना ,	लाचार ,	लावारिस
सर	: मुख्य ,	सरकार ,	सरदार सरपंच
हम	: साथ ,	हमदर्दी ,	हमउम्र
हर	: प्रत्येक ,	हररोज़ ,	हर चीज़
		हरघड़ी ,	हर काम

(२) अंग्रेज़ी

१७५. कुछ अंग्रेज़ी शब्द भी हिंदी में उपसर्ग के समान व्यवहृत होते हैं। इन के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

सब : अं० सब : सब ओवर सियर, सब रिजिस्ट्रार

हेड : अं० हेड : हेड पंडित , हेडमास्टर

आ. प्रत्यय[१]

क. तत्सम प्रत्यय

१७६. तत्सम उपसर्गों के समान तत्सम प्रत्यय भी तत्सम शब्दों के साथ बहुत बड़ी संख्या में हिंदी में आ गए हैं। प्रत्ययों के इतिहास की दृष्टि

[१] प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर-समूह को कहते हैं जो शब्द-रचना के निमित्त शब्द के आगे लगाया जाता है, जैसे 'बूढ़ा' शब्द में 'पा' प्रत्यय लगा कर बुढ़ापा शब्द बन जाता है।

से इन को यहां देना व्यर्थ समझा गया। इन में से जिन का प्रयोग तद्भव तथा विदेशी शब्दों के साथ होने लगा है उन्हें तद्भव प्रत्ययों की सूची में शामिल कर लिया गया है। तत्सम कृदंत और तद्धित प्रत्ययों तथा प्रत्ययों के समान व्यवहृत संस्कृत शब्दों की पूर्ण सूचियां पं० कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण में दी हुई हैं।[1]

ख. तद्भव तथा देशी प्रत्यय

१७७. हिंदी में व्यवहृत तद्भव तथा देशी प्रत्ययों पर नीचे विचार किया गया है। तद्भव प्रत्ययों में यथासंभव संस्कृत तत्सम रूप देने का यत्न किया गया है। देशी तथा कुछ अन्य प्रत्ययों का इतिहास नहीं दिया जा सका है। देशी माने जाने वाले प्रत्ययों में कुछ ऐसे हो सकते हैं जो खोज के बाद तद्भव साबित हों।

१७८. *अ* (कृ० भाववाचक संज्ञा, विशेषण, पूर्वकालिक कृ० अव्यय) यह प्रत्यय संस्कृत पु० *अः*, स्त्री० *आ* तथा नपुं० *अम्* की प्रतिनिधि है।[2]

बोल	:	*बोलना*
चाल	:	*चलना*
मेल	:	*मिलना*
देख	:	*देखना*

संस्कृत में धातुओं के उपरान्त जो प्रत्यय लगाए जाते हैं उन्हें 'कृत्' कहते हैं। ऐसे प्रत्ययों के लगाने से जो शब्द बनते हैं उन्हें 'कृदंत' कहते हैं। धातुओं को छोड़ कर अन्य शब्दों के आगे प्रत्यय लगा कर जो शब्द बनते हैं उन्हें 'तद्धित' कहते हैं। हिंदी के लिए इस भेद को अनावश्यक समझ कर प्रत्ययों के इस वर्गीकरण का यहां अनुसरण नहीं किया गया है।

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (क), ४३५ (ख)

[2] चै., बे. लै., § ३६५

१७६. अक्कड़ (कृ०, कर्तृवाचक)[1]

यह देशी प्रत्यय मालूम होता है ।

पियक्कड़ : पीना

भुलक्कड़ : भूलना

१८०. अन्त (कृ०, भाववाचक)[1]

इस का सम्बन्ध सं० वर्तमान-कालिक कृदंत प्रत्यय अंत (शतृ) से मालूम होता है यद्यपि आधुनिक प्रयोग कुछ भिन्न हो गया है ।[2]

रटन्त : रटना

गढ़न्त : गढ़ना

१८१. आ (कृ०, भूतकालिक कृ०, भाववाचक संज्ञा, करणवाचक संज्ञा)[1]

इस का सम्बन्ध निरर्थक प्रत्यय आ के साथ सं०—*त (क्त)*, —इत > प्रा० —अ, —इअ से जोड़ा जाता है ।[1]

मरा : मरना

घेरा : घेरना

पोता : पोतना

१८२. आ (त० विशेषण, स्थूलता-वाचक संज्ञा)[1]

मैला : मैल

लकड़ा : लकड़ी

१८३. आइंद (त० भाववाचक संज्ञा)[1] < + गन्ध

---

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)

[2] चै., बे. लै., § ३६५

कपड़ाइंद : *कपड़ा*
सड़ाइंद : *सड़ा*

१८४. *आई* (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

हार्नली[2] इस प्रत्यय का संबंध सं० त० स्त्री० *ता* > प्रा० *दा* या *आ* से मानते हैं। निरर्थक क जोड़ने से सं० *तिका*, प्रा० *दिया* या *इआ*, हि० *आई* हो गया, जैसे सं० *मिष्टता* या *मिष्टतिका**, प्रा० *मिट्ठइआ*, हि० *मिठाई* हो गया।

चैटर्जी[3] और हार्नली में मतभेद है। चैटर्जी के अनुसार यह प्रत्यय म० भा० आ० काल का है और इस का संबंध धातु के प्रेरणार्थक रूप से बनी हुई स्त्रीलिंग क्रियार्थक संज्ञाओं से है, जैसे सं० *याचापिका** रूप से हि० *जँचाई* रूप बन सकता है।

लड़ाई : *लड़ना*
खुदाई : *खुदना*

१८५. *आऊ, ऊ* (कृ० कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली[4] के अनुसार यह प्रत्यय सं० कृ० तृ अथवा निरर्थक क सहित तृक से निकला है। प्रा० में ऋ का उ में परिवर्तन हो जाने के कारण इस प्रत्यय का प्राकृत रूप ऊ या उओ हो गया था जैसे सं० *खादिता* (मूलरूप *खादितृ*), प्रा० *खाइऊ* या *खाइउओ*, हि० *खाऊ*। चैटर्जी[5] सं० उ-क से इस की व्युत्पत्ति को मानना ठीक समझते हैं।

---

[1] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २२३
[3] चै., बे. लै., § ४०२
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३३३
[5] चै., बे. लै., § ४२८

खाऊ : खाना
उड़ाऊ : उड़ाना

यह प्रत्यय योग्यता के अर्थ में तथा तद्धित गुणवाचक शब्द बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है।[1]

१८६. आक, आका (कर्तृवाचक संज्ञा)

हार्नली के अनुसार इस का संबंध सं० कृ० अक या आपक से है, जैसे सं० उड्डापक, प्रा० उड्डावके या उड्डाअके, हि० उड़ाका।

पैराक : पैरना
लड़ाका : लड़ना

अनुकरण-वाचक शब्दों में आका लगा कर भाववाचक संज्ञाएं (त०) बनती हैं, जैसे धड़ाका : धड़, सड़ाका : सड़।[2]

१८७. आका, आटा (त०, भाववाचक संज्ञा)[3]

अनुकरण-वाचक शब्दों में प्रायः ये प्रत्यय लगते हैं।

धड़ाका : धड़
सड़ाका : सड़
सन्नाटा : सन

१८८. आन (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

चैटर्जी[4] के अनुसार इस का संबंध सं० आप्—अन, —आप्—अन—क से है।

---

[1] चै., बे. लै., § ४२८
[2] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)
[3] गु., हि. व्या., § ४३५ (ख)
[4] चै., बे. लै., § ४०८

उठान	:	*उठना*
लम्बान	:	*लम्बा*

१८९. *आना* (त० स्थानवाचक संज्ञा)

राजपूताना	:	*राजपूत*
सिरहाना	:	*सिर*

१९०. *आनी* (त० स्त्रीलिंग संज्ञा)

यह सं० तत्सम *आनी* से प्रभावित प्रत्यय है, जैसे सं० इन्द्र > *इन्द्राणी* ।

गुरुआनी	:	*गुरु*
पंडितानी	:	*पंडित*

१९१. *आप, आपा,* (कृ० भाववाचक संज्ञा)[1]

मिलाप	:	*मिलना*
पुजापा	:	*पूजना*

१९२. *आयत, आइत* (त०, भाववाचक संज्ञा)

इन का संबंध सं० *वत्, मत्* से जोड़ा जाता है[2] । प्राकृत में ये *वंत, मंत्* हो गए थे और इन रूपों के साथ-साथ *इंत* या *इत्त* रूप भी मिलता है। मूल शब्द के *अ* सहित इन का रूप *अवंत अमंत,* या *अअंत अयंत,* या *अइंत,* या *इंत* हो सकता है ।

बहुताइत	:	*बहुत*
पंचायत	:	*पंच*

---

[1] चै., वे. लै., § ४०८

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २४०
बी., क. ग्रै., भा. २, § २०

१९३. आर, आरी (त० कर्तृवाचक संज्ञा)

ये प्रत्यय संस्कृत कार, कारिक के वर्तमान रूप हैं।[१]

सं० कुम्भकार > प्रा० कुम्हआरो > हि० कुम्हार

सं० पूजाकारिकः > प्रा० पूजआलिए > हि० पुजारी

१९४. आरा, आरी (आर के पर्यायवाची)

हार्नली[२] इन की व्युत्पत्ति संबंधकारक के प्रत्ययों से जोड़ते हैं, सं० कृतं > प्रा० केरं > हि० का, आरा।

पुजारी	:	पूजा
भिखारी	:	भीख
घसिआरा	:	घास

१९५. आड़ी

खिलाड़ी	:	खेल

१९६. आल, आला (त० संज्ञा)[३]

यह सं० आलय का वर्तमान रूप है, जैसे सं० श्वशुरालय > हि० ससुराल, सं० शिवालय > हि० शिवाला

ससुराल	:	ससुर
शिवाला	:	शिव

---

[१] चै., बे. लै., § ४१२
हा., ई. हि. ग्रै., § २७७
बी., क. ग्रै., भाग २, § २५

[२] हा., ई. हि. ग्रै., § २७४

[३] हा., ई. हि. ग्रै., § २४४–२४८
चै., बे. लै., § ४१६–४१७

१९७. *आली* (समूहवाचक)

कुछ शब्दों में इस का संबंध सं० *अवली* से जुड़ता है, सं० *दीपावली* > हि० *दिवाली*।

दिवाली : *दिया*

१९८. *आलू* : *आलु* (त०)

इस का संबंध सं० *आलु* से माना जाता है।

झगड़ालू : *झगड़ा*

कृपालु : *कृपा*

१९९. *आव*, (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[1] इस का संबंध सं० *त्व*, *त्वन* > प्रा० *त्तं*, *त्तणं* > या *अअं अअणं* > अप० *अउ अअणु* से जोड़ते हैं। *अअउ* से *आउ* या *आव* हो जाना संभव है। जैसे सं० *उच्चकत्वं* > प्रा० *उच्चअत्तं* या *उच्चअअं* > अप० *उच्चअउ* > हि० *उंचाव*। चैटर्जी[2] हार्नली का मत मानने को उद्यत नहीं हैं। बीम्स[3] के अनुसार इस का संबंध सं० *अतु* या *आतु* से है।

बचाव : *बचना*

पड़ाव : *पड़ना*

हि० *आवा* और *आवट* या *आवत* (कृ०) प्रत्यय व्युत्पत्ति की दृष्टि से *आव* के ही रूपांतर माने जाते हैं।

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २२७

[2] चै., बे. लै., § ४०५

[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § १६

भुलावा	:	*भुलाना*
सजावट	:	*सजाना*
कहावत	:	*कहना*

आवना (कृ० विशेषण) की व्युत्पत्ति भी *आव* के ही समान हो सकती है।

डरावना	:	*डराना*
सुहावना	:	*सुहाना*

२००. *आस*, *आसा* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[1] इन प्रत्ययों को संस्कृत सं० *वाञ्छा* (इच्छा) का संक्षिप्त तथा परिवर्तित रूप मानते हैं, जैसे सं० *निद्रावाञ्छा* > प्रा० *निद्दवंछा* > हि० *निंदासा*, किंतु यह व्युत्पत्ति अत्यंत संदिग्ध है। हि० *पियासा* का संबंध सं० *पिपासा* से है।

रुआसा	:	*रोना*
निंदास	:	*नींद*

२०१. *आहट* (कृ० त०, भाववाचक संज्ञा)

हार्नली[2] के अनुसार इसका संबंध सं० *वृत्ति*, *वृत्त* या *वार्त* संज्ञाओं से है। प्रा० में ये *वट्टी*, *वट्ट* या *वत्ता* हो जाते हैं। बीम्स[3] के अनुसार यह सं० *ऋतु* या *आतु* से निकला है।

कडुवाहट	:	*कडुवा*
चिकनाहट	:	*चिकना*

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २८३

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २८८

[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § १६

३०

२०२. इन या आइन (स्त्रीलिंग)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये *आनी* के समान हैं।

मुंशियाइन : *मुंशी*
बरेठिन : *बरेठा*

२०३. इयल (कृ०, कर्तृवाचक)

अड़ियल : *अड़ना*
मरियल : *मरना*

२०४. इया (त० कर्तृवाचक)

इस की व्युत्पत्ति सं० *इय*, *ईय* या *इक* से हो सकती[1] है।

पर्वतिया : *पर्वत*
कनौजिया : *कनौज*

२०५. ई (त०, संज्ञा, विशेषण)

प्राचीन कई प्रत्ययों ने हिंदी में ई का रूप धारण कर लिया है[2]।

(१) सं० इन् > हि० ई, जैसे सं० *मालिन* > हि० *माली*

(२) सं० ईय > हि० ई, जैसे सं० *देशीय* > हि० *देशी*

(३) सं० इक > हि० ई, जैसे सं० *तैलिक* > हि० *तेली*

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § १८
चै., बे. लै., § ४२१

[2] चै., बे. लै., § ४१८
बी., क. ग्रै., भा. २, § १८

स्त्रीलिंग-वाचक हि० ई की व्युत्पत्ति सं० *इका* से मानी जाती है[1]।

घोड़ी : *घोड़ा*
पगली : *पागल*

ई (कृ०) कुछ क्रियार्थक संज्ञाओं में भी पाई जाती है। इस रूप में यह संस्कृत तत्सम प्रत्यय है।[2]

हंसी : *हंसना*
घुड़की : *घुड़कना*

२०६. *ईला* (त० विशेषण)

हार्नली[3] के मतानुसार इस का संबंध प्रा० *इल्ल* से है। प्राकृत से ही कदाचित् यह प्रत्यय *इल* रूप में संस्कृत के कुछ शब्दों में पहुँच गया, जैसे सं० *ग्रंथि* > *ग्रंथिल*।

पथरीला : *पत्थर*
रंगीला : *रंग*
गंठीला : *गांठ*

२०७. *एर*, *एरा* (कृ० कर्तृवाचक, त० भाववाचक)

हार्नली[4] के अनुसार उन का संबंध सं० *दृश* (सदृश) से माना जाता है। प्राकृत में इस प्रकार के प्रत्यय बराबर पाए जाते हैं।

---

[1] चै., बे. लै., § ४१६
[2] चै., बे. लै., § ४२०
[3] हा., ई. हि. ग्रै., § २४२
बी., क. ग्रै. भा. २, § १८
चै., बे. लै., § ४२५, ४२६
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § २५१ २१७, २१८

अंधेर अंधेरा	:	अंध
सबेरा	:	बसना
ममेरा	:	मामा

हि० एड़ी जैसे भंगेड़ी, एली जैसे हथेली, एल जैसे फुलेल; एला जैसे अधेला, ऐल जैसे खपड़ैल आदि समस्त प्रत्यय व्युत्पत्ति की दृष्टि से एर, एरा के सदृश माने जाते हैं।

२०८. ऐत (कृ० कर्तृवाचक)

व्युत्पत्ति के लिए दे० आयत।

डकैत	:	डाका
लड़ैत	:	लड़ना

२०९. ओड़, औड़ा

हंसोड़	:	हंसना
हथौड़ा	:	हाथ

२१०. ओला

खटोला	:	खाट

२११. औता, औटा, ओती, ओटी, औती, औटी (कृ० त० संज्ञा)

व्युत्पत्ति के लिए दे० आयत।

चुकौता, चुकौनी	:	चुकाना
कजरौटा	:	काजर
बपौती	:	बाप
कसौटी	:	कसना

२१२. औना, औनी, आवना, आवनी (कृ०)

हार्नली[1] के अनुसार इन सब का संबंध सं० अनीय > प्रा० अणीअ, अणिअ, अणअ से है।

खिलौना	:	खेलना
मिचौनी	:	मिचाना
पहरावनी	:	पहराना
डरावना	:	डराना

२१३. औवल (कृ० भाववाचक)

बुझौवल	:	बूझना
मिचौवल	:	मीचना

२१४. क, अक (कृ० त०)

चैटर्जी[2] के अनुसार यह सं० अत् अंत वाले क्रिया के रूपों में कृत लगा कर बना था। प्रा० में इस का रूप अक मिलता है, जैसे हि० चमक < प्रा० चमक < सं० चमत्कृत। अतः इस की उत्पत्ति सं० कृत् से मानी जा सकती है। सं० प्रत्यय अ—क का प्रभाव भी कुछ शब्दों पर हो सकता है। हार्नली के मतानुसार अक् आक् इ० का संबंध अक से है।

फाटक	:	फाड़ना
बैठक	:	बैठना
धमक	:	धम

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१

[2] चै., बे. लै., § ४३०, ४३१
बी., क. ग्रै., भा. २, § ६
हा., ई. हि. ग्रै., § ३३८

२१५. *का* (कृ० त०)

हार्नली[1] के मतानुसार इस का संबंध भी संबंधकारक के प्रत्ययों से है (दे० हा०, ई० हि० ग्रै०, § ३७७)

मैका	:	*मा*
लड़का	:	*लाड़*

२१६. *गी* (कृ०) < फ़ा० *—गी*

देनगी	:	*देना*
बानगी	:	*बान*

यह प्रत्यय वास्तव में विदेशी प्रत्ययों के अंतर्गत जाना चाहिए।

२१७. *ड़ा ड़ी*[2] (त०)

टुकड़ा	:	*टूक*
मुखड़ा	:	*मुख*

२१८. *जा* (त०)

सं० *जात* का वर्तमान रूप बहुत से हिंदी शब्दों में मिलता है।

भतीजा	:	*भाई*
भानजा	:	*बहिन*

२१९. *टा, टी*[3] (त०)

इन का सबंध सं० √वृत् > प्रा० वट्ट से है। दे० आहट।

कलूटा	:	*काला*
बहूटी	:	*बहू*

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § २८०
[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § २४
[3] चै., बे. लै., § ४३६

२२०. *ड़ा ड़ी* (त०)

इन का संबंध (१) सं० *वाट* (जैसे *अखाड़ा*) (२) सं० *ट* > प्रा० *ड़* (जैसे *पाखुड़ी*) से माना जाता है ।

२२१. *त ता* (कृ० त०)

(१) भाववाचक संज्ञाओं में पाए जाने वाले *त* प्रत्यय का संबंध सं० *त्व* > प्रा० *त्त* से माना जाता है ।[2] हिंदी में इस प्रत्यय से बने हुए रूप स्त्रीलिंग हो जाते हैं, इस कारण यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है ।

बचत	:	*बचना*
खपत	:	*खपना*
रंगत	:	*रंग*

(२) कुछ हिंदी संज्ञाओं में *त* सं० *पुत्र*, *पुत्रिक*, या *पुत्रिका* का अवशिष्ट रूप है ।[3]

जिठौत	:	*जेठ*
बहिनौत	:	*बहिन*

(३) वर्तमान-कालिक कृदंत *ता* का संबंध सं० *अत्* > प्रा० *अंत* से माना जाता है ।[4]

जीता	:	*जीना*
खाता	:	*खाना*

---

[1] चै., बे. लै., § ४४०, ४४१
[2] चै., बे. लै., § ४४२
[3] चै., बे. लै., § ४४४
[4] हा., ई. हि. ग्रे., § ३०१

२२२. न, ना, नी (कृ० त०)

हार्नली[1] इन सब प्रत्ययों का संबंध सं० अनीय > प्रा० अणीअ या अणअ से जोड़ते हैं। स्त्रीलिंग द्योतक बहुत सी संज्ञाओं में सं० इन् का प्रभाव भी है।[2]

रहन	:	रहना
घिनौना	:	घिन
होनी	:	होना
चांदनी	:	चांद

२२३. पा, पन (त० भाववाचक संज्ञा)

इन प्रत्ययों का संबंध सं० त्व त्वन > प्रा० प्पं, प्पणं से जोड़ा जाता है, जैसे सं० वृद्धत्वं > प्रा० बुड्ढप्पं > हि० बुढ़ापा।

बुढ़ापा	:	बूढ़ा
मुटापा	:	मोटा
लड़कपन	:	लड़का
कालापन	:	काला

---

[1] चै., बे. लै., § ३२१

[2] चै., बे. लै., § ४४५

[3] हा., ई. हि. ग्रै., § २३१
बी., क. ग्रै., भा. २, § १७
चै., बे. लै., § ४४६

२२४. ब (त०)

अब	:	यह
जब	:	जो

२२५. री (त०)

कोठरी	:	कोठा
मोटरी	:	मोट

२२६. रू (त०)

चैटर्जी[1] के अनुसार इस का संबंध सं० रूप > प्रा० रूव से है ।

गोरू (गोरूप)	:	गो
पखेरू (पक्षरूप)	:	पंखी
मिहरारू (महिला रूप)		

२२७. ल, ला, ली (त०)

चैटर्जी[2] इन प्रत्ययों का संबंध सं० ल से जोड़ते हैं। बीम्स[3] के अनुसार इस प्रकार के अधिकांश प्रत्ययों का संबंध सं० इल > प्रा० इल्ल से है ।

घायल	:	घात
गंठीला	:	गांठ
सहेला	:	सखी
टिकली	:	टीका

[1] चै., बे. लै., § ४४८
[2] चै., बे. लै., § ४४६
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § १८

२२८. वान् (त०)

इस प्रत्यय का संबंध स्पष्ट ही सं० मतुप् से है जिस के मान्, वान् आदि रूप होते हैं।[1]

गुणवान : गुण
धनवान : धन

२२९. वा (त०)

हार्नली[2] के अनुसार इस का संबंध सं० म के स्वार्थे क सहित मक से है, जैसे सं० पञ्चमः या पञ्चमकः > प्रा० पंचमओ या पंचवंओ > हि० पाचवां।

पाचवा : पाच
सातवा : सात

२३०. वाल, वाला (त०)

हार्नली[3] के अनुसार इस की व्युत्पत्ति सं० पाल से है।

ग्वाला > सं० गोपालक : गो
गाड़ीवाला : गाड़ी
कोतवाल (कोटपालक)
प्रयागवाल : प्रयाग

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § २०
हा., ई. हि. ग्रै., § २३६
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § २६६
[3] हा., ई. हि. ग्रै., § २६६

२३१. *वैया* (कृ० कर्तृवाचक)

इस प्रत्यय का मूल रूप हार्नली[१] के अनुसार सं० *तव्य+ इ* > प्रा० *एअव्वं* या *इअव्वं* है ।

खवैया	:	*खाना*
गवैया	:	*गाना*

२३२. *सा* (त०)

इस का संबंध हार्नली[१] सं० *सदृशकः** > प्रा० *सइअए**, *सइआ** से जोड़ते हैं । चैटर्जी[२] इस मत से सहमत नहीं हैं और इस का संबंध सं० *श* (जैसे सं० *कपि-श*, *कर्क-श*) से लगाते हैं । बीम्स[३] का मत इन दोनों से भिन्न है ।[४]

हाथीसा	:	*हाथी*
वैसा	:	*वह*

२३३. *सरा*[५]

इस की व्युत्पत्ति सं०√ *सृ* > *सृतः* से मानी जाती है, जैसे सं० *द्विस्सृतः* > प्रा० *दूसलिए* > हि० *दूसरा*

तीसरा	:	*तीन*
दूसरा	:	*दो*

---

[१] हा., ई. हि. ग्रै., § ३१४
[२] हा., ई. हि. ग्रै., § २६२
[३] चै., बे. लै., § ४५०
[४] बी., क. ग्रै., भा. २, § १७
[५] हा., ई. हि. ग्रै., § २७१
चै., बे. लै., § ४५२

२३४. *हरा*[1]

इस प्रत्यय का संबंध सं० *हार* (भाग) से माना गया है।

दुहरा	:	*दो*
इकहरा	:	*एक*

खंडहर, पीहर आदि शब्दों में *हर* सं० *गृह* का परिवर्तित रूप है।

२३५. *हार, हारा*

हार्नली[2] ने इस का संबंध सं० *अनीय* से जोड़ा है, किंतु यह व्युत्पत्ति बिल्कुल भी संतोषजनक नहीं है।

होनहार	:	*होना*
पढ़नेहारा	:	*पढ़ना*
लकड़हारा	:	*लकड़ी*

२३६. *हा* (कृ० कर्तृवाचक, त० गुणवाचक)

कटहा	:	*काटना*
मरखहा	:	*मारना*
पनिहा	:	*पानी*
हलवाहा	:	*हल*

ग. विदेशी प्रत्यय

फ़ारसी-अरबी

२३७. गुरु[3] के हिंदी व्याकरण में हिंदी में प्रचलित फ़ारसी-अरबी शब्दों में पाए जाने वाले प्रत्ययों की सूची दी है। इन में से कुछ वे प्रत्यय नीचे

---

[1] चै., बे. लै., § ४५४

[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३२१

[3] गु., हि. व्या., § ४३६-४४२ (ख)

दिए जाते हैं जिन का प्रयोग हिंदी शब्दों में भी होने लगा है। कुछ प्रत्यय चैटर्जी[1] के ग्रंथ से भी लिए हैं।

ई (त० भाववाचक संज्ञा)

खुशी : खुश
नवाबी : नवाब
दोस्ती : दोस्त

कार (त० कर्तृवाचक)

पेशकार : पेश
जानकार : जान

दान, दानी (त० पात्रवाचक)

इत्रदान : इत्र
चायदान : चाय
गोंददानी : गोंद

बान, वान (त० कर्तृवाचक)

बाग़बान : बाग़
गाड़ीवान : गाड़ी

आना

घराना : घर
साहिबाना : साहिब

---

[1] चै., बे. लै., § ४६८

ख़ाना			
	छापाख़ाना	:	छापा
	गाड़ीख़ाना	:	गाड़ी
ख़ोर			
	घूसख़ोर	:	घूस
	चुग़लख़ोर	:	चुगली
गीरी	फ़ा० गीर	या	गरी
	कारीगरी	:	कार
	बाबूगीरी	:	बाबू
ची	फ़ा० चह्	का	रूपांतर
	देगची	:	देग़चा
	चमची	:	चमचा
	बगीची	:	बग़ीचा
बाज़, बाज़ी			
	रंडीबाज़ी	:	रंडी
	कबूतरबाज़ी	:	कबूतर

अध्याय ६

संज्ञा

अ. मूलरूप तथा विकृत रूप

२३८. हिंदी में कारकों की संख्या उतनी ही है जितनी संस्कृत में, किंतु प्रत्येक कारक में भिन्न-भिन्न संयोगात्मक रूप नहीं होते। संस्कृत में आठ विभक्तियों और प्रत्येक विभक्ति में तीन वचनों के रूपों को मिला कर प्रत्येक संज्ञा में चौबीस रूपांतर हो जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न अंत वाली संज्ञाओं के रूप पृथक्-पृथक् होते हैं। लिंगभेद से भी रूपों में भेद हो जाता है। इस तरह किसी एक संज्ञा के चौबीस रूप जान लेने से भिन्न अंत अथवा लिंग वाली संज्ञा के रूपांतर बना लेना साधारणतया संभव नहीं होता।

हिंदी में द्विवचन तो होता ही नहीं है। भिन्न-भिन्न कारकों के एकवचन तथा बहुवचन में भी संज्ञा में चार से अधिक रूप नहीं पाए जाते। प्रथमा बहुवचन तथा समस्त अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में अंत, वचन तथा लिंगभेद के अनुसार कुछ भेद पाए जाते हैं। इन्हीं रूपों में भिन्न-भिन्न कारक-चिह्न लगाकर, तथा कुछ प्रयोगों में बिना लगाए भी भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूप बना लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए *राम* शब्द के संस्कृत तथा हिंदी के रूप नीचे दिए जाते हैं—

अध्याय ६

संज्ञा

अ. मूलरूप तथा विकृत रूप

२३८. हिंदी में कारकों की संख्या उतनी ही है जितनी संस्कृत में, किंतु प्रत्येक कारक में भिन्न-भिन्न संयोगात्मक रूप नहीं होते। संस्कृत में आठ विभक्तियों और प्रत्येक विभक्ति में तीन वचनों के रूपों को मिला कर प्रत्येक संज्ञा में चौबीस रूपांतर हो जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न अंत वाली संज्ञाओं के रूप पृथक्-पृथक् होते हैं। लिंगभेद से भी रूपों में भेद हो जाता है। इस तरह किसी एक संज्ञा के चौबीस रूप जान लेने से भिन्न अंत अथवा लिंग वाली संज्ञा के रूपांतर बना लेना साधारणतया संभव नहीं होता।

हिंदी में द्विवचन तो होता ही नहीं है। भिन्न-भिन्न कारकों के एकवचन तथा बहुवचन में भी संज्ञा में चार से अधिक रूप नहीं पाए जाते। प्रथमा बहुवचन तथा समस्त अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में अंत, वचन तथा लिंगभेद के अनुसार कुछ भेद पाए जाते हैं। इन्हीं रूपों में भिन्न-भिन्न कारक-चिह्न लगाकर, तथा कुछ प्रयोगों में बिना लगाए भी भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूप बना लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए *राम* शब्द के संस्कृत तथा हिंदी के रूप नीचे दिए जाते हैं—

संस्कृत

	एक	द्वि०	बहु०
कर्ता	रामः	रामौ	रामाः
कर्म	रामम्	रामौ	रामान्
करण	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
संप्रदान	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
अपादान	रामात्	"	"
संबंध	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	रामे	"	रामेषु
संबोधन (हे)	राम	रामौ	रामाः

हिंदी

	एक०	बहु०
कर्ता	राम	राम
कर्म	" को	रामों को
करण	" से	" से
संप्रदान	" को	" को
अपादान	" से	" से
संबंध	" का, के, की	" का, के, की
अधिकरण	" में	" में
संबोधन	(हे) राम	(हे) रामो

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि हिंदी के रूपों का संबंध संस्कृत के रूपों से बिल्कुल भी नहीं है। ब्रजभाषा आदि हिंदी की बोलियों में कुछ संयोगात्मक रूप अवश्य मिलते हैं, जैसे कर्म में ब्र०

घरै (हि० *घर को*), संप्रदान ब्र० *रामै* (हि० *राम को*) किंतु खड़ीबोली हिंदी की संज्ञाओं में ऐसे रूपों का व्यवहार नहीं पाया जाता।

२३६. कारक-चिह्न लगाने के पूर्व हिंदी संज्ञा के मूलरूप में जब परिवर्तन किया जाता है तो ऐसे रूपों को संज्ञा का विकृत रूप कहते हैं। हिंदी में संज्ञा के चार रूपों—दो मूल और दो विकृत—के उदाहरण भी प्रत्येक संज्ञा में भिन्न नहीं पाए जाते। भिन्न-भिन्न अंत वाली संज्ञाओं में मिला कर ये चारों रूप अवश्य मिल जाते हैं। नीचे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

		एक०	बहु०
मूलरूप	(कर्ता)	*घोड़ा*	*घोड़े*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*घोड़े*	*घोड़ों*
मूलरूप	(कर्ता)	*लड़की*	*लड़की, लड़किया*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*लड़की*	*लड़कियों*
मूलरूप	(कर्ता)	*घर*	*घर*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*घर*	*घरों*
मूलरूप	(कर्ता)	*किताब*	*किताब*
विकृत रूप	(अन्य कारक)	*किताब*	*किताबों*

बहुवचन के भिन्न रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में वचन के शीर्षक में विचार किया गया है। कुछ आकारांत शब्दों के एकवचन में भी कर्ता को छोड़ कर अन्य कारकों में एकारांत विकृत रूप पाया जाता है (कर्ता एक० *घोड़ा*, अन्यकारक एक० *घोड़े*)[१]। इस विकृत रूप की व्युत्पत्ति के संबंध में प्रायः समस्त विद्वानों का एक मत है। यह रूप संस्कृत एकवचन की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवशेष मात्र माना जाता है।

---

[१]इस के अपवादों के लिए दे. गु., हि. व्या., § २१०

हिंदी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले समस्त संभावित परिवर्तन नीचे दिखलाए गए हैं।

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
		आकारांत कुछ		
मूलरूप	—आ	—ए	×	—एँ
विकृतरूप	—ए	—ओं	×	—ओं
		अन्य		
मूलरूप	×	×	×	(-एँ;-आँ)
विकृतरूप	×	—ओं	×	—ओं

सूचना (१) ईकारांत तथा ऊकारांत शब्दों में ओं लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

(२) स्त्रीलिंग के अन्य रूपों में इकारांत अथवा ईकारांत तथा ऊकारांत संज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में इआँ, इएँ तथा उएँ रूप भी होते हैं।

आ. लिंग[1]

२४०. प्रकृति में जड़ और चेतन दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं। चेतन पदार्थों में पुरुष और स्त्री का भेद होता है। कभी-कभी चेतन पदार्थ को लिंगभेद की दृष्टि के बिना भी सोचा जा सकता है। इस प्रकार प्रकृति में लिंग की दृष्टि से चेतन पदार्थों के तीन भेद हो सकते हैं—(१) पुरुष, (२) स्त्री

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § २६

तथा (३) लिंग की भावना के बिना चेतन पदार्थ। व्याकरण में स्वाभाविक रीति से इन के लिए क्रम से (१) पुल्लिंग, (२) स्त्रीलिंग तथा (३) नपुंसक लिंग शब्दों का प्रयोग करते हैं। अचेतन पदार्थों को प्रायः नपुंसक लिंग के अंतर्गत रख लिया जाता है। इस क्रम से मिलता-जुलता लिंगभेद संस्कृत और अंग्रेज़ी में, तथा मराठी, गुजराती आदि के कुछ रूपों में है यद्यपि कभी-कभी कुछ जड़ पदार्थों को चेतन मान कर इन में भी चेतन पदार्थों के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग भेद का आरोप कर लिया जाता है।

भिन्न-भिन्न लिंग वाले पदार्थों के लिए पृथक् शब्द रहने पर भी लिंग के कारण कभी-कभी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, या क्रिया के रूपों में परिवर्तन करना व्याकरण-संबंधी लिंगभेद का शुद्ध क्षेत्र है। प्राकृतिक लिंगभेद तो प्रत्येक भाषा में समान-रूप से वर्तमान है, किंतु व्याकरण-संबंधी लिंगों की संख्या तथा मात्रा भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक्-पृथक् है। उदाहरण के लिए संस्कृत में विशेषण, कृदंत तथा अन्य पुरुषवाची सर्वनाम के रूप पुल्लिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग में भिन्न होते हैं। अंग्रेज़ी में केवल अन्य पुरुष सर्वनाम के रूपों में भेद किया जाता है। लिंगों की संख्या के संबंध में भारतीय आर्यभाषाओं में ही कई भेद मिलते हैं। प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में संस्कृत और प्राकृत में तथा आधुनिक भाषाओं में मराठी, गुजराती और सिंहाली में तीन लिंग होते हैं। हिंदी, पंजाबी, राजस्थानी तथा सिंधी में दो लिंग होते हैं। बंगाली, उड़िया, आसामी तथा बिहारी में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद बहुत ही कम किया जाता है। भारत की पूर्वी भाषाओं में लिंगभेद के शिथिल होने का कारण प्रायः निकटवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशों की अनार्य भाषाओं का प्रभाव माना जाता है। इन भाषाओं में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद नहीं पाया जाता। चैटर्जी की धारणा है कि कोल भाषाओं के प्रभाव के कारण बंगाली आदि पूर्वी भाषाओं से लिंगभेद उठ गया। उन के मत के अनुसार पूर्वी भाषाओं में लिंगभेद-संबंधी शिथिलता का कारण इन भाषाओं

का स्वाभाविक विकास भी हो सकता है। बिना वाह्य प्रभाव के ऐसा होना संभव है। मराठी, गुजराती आदि दक्षिण-पश्चिमी आर्यभाषाओं में प्राचीन तीनों लिंगों का भेद बना रहना निकटस्थ द्राविड़ भाषाओं के कारण माना जाता है। इन द्राविड़ भाषाओं में भी लिंगों की संख्या तीन है। मध्यवर्ती भारतीय आर्यभाषाएं लिंगों की संख्या की दृष्टि से भी मध्यस्थ हैं।

२४१. हिंदी में व्याकरण-संबंधी लिंगभेद सब से अधिक दुरूह है। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है हिंदी की एक विशेषता तो यह है कि उस में केवल दो लिंग—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—होते हैं। हिंदी व्याकरण में नपुंसक लिंग नहीं है, अतः प्रत्येक अचेतन पदार्थ के नाम को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग के अंतर्गत रखना पड़ता है और तत्संबंधी समस्त रूप-परिवर्तन इन शब्दों में भी करने पड़ते हैं। इस संबंध में निश्चित नियम बनाना दुरतर है।[२] साधारणतया हिंदीभाषा-भाषी अभ्यास से ही अचेतन पदार्थों में प्रचलित लिंग विशेष के शुद्ध रूपों का व्यवहार करने लगते हैं। विदेशियों को हिंदी में शुद्ध लिंग का प्रयोग करने में विशेष कठिनाई इसी कारण पड़ती है।

हिंदी में लिंग-संबंधी दूसरी विशेषता यह है कि इस की क्रियाओं में भी लिंग के कारण विकार होता है। लिंगभेद के कारण प्रत्येक हिंदी क्रिया के दो रूप होते हैं—पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग—जैसे *आदमी जाता है, जहाज़ जाता है,* किंतु *स्त्री जाती है, रेल जाती है*। लिंग के संबंध में यह बारीकी अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में से भी बहुत कम में है। भारत की पूर्वी भाषाओं में क्रिया में लिंगभेद न होने के कारण बंगाली, बिहारी तथा संयुक्तप्रांत की गोरखपुर और बनारस कमिश्नरी तक के लोग हिंदी बोलते समय क्रिया में अशुद्ध लिंग का प्रयोग अक्सर करते हैं। 'लोमड़ी बोला कि

---

[१] चै., बे. लै. § ४८३

[२] इस संबंध में कुछ विस्तृत नियमों के लिए दे. गु., हि. व्या., § २५६-२६६

ऐ हाथी तुम कहां जाती हो' इस प्रकार के नमूने हिंदी से कम परिचय रखने वाले बंगालियों के मुँह से अक्सर सुनाई पड़ते हैं। हिंदी क्रिया में कृदंत रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है। संस्कृत कृदंत रूपों में लिंगभेद मौजूद था, यद्यपि संस्कृत क्रिया में लिंगभेद नहीं किया जाता था। क्योंकि हिंदी कृदंत रूप संस्कृत कृदंतों से संबद्ध हैं, अतः यह लिंगभेद हिंदी कृदंतों में तो आ ही गया, साथ ही कृदंत से बनी हुई क्रियाओं में भी पहुँच गया है। इस संबंध में उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन 'क्रिया' शीर्षक अध्याय में किया गया है।

हिंदी आकारांत विशेषणों में लिंगभेद के कारण भिन्न रूप होते हैं। अन्य विशेषणों में इस प्रकार का भेद बहुत कम पाया जाता है। लिंग के कारण विशेषणों में होने वाले परिवर्तनों का रूप निश्चित सा है। इन में सब से अधिक प्रचलित परिवर्तन नीचे लिखे ढंग से प्रकट किया जा सकता है—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एक०	—*आ*	—*ई*
बहु०	—*ए*	—*ईं*; *ई*

हिंदी विशेषणों के *ई* लगा कर बने हुए स्त्रीलिंग रूपों की व्युत्पत्ति सं० तद्धित प्रत्यय *इका* > प्रा० *इआ* से अथवा इस के प्रभाव से मानी जाती है।

हिंदी सर्वनामों तथा प्रायः क्रियाविशेषणों[2] में लिंगभेद के कारण परिवर्तन नहीं होते। *मैं*, *तुम*, *वह* आदि सर्वनाम स्त्री-पुरुष द्योतक संज्ञाओं के लिए समान-रूप से प्रयुक्त होते हैं।

२४२. हिंदी संज्ञाओं के लिंगभेद की व्युत्पत्ति के संबंध में बीम्स[3] ने नीचे लिखा नियम दिया है। 'तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं में प्रायः वही लिंग

---

[1] हा., ई. हि. ग्रा., § ३८५

[2] इस संबंध में अपवादों के लिए दे. गु., हि. व्या., § ४२३

[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३०

हिंदी में भी माना जाता है जो संस्कृत में उन का लिंग रहा हो। संस्कृत नपुंसक लिंग शब्द हिंदी में प्रायः पुल्लिंग हो जाते हैं'। इस नियम के सैकड़ों अपवाद भी हैं। इस संबंध में बीम्स[1] ने कुछ विस्तृत नियम दिए हैं जिन का सार नीचे दिया जाता है।

हिंदी की पुल्लिंग आकारांत संज्ञाओं की व्युत्पत्ति नीचे लिखे रूपों से हो सकती है—

(१) संस्कृत की—अन् अंतवाली संज्ञाओं से जिन के प्रथमा में आकारांत रूप होते हैं, जैसे *राजा*।

(२) संस्कृत की—तृ अंतवाली संज्ञाओं से जैसे *कर्ता*, *दाता*।

(३) कुछ विदेशी शब्दों से, जो प्रायः फ़ारसी, अरबी या तुर्की से आए हैं, जैसे *दरिया*, *दरोग़ा*।

साधारणतया ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं किंतु कुछ शब्द पुल्लिंग भी पाए जाते हैं। ये निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं—

(१) संस्कृत—इन् अंतवाले शब्द, जैसे

सं० *हस्तिन्* > हि० *हाथी*,

सं० *स्वामिन्* > हि० *स्वामी*।

(२) संस्कृत के—तृ अंत वाले पुल्लिंग शब्द, जैसे सं० *भ्रातृ* > हि० *भाई*, सं० *नप्तृ* > हि० *नाती*।

(३) संस्कृत के इकारांत पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द, जैसे सं० *दधि* (नपुं०) > हि० *दही*, सं० *भगिनीपति* (पु०) > हि० *बहिनोई*।

(४) संस्कृत के इक, इय और ईय अंत वाले पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द, जैसे सं० *पानीयं* > हि० *पानी*, सं० *ताम्बूलिक* >

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३२-३३

हि० *तमोली*, सं० *क्षत्रिय* > हि० *खत्री*।

(५) संस्कृत के वे पुल्लिंग या नपुंसक लिंग शब्द जिन के उपांत्य में इकार या ईकार हो। अंत्य ध्वनि के लोप से ये शब्द हिंदी में ईकारांत हो जाते हैं, जैसे सं० *जीव* > हि० *जी*।

पुल्लिंग ऊकारांत शब्द प्रायः संस्कृत ऊकारांत शब्दों से संबद्ध हैं तथा पुल्लिंग व्यंजनांत शब्द प्रायः संस्कृत के अंत्य ह्रस्व स्वर के लोप से हिंदी में आ गए हैं।

हिंदी में कुछ आकारांत स्त्रीलिंग शब्द हैं। ये व्युत्पत्ति की दृष्टि से नीचे लिखी श्रेणियों में रक्खे जा सकते हैं—

(१) संस्कृत के आकारांत स्त्रीलिंग शब्द, जैसे *कथा*, *यात्रा*।

(२) संदिग्ध व्युत्पत्ति वाले शब्द, जैसे *डिबिया*, *चिड़िया*।

ऊपर दिए हुए पुल्लिंग ईकारांत शब्दों को छोड़ कर शेष ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग होते हैं।

संस्कृत के ऊकारांत स्त्रीलिंग शब्द हिंदी में भी स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे सं० *वधू* > हि० *बहू*।

जाति तथा व्यापार आदि से संबंध रखने वाले शब्दों में पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बना लिए जाते हैं।[1] पुल्लिंग आकारांत शब्द स्त्रीलिंग में ईकारांत हो जाते हैं, जैसे पु० *लड़का* स्त्री० *लड़की*, पु० *घोड़ा* स्त्री० *घोड़ी*। विशेषणों में भी यही प्रत्यय लगता है और इसकी व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। बहुत से शब्दों में *इन इनी* या *आनी* लगा कर पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं, जैसे पु० *धोबी* स्त्री० *धोबिन*, पु० *हाथी* स्त्री० *हथिनी*, पु० *पंडित* स्त्री० *पंडितानी*। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये प्रत्यय सं० *इन* (पु०) *इनी* (स्त्री०) से संबद्ध हैं, किंतु हिंदी में ये स्त्रीलिंग के अर्थ

---

[1] मी. क. कै., भा. २, § ३५

में ही व्यवहृत होते हैं। संस्कृत में जिन शब्दों में ये नहीं भी लगते हैं, हिंदी में उन में भी लगा दिए जाते हैं। विदेशी शब्दों तक में इन को लगा कर स्त्री-लिंग रूप बना लेते हैं, जैसे पु० *मुग़ल* स्त्री० *मुग़लानी*, पु० *मेहतर* स्त्री० *मेहतरानी*।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जि: के लिंग में परिवर्तन हो गया है—संस्कृत में इन का जो लिंग था हिंदी में उस से भिन्न लिंग में ये शब्द व्यवहृत होते हैं, जैसे[1]

सं०		हि०	
देह	(पु०)	*देह*	(स्त्री०)
बाहु	(पु०)	*बाँह*	(स्त्री०)
अक्षि	(न०)	*आँख*	(स्त्री०)
विष	(न०)	*विष*	(पु०)

३. वचन

२४३. प्रा० भा० आ० में तीन वचन थे—एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन। म० भा० आ० काल के प्रारंभ में ही द्विवचन समाप्त हो गया था। आ० भा० आ० में एकवचन और बहुवचन ये दो ही वचन रह गए हैं और प्रवृत्ति केवल एक वचन रखने की ओर मालूम पड़ती है।

हिंदी में बहुवचन के रूप बहुत सरल ढंग से बनते हैं।

(१) पुल्लिंग व्यंजनांत तथा कुछ स्वरांत संज्ञाओं में प्रथमा एकवचन तथा बहुवचन के रूप समान होते हैं, जैसे

एक०	बहु०
घर	*घर*
बर्तन	*बर्तन*
आदमी	*आदमी*

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ३६

(२) स्त्रीलिंग आकारांत तथा व्यंजनांत संज्ञाओं में प्रथमा बहुवचन में –एं लगता है, जैसे

एक०	बहु०
रात	*रातें*
औरत	*औरतें*
कथा	*कथाएं*

(३) पुल्लिंग आकारांत शब्दों में प्रथमा बहुवचन में *आ* के स्थान में –ए कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लड़का	*लड़के*
साला	*साले*

(४) स्त्रीलिंग ईकारांत शब्दों में प्रथमा बहुवचन में या तो सिर्फ़ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है या ई के स्थान में–*इयां* कर दिया जाता है, जैसे

एक०	बहु०
लड़की	*लड़कीं या लड़कियां*
पोथी	*पोथीं या पोथियां*

(५) अन्य समस्त विभक्तियों के बहुवचन में समान रूप से–ओं लगता है, जैसे *घरों, रातों, लड़कों, पोथियों* इत्यादि । ईकारांत शब्दों में ई ह्रस्व हो जाती है और ओं के स्थान पर–यों हो जाता है ।

हिंदी बहुवचन के चिह्नों में प्रथमा बहु०–ए के स्थान पर संस्कृत में पुल्लिंग बहुवचन में–आः पाया जाता है ।[1] संभव है इस परिवर्तन में, संस्कृत के कुछ सर्वनाम रूपों के बहुवचन के चिह्न–ए का भी प्रभाव रहा हो, जैसे सं० प्रथमा बहु० सर्वे ।

[1]बी., क. ग्रै., भा. २, § ४५

हिंदी प्रथमा बहु०—*एं*,—*इयां*,—*ईं* का संबंध संस्कृत नपुंसक लिंग प्रथमा बहुवचन के —*आनि* से जोड़ा जाता है।

सं०—आनि > आइं > ऐं > एं; इआं; ईं

अन्य विभक्तियों के बहुवचन के चिह्न—*ओं* या—*यों* का संबंध संस्कृत षष्ठी बहुवचन—*आनां* से है।

ई. कारक-चिह्न

२४४. संज्ञा के विकृत रूप में कारक-चिह्न लगा कर हिंदी विभक्तियों के रूप बनाए जाते हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के संयोगात्मक रूपों के धीरे-धीरे घिस जाने पर मध्यकाल के अंत में संज्ञा का प्रायः मूलरूप भिन्न-भिन्न विभक्तियों में प्रयुक्त होने लगा था। ऐसी स्थिति में अर्थ समझने में कठिनाई पड़ती थी इस लिए भिन्न-भिन्न कारकों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिए ऊपर से पृथक् शब्द इन मूलरूपों के साथ जोड़े जाने लगे। हिंदी के वर्तमान कारक-चिह्न मध्यकाल के अंत में लगाए जाने वाले इन्हीं सहकारी शब्दों के अवशेष मात्र हैं। घिसते-घिसते ये प्रायः इतने छोटे हो गए हैं कि इन के मूलरूपों को पहचानना प्रायः दुस्तर हो गया है। इस के अतिरिक्त भाषा के साधारण शब्दसमूह में इन का पृथक् अस्तित्व नहीं रह गया है इसी कारण इन्हें संज्ञा के मूलरूपों के साथ लिखने की प्रवृत्ति हो रही है।

भिन्न-भिन्न कारकों में प्रयुक्त चिह्न नीचे दिए जाते हैं, साथ ही इन की व्युत्पत्ति पर भी विचार किया गया है।

कर्ता या करण कारक

२४५. हिंदी में कर्ता के रूपों में कोई भी कारक-चिह्न प्रयुक्त नहीं होता। संस्कृत तथा प्राकृत में भी अधिकांश संज्ञाओं में प्रथमा के रूपों में परिवर्तन नहीं होता है।

सप्रत्यय कर्ता कारक का चिह्न ने पश्चिमी हिंदी की विशेषता है। 'बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना, जानना आदि सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छींकना, खाँसना आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत से बने कालों के साथ सप्रत्यय कर्ता कारक आता है।'[१]

ने कारक-चिह्न की व्युत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद है। बीम्स[२] इस का विचार करण कारक के अंतर्गत करते हैं और इसे कर्मणि तथा भावे प्रयोग का अर्थ देने वाला बताते हैं। बीम्स का कहना है कि गुजराती जैसी प्राचीन भाषा तक में करण तथा संप्रदान कारकों का एक-दूसरे के लिए प्रयोग होता रहा है। नेपाली में भी संप्रदान तथा करण के कारक-चिह्न बहुत मिलते-जुलते हैं। नेपाल में संप्रदान में *लाई* तथा करण में *ले* का प्रयोग होता है। पुरानी हिंदी के कर्म कारक के चिह्न *नैं* तथा आधुनिक हिंदी के कारक-चिह्न ने में भी साम्य है। नें गुजराजी में भी कर्म-संप्रदान के लिए प्रयुक्त होता है। मराठी में नें करण का चिह्न है। बीम्स इस सब से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वास्तव में संप्रदान तथा करण के चिह्न व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान थे। इस तरह से उन के मतानुसार ने का संबंध *लगि, लागि* जैसे शब्दों से है।

ट्रंप तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि ने का संबंध संस्कृत की अकारांत संज्ञाओं के करण कारक के चिह्न-एन से है। इस संबंध में आपत्ति यह की जाती है कि संस्कृत का यह चिह्न प्राकृत के अंतिम रूपों तथा चंद के ग्रंथ में भी कुछ स्थलों पर मिलता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मराठी में यह एं तथा गुजराती में ए के रूप में वर्तमान है। इस तरह—*एन*

---

[१]गु., हि. व्या. § ५१५

[२]बी., क. ग्रै., भा., २, § ५७

के *न* का धीरे-धीरे लोप होता गया है फिर —*एन* का ने होना कैसे संभव है। यदि —*एन* के स्थान पर संस्कृत में —*नेन* कोई चिह्न होता तो उसे ने होना संभव था किंतु ऐसा कोई भी चिह्न संस्कृत या प्राकृत में नहीं मिलता।

इस व्युत्पत्ति के विरोध में बीम्स का यह तर्क भी विचार करने के योग्य है कि यदि ने प्राचीन करण कारक के चिह्न का रूपांतर होता तो पुरानी हिंदी में इस के प्रयोग का बाहुल्य होना चाहिए था। वास्तव में बात उलटी है। पुरानी हिंदी में ने का प्रयोग बहुत कम मिलता है। आधुनिक हिंदी में आकर ही इस का प्रचार अधिक हुआ। संस्कृत के करण कारक का कोई भी चिह्न हिंदी में नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में बीम्स के मतानुसार १६वीं १७वीं शताब्दी के लगभग संप्रदान-कारक के लिए प्रयुक्त ने का प्रयोग (जैसे मैने दे दे) करण कारक की कुछ क्रियाओं के साथ भी होने लगा-होगा। हार्नली[1] का कहना है कि संप्रदान के लिए ब्रज० में *कौं को* और मारवाड़ी में नैं ने का प्रयोग होता था। सभव है नैं या ने को संप्रदान के लिए अनावश्यक समझ कर इसे सप्रत्यय कर्ता या करण कारक के लिए ले लिया गया हो। प्राचीन संयोगात्मक कारकों के अवशेष यदि आधुनिक भाषाओं में कहीं रह गए हैं तो संयोगात्मक रूपों में ही रह गए हैं। ने हिंदी में पृथक् कारक चिह्न है। बीम्स के मतानुसार इस बात से भी पुष्टि होती है कि ने संस्कृत —*एन* का रूपांतर नहीं है।

ब्लाक ने ग्रियर्सन का मत उद्धृत करते हुए कहा है कि ने का संबंध सं० —*तन*— से होना संभव है। वास्तव में ने की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। निश्चय-पूर्वक इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कर्म तथा संप्रदान

२४६. हिंदी तथा हिंदी की बोलियों में कर्म और संप्रदान के लिए

---

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७।

प्रायः एक ही प्रकार के कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं। खड़ी बोली में *को* दोनों विभक्तियों में आता है। संप्रदान में *के लिये* रूप विशेष आता है।

ट्रंप[1] के मतानुसार *को* की उत्पत्ति सं० *कृतं* से हुई है जो प्राकृत में *कितो > किओ* होकर *को* रूप धारण कर सकता है। प्राकृत में वास्तव में *कतं* और *कदं* रूप मिलते हैं। इस संबंध में सब से बड़ी कठिनाई हिंदी के प्राचीन रूप *कहु* के संबंध में है। ट्रंप का अनुमान है कि *कृतं* की जब *ऋ* का लोप हुआ होगा तब *त* महाप्राण हो गया होगा। यह विचार-शैली बहुत मान्य नहीं दिखलाई पड़ती।

हार्नली और बीम्स[2] *को* का संबंध सं० *कक्षं* से जोड़ते हैं। चैटर्जी[3] आदि अन्य आधुनिक विद्वान भी इस व्युत्पत्ति को ठीक समझते हैं, यद्यपि *कृतं* वाली व्युत्पत्ति को भी असंभव नहीं मानते। *कक्षं > कक्खं > काखं काहं > कँहु कहं > कौं > को* ये परिवर्तन की संभव सीढ़ियां हैं। अर्थ की दृष्टि से भी *कक्षं* 'बग़ल में' *को* 'निकट, ओर' से अधिक साम्य रखता है। हिंदी बोलियों में *को* से मिलते-जुलते रूपों की व्युत्पत्ति भी *कक्षं* से ही मानी जाती है।

२४७. हिंदी *के लिए* के *के* का संबंध प्रायः सं० *कृते* से जोड़ा जाता है। सत्यजीवन वर्मा[4] *के* को संबंध कारक के प्राचीन चिह्न *केरक* का रूपांतर मानते हैं। इन के मत में *को* भी *केहिं* का रूपांतर है जिस में *के* अंश *केरक* का विकसित रूप है और *हिं* अंश अपभ्रंश की सप्तमी विभक्ति का चिह्न है। किंतु *को* तथा *के* की व्युत्पत्ति के संबंध में यह मत अन्य विद्वानों द्वारा

---

[1] ट्रंप, सिंधी ग्रैमर, पृ० ११५

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५६
हा., ई. हि. ग्रै., § ३७५

[3] चै., बे. लै., § [illegible]५

[4] सत्यजीवन वर्मा: 'हिंदी के कारक चिह्न' शीर्षक लेख। ना. प्र. प., भाग ५, अंक ४

ग्रहण नहीं किया जा सकता है। प्रथम मत ही सर्वमान्य है।

के लिये *के लिये* अंश का संबंध सं० *लग्ने* से माना जाता है। हार्नली[1] के अनुसार *लिये* की उत्पत्ति सं० *लब्धे* 'लाभार्थ' से हुई है। किंतु यह मत सर्वमान्य नहीं है। संभव है कि इस का संबंध प्रा० √*ले* से हो। हिंदी बोलियों के *लगे*, *लागि* आदि रूपों की व्युत्पत्ति भी *लिये* के ही समान मानी जाती है। सं० *लग्ने* > प्रा० *लग्गे*, *लग्गि* > हि० बो० *लागि*, *लगे* ये संभव परिवर्तन हैं।

२४८. हिंदी बोलियों में प्रयुक्त चतुर्थी के अन्य मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति हार्नली के मतानुसार[1] संक्षेप में नीचे दी जाती है।

हि० बो० *ठाईं*	< अप० प्रा० *ठाणि*, *ठाणे*	< सं० *स्थाने*;
हि० बो० *पाहिं*	< अप० प्रा० *पक्खे**, *पाहे**	< सं० *पक्षे*;
हि० बो० *कने*	< अप० *कण्णे*	< सं० *कर्णे*;
हि० बो० *काज*	< प्रा० *कज्जे*	< सं० *कार्ये*;
हि० बो० *ताईं*, *तईं*	< अप० *तरिए*, *तइए*	< सं० *तरिते*;
हि० बो० *बाटे*	< प्रा० *वट्ट*, *वत्त*	< सं० *वार्त्ते*;
हि० बो० *बरे*		< सं० *वर*

उपकरण तथा अपादान

२४९. करण के चिह्न *ने* पर विचार किया जा चुका है। उपकरण के लिए हिंदी में *से* (अव० *से*, *सन*; ब्रज० *सों*, *सूं*; बुंदेली *सैं*) का प्रयोग होता है। यही चिह्न तथा कुछ अन्य विशेष चिह्न अपादान के लिए भी प्रयुक्त होते हैं।

---

[1]हा., ई. हि. ग्रै., § ३७५

बीम्स के मतानुसार[1] से का वास्तविक अर्थ 'साथ' है, 'अलग होना' हीं है, जैसे *राम से कहता है*, *चाकू से क़लम बनाओ*। अतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से बीम्स से का संबंध संस्कृत अव्यय *समं* से जोड़ते हैं। हार्नली[2] से का संबंध प्रा० *संतों*, *सुंतो* तथा सं० √*अस्* से लगाते हैं। आजकल प्रायः बीम्स का मत ही मान्य समझा जाता है।

२५०. केलाग के अनुसार ब्रज *तैं* या *ते* का संबंध सं० प्रत्यय—*तः* से है, जो अपादान के अर्थ में संस्कृत संज्ञाओं में प्रयुक्त होता था; जैसे सं० *पितृतः*, ब्रज *पिता तैं*।

संबंध

२५१. संबंध के रूपों का संबंध क्रिया से न होकर संज्ञा से होता है। इस का स्पष्ट प्रमाण यह है कि हिंदी में संबंध-सूचक कारक-चिह्नों में आगे आने वाली संज्ञा के अनुसार लिंगभेद होता है, जैसे *लड़के का लोटा*; *लड़के की गेंद*।

हिंदी पुल्लिङ्ग एकवचन में *का* (ब्रज० *को* या *कौ*; अव० *कर्ँ केर्*), बहुवचन में *के*, तथा स्त्रीलिंग में *की* का व्यवहार होता है।

इन रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में बीम्स[3] तथा हार्नली[4] एक मत हैं। इन की धारणा है कि ये समस्त रूप सं० *कृतः* तथा प्रा० *केरो* या *केरक* से संबद्ध हैं। हार्नली के अनुसार क्रमिक विकास नीचे लिखे ढंग से हुआ होगा। सं० *कृतः* > प्रा० *करितो*, *करिओ*, *केरको* > पुरानी हि० *केरओ*, *केरो*; हि० *केर*, *का*।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५८
[2] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७६
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ५९
[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७७

पिशेल तथा कुछ अन्य संस्कृत विद्वानों की धारणा थी कि हि० केर सं० *कार्य* से निकला है। केलाग[1] के अनुसार हि० *कौ* या *का* का सीधा संबंध सं० *कृतः* के प्राकृत रूप *किदः* या *कदः* से हो सकता है। चैटर्जी[2] *का* का संबंध प्रा०—क से करते हैं क्योंकि उन के मतानुसार सं० *कृतः* के प्राकृत रूप कअ में आधुनिक काल तक आते-आते *क* बना रहना संभव नहीं प्रतीत होता। साधारणतया बीम्स तथा हार्नली की व्युत्पत्ति अधिक मान्य मालूम होती है। *के, की* आदि रूप वचन तथा लिंग की दृष्टि से *का* के रूपांतर मात्र हैं।

अधिकरण

२५२. अधिकरण के लिए हिंदी में *में* (ब्रज० *मैं*) और *पर* (ब्रज० *पै*) का प्रयोग सब से अधिक होता है। अधिकरण के लिए कुछ संयोगात्मक प्रयोग हिंदी बोलियों में पाए जाते हैं।

में की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद नहीं है। *में* का संबंध सं० *मध्ये* > अप० प्रा० *मज्झे, मज्झि, मज्झहिं* > पुरानी हि० *माहि, महि* से जोड़ा जाता है।[3]

हिंदी *पर* का संबंध सं० *उपरि* से स्पष्ट ही है। हार्नली[4] सं० *परे* 'दूर' प्रा० *परि* से इस की व्युत्पत्ति का अनुमान करते हैं।

कारक-चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द

२५३. ऊपर दिए हुए कारक-चिह्नों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ संबंध-

---

[1] के., हि. ग्रै., § १५६

[2] चे., बे. लै., § ५०३

[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६०

[4] हा., ई. हि. ग्रै., § ३७८

सूचक अव्यय कारकों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। गुरु[1] के आधार पर इन में से अधिक प्रचलित शब्द व्युत्पत्ति सहित नीचे दिए जाते हैं। ये शब्द संबंध-कारक के रूपों में लगाए जाते हैं।

कर्म : *प्रति* (सं०), *तईं*;

करण : *द्वारा* (सं०), *ज़रिये* (अर०), *कारण* (सं०), *मारे* (सं० *मारितेन*);

संप्रदान : *हेतु* (सं०), *निमित्त* (सं०), *अर्थ* (सं०), *वास्ते* (अर०);

अपादान : *अपेक्षा* (सं०), *बनिस्बत* (फ़ा०), *सामने* (सं० *सन्मुख*), *आगे* (सं० *अग्रे*), *साथ* (सं० *सार्थ*);

अधिकरण : *मध्य* (सं०), *बीच* (सं० *विच्*), *भीतर* (सं० *अभ्यंतरे*), *अंदर* (फ़ा०), *ऊपर* (सं० *उपरि*); *नीचे* (सं० *नीचैः*) *पास* (सं० *पार्श्व*)।

२५४. हिंदी में कभी-कभी फ़ारसी-अरबी के कुछ कारक आ जाते हैं, जैसे *अज़* (*अज़खुद*), दर (*दरहक़ीक़त*)[2]। इन का प्रयोग बहुत ही कम पाया जाता है।

---

[1] गु., हि. व्या., § ३१५

[2] गु., हि. व्या., § ३१६

अध्याय ७

संख्यावाचक विशेषण

अ. पूर्ण संख्यावाचक

२५५. संख्यावाचक विशेषणों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तन का इतिहास विचित्र है। 'हिंदी ध्वनियों का इतिहास' शीर्षक अध्याय में इन पर कुछ विचार हो चुका है। यहां पर एक जगह क्रमबद्ध रूप से एक बार इन सब पर दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। ये विशेषण अन्य हिंदी शब्दों के समान प्रायः प्राकृतों में होकर संस्कृत से आए हुए नहीं मालूम पड़ते, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि समस्त आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के विशेषण पाली अथवा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के सदृश किसी अन्य सर्व-प्रचलित भाषा से संबंध रखते हैं। केवल किन्हीं किन्हीं रूपों में प्रादेशिक प्राकृत या अपभ्रंश की छाप है (जैसे, गुजराती *बे*, मराठी *दोन*, बंगाली *दुइ*)।[१] हिंदी संख्यावाचक विशेषणों का सब से प्राचीन ऐतिहासिक विवेचन बीम्स[२] के ग्रंथ में है। चैटर्जी[३] ने इस विषय पर कुछ नई सामग्री तथा अनेक नए उदाहरण दिए हैं। इन दोनों विवेचनों

---

१ चै., बे. लै., § ५११

२ बी., क. ग्रै., भा. २, § २६-२८

३ चै., बे. लै., भा. २, अ. ३

के आधार पर हिंदी के संख्यावाचक विशेषणों तथा उन में होने वाले मुख्य-मुख्य परिवर्तनों पर नीचे विचार किया गया है ।

२५६. हि एक < प्रा० *एक्क* < सं० एक । एक वाली संख्याओं में हि० एक के कई रूप मिलते हैं । *ग्यारह* में *ग्या* अंश प्रा० *एगा-* रूप से प्रभावित हुआ है अर्थात् क् का घोष रूप हो जाता है । सं० *एकादश* में *आ* *द्वादश* के प्रभाव के कारण माना जाता है । यह *आ* प्रा०, तथा हिंदी दोनों में चला आया है । संयुक्त संख्याओं में ए- का इ- रूप हो जाता है, जैसे *इक्कीस, इकतीस, इकतालीस* आदि । यह स्पष्ट ही है कि इन शब्दों में गुण की ध्वनि *(ए)* मूलध्वनि है तथा मूलस्वर *(इ)* गुण की ध्वनि के विकार के कारण हुआ है ।

२५७. हि० *दो* < प्रा० *दो* < सं० *द्वौ* । सं० *द्वौ* का *व* अंश प्रा० तथा गुज० के *बे* में मिलता है । हिंदी में भी इस का अस्तित्व संयुक्त संख्याओं में है, जैसे *बारह, बाइस, बत्तीस, बेयालीस* इत्यादि । समासों में दो के स्थान पर दु, दू तथा दो रूप मिलता है, जैसे *दुपट्टा, दुमहला, दुमुंहा, दुधारी, दूसरा, दूना, दोहरा, दोनों* ।

२५८. हि० *तीन* < प्रा० *तिण्णि* < सं० *त्रीणि* । संयुक्त संख्याओं में *ते, तें, ति* या *तिर* रूप मिलते हैं जिन पर सं० *त्रय* का प्रभाव स्पष्ट है, जैसे *तेरह, तेंतीस, तितालीस, तिरपन* । ये रूप *तिपाई, तिहाई, तेहरा, तियुरी* आदि शब्दों में भी मिलते हैं ।

२५९. हि० *चार* < प्रा० *चत्तारि* < सं० *चत्वारि* । संयुक्त संख्याओं तथा समासों में सं० मूल रूप *चतुर्* तथा प्रा० *चउरो* का प्रभाव मालूम होता है अतः हिंदी में *चौ, चौं* तथा *चौर* रूप मिलते हैं, जैसे, *चौदह, चौंतीस, चौरासी* । समासों में चौ रूप अधिक पाया जाता है, जैसे *चौमासा, चौपाई, चौपाये, चौपड़, चौपाल, चौधरी, चौखट, चौराहा* । नए समासों में चार का भी प्रयोग होता है जैसे, *चारपाई, चारखाना* ।

२६०. हि० पाच < प्रा० पंच < सं० पंच । कुछ संयुक्त संख्याओं के प्रा० रूप पण्ण तथा पन (जैसे, १५ पण्णरह, ३५ पन्नतीसं) का प्रभाव हिंदी की भी संयुक्त संख्याओं में मिलता है, जैसे पंद्रह, पैंतीस, पैंतालीस, तिरपन । इक्यावन, चौअन आदि संख्याओं में पन के स्थान में वन या अन हो जाता है । अन्य संयुक्त-संख्याओं तथा समासों में पाच का पच् रूप हो जाता है, जैसे पचीस, पचपन, पचासी, पचगुना, पचमेल, पचलड़ी । प्रा० पंच रूप हि० पंचायत, पंचमी, पंचवटी, पंचांग, पंचामृत, पंचपात्र आदि प्रचलित तत्सम शब्दों में अब भी मिलता है । कभी-कभी इस का रूप पँच भी हो जाता है, जैसे पँचमेल, पँचमुखी ।

२६१. हि० छः < प्रा० छ < सं० षट् (षष्) । हिंदी और प्राकृत रूप एक हैं यह तो स्पष्ट ही है, किंतु प्राकृत का रूप संस्कृत रूप से कैसे हो गया यह स्पष्ट नहीं होता । हि० सोलह तथा साठ आदि संख्याओं में सं० ष के अधिक निकट की ध्वनि पाई जाती है । अन्य संयुक्त संख्याओं में छ या छ्या रूप बराबर मिलता है, जैसे छब्बीस, छत्तीस, छ्यासठ, छ्यानवे । चैटर्जी[1] के मत से छः का संबंध प्रा० भा० आ० के एक कल्पित रूप चष्* या चक* से है । जो हो, प्राकृत काल के पहले इस का संबंध ठीक नहीं जुड़ता ।

२६२. हि० सात < प्रा० सत्त < सं० सप्त । यह संबंध स्पष्ट है । कुछ संयुक्त संख्याओं में प्रा० सत्त या सत रूप अब भी चला जाता है, जैसे सत्तरह, सत्ताईस, सतासी, सत्तानवे । इस के अतिरिक्त सैं रूप भी मिलता है, जैसे सैंतीस, सैंतालीस । इन में अनुनासिकता पैंतीस, पैंतालीस आदि के अनुकरण से हो सकती है । सरसठ, या सड़सठ, में सर या सड़ रूप असाधारण है । यह बादवाली संख्या अड़सठ से प्रभावित हो सकता है ।

---

[1] चै., बे. लै., § ५१७

२६३. हि० *आठ* < प्रा० *अट्ठ* < सं० *अष्ट*। संयुक्त संख्याओं में *अट्ठ*, *अठा*, *अठ* आदि रूप मिलते हैं, जैसे *अट्ठाईस*, *अठारह*, *अठहत्तर*। *अड़तीस*, *अड़तालीस*, और *अड़सठ* में *अठ* का *अड़* हो जाता है। इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है।

२६४. हि० *नौ* < प्रा० *नअ* < सं० *नव*। संयुक्त संख्याएं प्रायः *नौ* लगा कर नहीं बनाई जातीं, बल्कि दहाई की संख्या में सं० *ऊन* (एक कम) > प्रा० *ऊण* > हि० *उन* लगा कर बनती हैं, जैसे *उन्नीस*, *उन्तालीस*, *उनासी*, आदि। केवल *नवासी* और *निन्यानवे* में *नौ* लगाया जाता है। इन संख्याओं में संस्कृत में भी ऐसा ही होता है जैसे, सं० *नवाशीति*, *नवनवति*। *निनानवे* में *निना* अंश की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है।

२६५. हि० *दस* < प्रा० *दस* < सं० *दश*। *ग्यारह* आदि संयुक्त संख्याओं में प्रा० के *दह*, *रह*, *लह* आदि समस्त रूप वर्तमान हैं, जैसे *चौदह*, *अठारह*, *सोलह*। *दहाई* शब्द में भी *दह* वर्तमान है। प्रा० में *द* के *र* होने का कारण स्पष्ट नहीं है। हिंदी में *र* का *ल*, या *स* का *ह* हो जाना साधारण परिवर्तन है।

दहाई की संख्याओं के नाम प्रायः प्राकृत में होकर संस्कृत से आए हैं।

२६६. हि० *बीस* < प्रा० *बीसइ* < सं० *विंशति*। हिंदी का *कोड़ी* शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोल शब्द माना जाता है। कोल भाषाओं में बीसी से गिनती होती है। *चौबीस* और *छब्बीस* को छोड़ कर *इक्कीस* आदि संयुक्त संख्याओं में *बीस* का *ईस* रह जाता है, जैसे *बाईस*, *तेईस*, *पच्चीस* आदि।

२६७. हि० *तीस* < प्रा० *तीसा* < सं० *त्रिंशत्*। संयुक्त संख्याओं में भी *तीस* रूप रहता है, जैसे *इकतीस*, *बत्तीस*, *तेंतीस* आदि।

२६८. हि० *चालीस* < प्रा० *चत्तालीसा* < सं० *चत्वारिंशत्*। संयुक्त संख्याओं में प्रा० *चत्तालीसा* के *च* का लोप हो जाने से *चालीस*

का *तालीस* और *त* के लुप्त हो जाने से *यालीस* या *आलीस* रूपांतर मिलते हैं, जैसे *उनतालीस*, *इकतालीस*, *ब्यालीस*, *चवालीस* आदि।

२६९. हि० *पचास* < प्रा० *पंचासा* < सं० *पंचाशत्*। संयुक्त संख्याओं में *पचास* के स्थान में *पन* तथा *वन*, *व* *अन* रूप मिलते हैं। इन का संबंध प्रा० *पचासा* के प्रचलित रूप *पण्णासा*, *पण्ण* आदि से मालूम होता है, जैसे हि० *बावन* < प्रा० *बावण्णं*, *तिरपन*, *चौअन*। *उनन्चास* में *पचास* का रूपांतर वर्तमान है।

२७०. हि० *साठ* < प्रा० *सट्ठि* < सं० *षष्टि*। संयुक्त संख्याओं में *सठ* रूप मिलता है, जैसे *उनसठ*, *इकसठ*, *बासठ* आदि।

२७१. हि० *सत्तर* < प्रा० *सत्तरि* < सं० *सप्तति*। पाली में ही अंतिम *त* ध्वनि *र* में परिवर्तित हो गई थी। (प्रा० *सत्तति*, *सत्तरि*), किंतु इस का कारण स्पष्ट नहीं है। चैटर्जी[1] का मत है कि प्राचीन रूप *सत्तति* में *ति* आप ही *टि* हो गया और, *टि*, *डि* हो कर *रि* हो गया। किंतु यह कारण बहुत संतोषप्रद नहीं मालूम होता। जो हो हिं० *सत्तर* में *र* प्राकृत से आया है। संयुक्त संख्याओं में *सत्तर* के *स* का *ह* हो जाता है, जैसे *उनहत्तर*, *इकहत्तर*, *बहत्तर* आदि। *सतत्तर* में *ह* का लोप हो गया है, तथा *अठत्तर* में *ह*, *ट* को महाप्राण करके उस में मिल जाता है।

२७२. हि० *अस्सी* < प्रा० *असीइ* < स० *अशीति*। संयुक्त संख्याओं में *आसी* या *यासी* रूप मिलता है, जैसे *उनासी*, *इक्यासी*, *ब्यासी* आदि *अस्सी* में *स* का दोहरा हो जाना संभवतः पंजाबी से प्रभावित है।

२७३. हि० *नब्बे* < प्रा० *नव्वए* < सं० *नवति*। संयुक्त संख्याओं में *नवे* रूप मिलता है, जैसे *इक्यानवे*, *ब्यानवे*, *तिरानवे*, *चौरानवे* आदि। *इक्यासी*

---

[1] चै., बे. लै., § ५२८

आदि रूपों के प्रभाव के कारण कदाचित् *इक्यानवे* आदि में भी अ।आ गया है।

२७४. हि० *सौ* (१००) < प्रा० *सअ, सय* < सं० *शत* । संयुक्त संख्याओं में *सै* रूप भी मिलता है, जैसे *सैकड़ा, एक सै एक, चार सै* ।

२७५. हि० *हज़ार* (१०००) फ़ारसी का तत्सम शब्द है । सं० *सहस्र* के स्थान पर सं० *दशशत* का प्रचार मध्ययुग में हो गया था । कदाचित् इसी कारण से फ़ारसी का एक शब्द *हज़ार* मुसल्मान काल से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित हो गया ।

२७६. हि० *लाख* (१००,०००) सं० *लक्ष* से निकला है । समासों में *लख* रूप हो जाता है, जैसे *लखपती* ।

२७७. हि० *करोड़* (१०,०००,०००) की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है । सं० *कोटि* से मिलता-जुलता यह शब्द कभी गढ़ लिया गया हो तो असंभव नहीं ।

२७८. हि० *अरब* (१०००,०००,०००) सं० *अर्बुद* से संबंध रखता है । हि० *खरब* सं० *खर्व* (१००,०००,०००,०००) का रूपांतर है । अरब और खरब का प्रयोग साधारणतया असंख्यता का बोध कराने के लिए किया जाता है ।

आ. अपूर्ण संख्यावाचक

२७९. अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है । हिंदी तथा प्राचीन रूपों का संबंध नीचे दिखलाया गया है ।

$\frac{1}{4}$: हि० *पाव; पउआ* < प्रा० *पाव–, पाअ–* < सं० *पाद, पादक* । संयुक्त रूपों में सं० *पादिका* से आया हुआ *पई* रूप भी मिलता है, जैसे *अधपई* ।

हि० *चौथाई* सं० *चतुर्थिक* से संबद्ध है ।

$\frac{1}{3}$: हि० *तिहाई* का संबंध सं० *त्रिभागिक* से संभव है ।

: हि० *आधा* < सं० *अर्द्ध* ।

संयुक्त रूपों में *अध* रूप हो जाता है, जैसे *अधेला, अधसेरा, अधबर* ।

$१\frac{१}{२}$: हि० *डेढ़* < प्रा० *दिअड्ढ* < सं० *द्वयर्द्ध*।

$२\frac{१}{२}$: हि० *ढाई*, *अढ़ाई* < प्रा० *अड़तीय* < सं० *अर्द्ध-तृतीय*; हि० *ढ़ाई* भी सं० *अर्द्ध-तृतीय* से संबद्ध है। अ का लोप बलाघात के फलस्वरूप हुआ है।

$३\frac{१}{२}$: हि० अहुठ (साढ़े तीन) का प्रयोग प्रचलित नहीं है। यह शब्द सं० अर्द्ध-चतुर्थ से संबद्ध है। प्रा० में अड्ढ-चतुट्ठ* < अड्ढ-अउट्ठ* < अड्ढउट्ठ* आदि रूप संभव हैं। सं० में फिर से यह शब्द अध्युष्ठ के रूप में आ गया है।

$+\frac{१}{४}$: हि० *सवा* < प्रा० *सवाअ-* < सं० *सपाद*। *सवा* के बहुत रूपांतर हो जाते हैं, जैसे *सवाया*, *सवाई*, *सवाये*।

$+\frac{१}{२}$: हि० *साढ़े* < प्रा० *सड्ढ* < सं० *सार्द्ध*।

साढ़े विकृत रूप मालूम होता है।

$-\frac{१}{४}$: हि० *पौन* < सं० पादोन। केवल *पौन* शब्द $\frac{३}{४}$ के लिए प्रयुक्त होता है। अन्य संख्याओं में लगा देने से वह संख्या $\frac{१}{४}$ से घट जाती है, जैसे *पौने आठ* = $७\frac{३}{४}$।

इ. क्रम संख्यावाचक

२८०. इन का संबंध संस्कृत के प्रचलित क्रम-वाचक रूपों से सीधा नहीं है। संस्कृत के आधार पर नए ढंग से ये बाद को बने हैं।

हि० *पहला* < प्रा० पढिल्ल*, पथिल्ल* < सं० *प्र-थ + इल**।

संस्कृत *प्रथम* से आधुनिक *पहला* शब्द की उत्पत्ति संभव नहीं है।

बीम्स[1] के मत में हि० *पहला* सं० *प्रथर** रूप से निकला है।

हि० *दूसरा*, *तीसरा*।

---

[1] बी., क. ग्रै., भाग २, § २७

सं० *द्वितीय*, *तृतीय*, से हिंदी *दूजा*, *तीजा* तो निकल सकते हैं किंतु *दूसरा*, *तीसरा* नहीं निकल सकते। बीम्स[1] इन का संबंध सं० *द्वि+सृतः*, *त्रि+सृतः* से जोड़ते हैं।

हि० *चौथा* < प्रा० *चउत्थ* < सं० *चतुर्थ*। तिथि तथा लगान के लिए *चौथ* रूप प्रयुक्त होता है।

चार की संख्या तक क्रमवाचक विशेषणों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न ढंगों से हुई है। इस के आगे *-वाँ* लगा कर समस्त रूप बनाए जाते हैं, जैसे *पाँचवाँ*, *सातवाँ*, *बीसवाँ* इत्यादि। ये रूप सं० *—तम* से निकले माने जाते हैं।[2] हि० *छठा* प्रा० में भी *छठा* था। यह सं० *षष्ठ* का रूपांतर है।

ई. आवृत्ति संख्यावाचक

२८१. हि० आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण *दुगना*, *तिगना*, *चौगुना*, सं० *गुण* लगा कर बने हैं।

उ. समुदाय संख्यावाचक

२८२. हि० में कुछ समुदायवाचक विशेषण प्रचलित हैं किंतु ये प्रायः अन्य भाषाओं के हैं। कौड़ियां गिनने में चार के लिए *गंडा* शब्द आता है। बीस की संख्या के लिए *कोड़ी* शब्द का ज़िक्र किया जा चुका है। बारह के लिए आधुनिक समय में अंग्रेज़ी *दर्जन* प्रचलित हो गया है। अंग्रेज़ी का *ग्रोस* शब्द बारह दर्जन के लिए कुछ प्रचलित हो चला है।

परिशिष्ट

पूर्ण संख्यावाचक

२८३. हिंदी पूर्ण संख्यावाचक विशेषण तथा उन के संस्कृत तथा प्राप्त

[1] बी., क. ग्रै., भाग २, § २७

[2] बी., क. ग्रै., भा. २, § २७

प्राकृत रूप तुलना के लिए नीचे दिये जाते हैं। प्राकृत रूपों के इकट्ठा करने में हार्नली के व्याकरण[1] से विशेष सहायता मिली है।

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(१) एक	एक, एक्को, एगो, एओ	एक
(२) दो	दो, दुए, दुये, दोण्णि, बे	द्वौ (√द्वि)
(३) तीन	तिण्णि, तओ	त्रीणि (√त्रि)
(४) चार	चत्तारि, चत्तारो, चउरो	चत्वारि (√चतुर्)
(५) पांच	पञ्च	पंच (पंचन्)
(६) छः	छ॰	षट् (√षष्)
(७) सात	सत्त	सप्त (√सप्तन्)
(८) आठ	अट्ठ	अष्ट, अष्टौ
(९) नौ	णअ, नव, नअ	नव
(१०) दस	दस, दह, डह, रह	दश
(११) ग्यारह	एआरह	एकादश
(१२) बारह	बारह	द्वादश
(१३) तेरह	तेरह	त्रयोदश
(१४) चौदह	चउद्दह	चतुर्दश
(१५) पंद्रह	पण्णरह, पण्णरहो, पण्णारहो	पंचदश
(१६) सोलह	सोलह	षोडश
(१७) सत्रह	सत्तरह	सप्तदश

[1] हा, ई. हि. ग्रे., § ३५७

	हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(१८)	अठारह	अट्ठरह, अट्ठारह	अष्टादश
(१९)	उन्नीस	उनवीसइ, उनवीसा, एकूनवीसा;	ऊनविंशति,
(२०)	बीस	वीसा, वीसइ	विंशति
(२१)	इक्कीस	एक्क वीसा	एकविंशति
(२२)	बाईस	बावीसं, बावीसा	द्वाविंशति
(२३)	तेईस	तेवीसं, तेवीसा	त्रयोविंशति
(२४)	चौबीस	चउव्वीसं	चतुर्विंशति
(२५)	पच्चीस	पंचवीसा,* पंचवीस*	पंचविंशति
(२६)	छब्बीस	छव्वीसं	षड्विंशति
(२७)	सत्ताईस	सत्तावीसा	सप्तविंशति
(२८)	अट्ठाईस	अट्ठावीसा	अष्टाविंशति
(२९)	उंतीस	अणवीसा, एकूणवीसा	ऊनत्रिंशत्
(३०)	तीस	तीसा, तीसआ	त्रिंशत्
(३१)	इकतीस		एकत्रिंशत्
(३२)	बत्तीस	वत्तीसा	द्वात्रिंशत्
(३३)	तेंतीस	तेत्तीसा	त्रयस्त्रिंशत्
(३४)	चौंतीस		चतुस्त्रिंशत्
(३५)	पैंतीस	पन्नतीसं, पणतीसं	पंचत्रिंशत्
(३६)	छत्तीस		षट्त्रिंशत्
(३७)	सैंतीस	सत्ततीसं	सप्तत्रिंशत्
(३८)	अड़तीस	अटठतीसा	अष्टात्रिंशत्

	हिंदी	प्राकृत	संस्कृत	
(३९)	उंतालीस		ऊनचत्वारिंशत्	
(४०)	चालीस	चत्तालीसा	चत्वारिंशत्	
(४१)	इकतालीस	एकचत्तालीसा	एकचत्वारिंशत्	
(४२)	ब्यालीस	बायालीसं	द्वि	”
(४३)	तितालीस	तेआलीसा	त्रि	”
(४४)	चवालीस	चोवालीसा	चतुश्	”
(४५)	पैंतालीस	पन्नचत्तालीसा	पंच	”
(४६)	छियालीस	*छचत्तालीसा	षट्	”
(४७)	सैंतालीस	*सत्तअत्तालीसं	सप्त	”
(४८)	अड़तालीस	अड्याले, अट्ठअत्तालीसं	अष्ट	”
(४९)	उंचास	ऊणवंचासा, ऊणपंचासा	ऊनपंचाशत्	
(५०)	पचास	पणासा, पंचासा*, पन्ना	पंचाशत्	
(५१)	इक्यावन		एकपंचाशत्	
(५२)	बावन	बावणं	द्वा	”
(५३)	तिरपन	त्रिप्पण*, तेवण	त्रि	”
(५४)	चौअन	चउप्पण*	चतुः	”
(५५)	पचपन	पंचावण	पंच	”
(५६)	छप्पन	छप्पण*	षट्	”
(५७)	सत्तावन	सत्तावणं*	सप्त	”
(५८)	अट्ठावन	अट्ठवणं*	अष्ट	”
(५९)	उनसठ		ऊनषष्टि	

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(६०) साठ	सट्ठि, सठ्ठी	षष्टि
(६१) इकसठ		एकषष्टि
(६२) बासठ		द्वा ”
(६३) तिरसठ		त्रि ”
(६४) चौंसठ		चतुः ”
(६५) पैंसठ		पंच ”
(६६) छियासठ		षट् ”
(६७) सड़सठ	सत्तसट्ठी	सप्त ”
(६८) अड़सठ	अट्ठसट्ठी	अष्ट ”
(६९) उनहत्तर		ऊनसप्तति
(७०) सत्तर	सत्तरि	सप्तति
(७१) इकहत्तर		एकसप्तति
(७२) बहत्तर		द्वि ”
(७३) तिहत्तर		त्रि ”
(७४) चौहत्तर		चतुस् ”
(७५) पचहत्तर		पञ्च ”
(७६) छिहत्तर		षट् ”
(७७) सतत्तर		सप्त ”
(७८) अठत्तर		अष्ट ”
(७९) उनासी		एकोनाशीति
(८०) अस्सी	असीइ	अशीति

हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
(८१) इक्यासी		एकाशीति
(८२) बयासी		द्व्यशीति
(८३) तिरासी		त्र्यशीति
(८४) चौरासी		चतुरशीति
(८५) पचासी		पञ्चाशीति
(८६) छियासी		षडशीति
(८७) सतासी		सप्ताशीति
(८८) अठासी		अष्टाशीति
(८९) नवासी		नवाशीति
(९०) नव्वे	नउए, नव्वए*	नवति
(९१) इक्यानवे		एकनवति
(९२) बानवे		द्वि "
(९३) तिरानवे		त्रि "
(९४) चौरानवे		चतुर् "
(९५) पंचानवे		पञ्च "
(९६) छियानवे		षण्णवति
(९७) सत्तानवे	सत्तानउए	सप्तनवति
(९८) अट्ठानवे		अष्टानवति
(९९) निन्यानवे		नवनवति
(१००) सौ	सत, सय, सआ, सअं	शत

	हिंदी	प्राकृत	संस्कृत
१०५	एक सौ पाँच	पंचोत्तरसउ	पञ्चोत्तर शत
२००	दो सौ		द्विशत
१,०००	हज़ार (दस सौ)		सहस्र
१००,०००	लाख (सौ हज़ार)		लक्ष
१००,००,०००	करोड़ (सौ लाख)		कोटि
१००,००,००,०००	अरब (सौ करोड़)		अर्बुद
१००,००,००,००,०००	खरब (सौ अरब)		खर्व

अध्याय ८

सर्वनाम

२८४. हिंदी सर्वनामों के नीचे लिखे आठ मुख्य भेद हैं—

अ —	पुरुषवाचक	(मैं, तू)
आ —	निश्चयवाचक	(*यह, वह*)
इ —	संबंधवाचक	(*जो*)
ई —	नित्यसंबंधी	(*सो*)
उ —	प्रश्नवाचक	(*कौन, क्या*)
ऊ —	अनिश्चयवाचक	(*कोई, कुछ*)
ए —	निजवाचक	(*अपना*)
ऐ —	आदरवाचक	(*आप*)

नीचे इन पर तथा विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों पर व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार किया गया है। हिंदी सर्वनामों में प्रायः संज्ञाओं के समान ही कारक-चिह्न लगते हैं, अतः सर्वनामों की कारक-रचना पर विचार करना व्यर्थ होगा।

अ. पुरुषवाचक (मैं, तू)

क. उत्तमपुरुष (मैं)

२८५. उत्तमपुरुष मैं के नीचे लिखे मुख्य रूपांतर होते हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	*मैं*	*हम*
विकृत रूप	*मुझ* (संप्र० *मुझे*)	*हम* (संप्र० *हमें*)
संबंध कारक	*मेरा*	*हमारा*

हि० *मैं* का संबंध संस्कृत तृतीया के रूप *मया* से माना जाता है—सं० *मया* > प्रा० *मइ, मए*; अप० *मइं, मईं* > हि० *मैं*। सं० *अहं* से इस का संबंध कुछ भी नहीं है।[1] चैटर्जी के अनुसार *मैं* का अनुनासिक अंश सं० तृतीया—*एन* के प्रभाव के कारण हो सकता है।[2]

२८६. हि० *मुझ* का संबंध षष्ठी कारक के प्राकृत रूप *मह* के अतिरिक्त एक अन्य रूप *मज्झ* < पा० *मह्यं*, सं० *मह्यं* से किया जाता है। *मुझ* या *मझ* का प्रयोग पुरानी हिंदी में षष्ठी के अर्थ में भी होता था।[3] *उ* का आगम हि० *तुझ* के प्रभाव के कारण हो सकता है। चतुर्थी में *मुझ को* के अतिरिक्त *मुझे* रूप भी प्रयुक्त होता है। यह *ए* विकृत रूप का चिह्न है जो *मुझ* में ऊपर से लगा है।

२८७. हि० *हम* का संबंध प्रा० *अम्हे* या *म्हे* से है जिन के *म* और *ह* में स्थान-परिवर्तन हो गया है। इन प्राकृत रूपों की व्युत्पत्ति *अस्मे* से मानी जाती है। यह वैदिक भाषा में वास्तव में मिलता है। कुछ कारकों में संस्कृत में भी इस के रूपांतर पाए जाते हैं, जैसे *अस्मान्, अस्माभिः*। संस्कृत प्रथम पुरुष बहुवचन *वयं* से हि० *हम* का किसी तरह भी संबंध नहीं हो सकता। हि० *हमें* का संबंध प्रा० अप० *अम्हइं* से किया जाता है।[4]

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[2] चै., बे. लै., § ५३६
[3] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६३
[4] बी., क. ग्रै., भा. २, § ६४

२८८. ब्रज आदि पुरानी हिंदी के *हौं* का संबंध सं० *अहं* या *अहकं** से है। शौरसेनी में इस का रूप *अहमं* तथा *अहअं* और अपभ्रंश में *हमुं* तथा *हउं* मिलता है। अप० *हमुं* से ब्रज *हउं* या *हौं* रूप होना संभव है।

संबंध को छोड़ कर अन्य कारकों में ब्रजभाषा में एक वचन में *मो* विकृत रूप मिलता है। बीम्स के मतानुसार इस का संबंध सं० षष्ठी के *मम* रूप से है।[1] प्रा० में षष्ठी में *मम, मह, मज्झ* तथा *मे* रूप मिलते हैं। इन के अतिरिक्त *मह* रूप भी पाया गया है। अप० में यही *महुं* हो जाता है। *महुं* से *मों* तथा *मो* हो सकना असंभव नहीं है।

ख. मध्यमपुरुष (तू)

२८९. मध्यम पुरुष सर्वनाम के मुख्य रूपांतर निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूलरूप	*तू*	*तुम*
विकृत रूप	*तुझ* (संप्र० *तुझे*)	*तुम* (संप्र० *तुम्हें*)
संबंध कारक	*तेरा*	*तुम्हारा*

हि० *तू* का संबंध सं० *त्वया* > प्रा० *तुम, तुअं* > अप० > *तुहं* से है।

ब्रज आदि पुरानी हिंदी का *तैं* रूप हिंदी *मैं* की तरह सं० *त्वया* > प्रा० *तइ, तए* > अप० *तइं* से संबंध रखता है।

२९०. हि० *तुझ* का संबंध प्राकृत के षष्ठी के *तुह* के रूपांतर *तुज्झ* तथा सं० *तुभ्यं* से माना जाता है। प्रा० के पूर्व संस्कृत में इस तरह के रूप नहीं मिलते। हि० *तुझे* में *ए* विकृत रूप का चिह्न है।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. २. § ६३

ब्रज० *तो* अप० *तुहं* > सं० *तुस्स** से निकला माना जाता है।

२९१. हि० *तुम* का संबंध प्रा० *तुम्हे*, *तुम्ह* < सं० *तुष्मे** से माना जाता है। हि० *तुम्हें* का संबंध प्रा० अप० *तुम्हइं* से है।

२९२. षष्ठी के *मेरा*, *हमारा*, *तेरा*, *तुम्हारा* रूप विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं अतः साथ में आने वाली संज्ञा के अनुरूप इन के लिंग तथा वचन में भेद होता है। र लगा कर बने हुए षष्ठी के इन सब रूपों का संबंध *करक*, *करौ*, *केरा*, *करा* आदि प्राकृत प्रत्ययों के प्रभाव से माना जाता है। उदाहरण के लिए प्रा० *मह केरो* या *मह करो* रूप से हि० *म्हारो*, *मारो*, *मेरा* आदि समस्त रूप निकल सकते हैं—

अम्ह करको > *अम्ह अरओ* > *अम्हारौ* > *हमारो* > *हमारा* ;

तुम्ह करको > *तुम्ह अरओ* > *तुम्हारौ* > *तुम्हारो* > *तुम्हारा*।

आ. निश्चयवाचक (*यह*, *वह*)

क. निकटवर्ती (*यह*)

२९३. संस्कृत के अन्यपुरुष के रूप हिंदी में इस अर्थ में प्रचलित नही हैं। हिंदी में अन्यपुरुष का काम निश्चयवाचक सर्वनामों से लिया जाता है। हिंदी में निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम *यह* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

यह (*इ* : *य*)

	एक०	बहु०
मूल रूप	*यह*	*ये*
विकृत रूप	*इस* (संप्र० *इसे*)	*इन* (संप्र० *इन्हें*)

हि० *यह*, *ये* की व्युत्पत्ति सं० *एषः एते एतानि* आदि रूपों से स्पष्ट ही है। हार्नली[1] भी इन का संबंध सं० *एषः* से जोड़ते हैं। चैटर्जी के

[1] हा., ई. हि. ग्रै., § ४३८

मतांनुसार निकटवर्ती निश्चयवाचक समस्त रूपों का संबंध सं० मूल शब्द *एत-(एषः, एषा, एतद्)* से है ।[1]

हि० *इस* स्पष्ट रूप से प्रा० *एअस्स* < सं० *अस्य* से संबद्ध मालूम होता है । चैटर्जी इस का संबंध सं० *एतस्य* से जोड़ते हैं । हि० *इन* रूप प्रा० *एदिणा, एइणा* < सं० *एतेन* से संबद्ध नहीं हो सकता । *इन* के *-न* में सं० संबंध-कारक बहुवचन के चिह्न का प्रभाव मालूम होता है ।

इसे और *इन्हें* मूल रूपों के विकृत रूप हैं ।

ख. दूरवर्ती (*वह*)

२६४. हिंदी दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम *वह* के मुख्य रूपांतर निम्नलिखित हैं—

वह (उ : व)

	एक०	बहु०
मूल रूप	*वह*	*वे*
विकृत रूप	*उस* (संप्र० *उसे*)	*उन* (संप्र० *उन्हें*)

सं० *तद्-(सः, सा, तत्)* के रूपों से हिंदी के इस सर्वनाम का संबंध नहीं है । चैटर्जी[2] के अनुसार हि० *वह* सं० के कल्पित रूप *अव** > प्रा० *ओ** से संबंध रखता है । ईरानी में *अव* और *ओ* रूप पाए जाते हैं । दरद भाषाओं में भी ये वर्तमान हैं । यदि यह व्युत्पत्ति ठीक है तो हि० *उस* का संबंध प्रा० *अउस्स** < सं० *अवस्य** से जोड़ा जा सकता है । इसी प्रकार *वे* और *उन* के संबंध में कल्पनाएं की जा सकती हैं । *उसे* और *उन्हें* विकृत रूप माने जा सकते हैं । वास्तव में इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है ।

---

[1] चै., बे. लै., § ५६६

[2] चै., बे. लै., § ५७२

इ. संबंधवाचक (*जो*)

२६५. हिंदी संबंधवाचक सर्वनामों के रूपांतर निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूल रूप :	*जो*	*जो*
विकृत रूप :	*जिस* (संप्र० *जिसे*)	*जिन* (संप्र० *जिन्हें*)

हि० *जो* का संबंध संस्कृत *यः* से है। हि० *जिस* < *यस्य* > प्रा० *जिस्स, जस्स* से संबद्ध है। हि० *जिन* सं० षष्ठी बहुवचन *याना** से निकला माना जाता है यद्यपि साहित्यिक संस्कृत में *येषा* रूप प्रचलित है। *जिसे* और *जिन्हें* इस ढंग के अन्य प्रचलित रूपों के समान ही बने हैं।

ई. नित्यसंबंधी (*सो*)

२६६. हिंदी नित्यसंबंधी सर्वनाम *सो* का व्यवहार साहित्यिक हिंदी में कम होता है। इस के स्थान पर प्रायः दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम व्यवहृत होने लगा है। हि० *सो* के निम्नलिखित रूपांतर संभव हैं—

	एक०	बहु०
मूल रूप :	*सो*	*सो*
विकृत रूप :	*तिस* (संप्र० *तिसे*)	*तिन* (संप्र० *तिन्हें*)

व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिंन्दी *सो* का संबंध सं० *सः* > प्रा० *सो* से है। पुरानी हिंदी तथा बोलियों में *सो* का प्रयोग अन्यपुरुष के अर्थ में बराबर मिलता है। हि० *तिस* का संबंध प्रा० *तस्स* < सं० *तस्य* से है। हि० *तिन* की उत्पत्ति प्रा० *तेणं* < सं० *ताना** (*तेषा*) से मानी जाती है।

उ. प्रश्नवाचक (*कौन, क्या*)

२६७. हिंदी प्रश्नवाचक सर्वनाम *कौन* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूल रूप :	*कौन*	*कौन*
विकृत रूप :	*किस* (संप्र० *किसे*)	*किन* (संप्र० *किन्हें*)

हि० *कौन* की व्युत्पत्ति प्रा० *कवन, कवण, कोउण* < सं० *कः पुनः* से मानी जाती है। हिंदी की बोलियों में *कौन* के स्थान पर *को* के रूप भी मिलते हैं जिन का संबंध सं० *कः* के से सीधा है। हि० *किस* का संबंध प्रा० *कस्स* < सं० *कस्य* से स्पष्ट है। हि० *किन* की उत्पत्ति प्रा० *केणा* सं० *काना** (*केषां*) कल्पित रूप से मानी जाती है। *किसे, किन्हें* रूप अन्य प्रचलित रूपों के समान बने प्रतीत होते हैं।

हि० नपुंसकलिंग *क्या* की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। सं० *किं* से इस का संबंध संभव नहीं है।

ऊ. अनिश्चयवाचक (*कोई, कुछ*)

२९८. हिंदी अनिश्चयवाचक सर्वनाम *कोई* के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—

	एक०	बहु०
मूल रूप	*कोई*	*कोई*
विकृत रूप	*किसी*	*किन्हीं*

हि० *कोई* की व्युत्पत्ति प्रा० *कोवि* < सं० *कोऽपि* से मालूम पड़ती है। हि० *किसी* का संबंध सं० *कस्यापि* से हो सकता है। हि० *किन्हीं* रूप की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

हि० नपुंसकलिंग *कुछ* का संबंध सं० *कश्चिद्* रूप से जोड़ा जाता है। प्रा० में *कच्छु** संभावित रूप माना जाता है।

ए. निजवाचक (*आप*)

२९९. हि० निजवाचक सर्वनाम *आप*, प्रा० *अप्पा, आपा* सं० *आत्मन्* से निकला है। हि० *अपना* वास्तव में *आप* का संबंध-कारक रूप

है किंतु हिंदी में निजवाचक होकर स्वतंत्र शब्द हो गया है। इस रूप का संबंध प्रा० *अप्पाणो*> अप० *अप्पाणु* जैसे रूपों से माना जाता है। सं० *आत्मा* से संबद्ध प्रा० *अत्ता, अत्ताणो* रूप आधुनिक भाषाओं में नहीं आ सके हैं। हि० *आपस* का संबंध प्रा० *आपस्स** < सं० *आत्मस्य** संभावित रूपों से जोड़ा जाता है।

ऐ. आदरवाचक

३००. व्युत्पत्ति की दृष्टि से आदरवाचक *आप* और निजवाचक *आप* एक ही शब्द हैं। शिष्ट हिंदी में मध्यम पुरुष *तू* या *तुम* के स्थान पर प्रायः सदा ही *आप* व्यवहृत होता है।

ओ. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनाम

३०१. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनामों के मुख्य रूप निम्न-लिखित हैं[१]—

परिमाणवाचक	गुणवाचक
इतना	*ऐसा*
उतना	*वैसा*
तितना	*तैसा*
जितना	*जैसा*
कितना	*कैसा*

व्युत्पत्ति की दृष्टि से परिमाणवाचक रूपों का संबंध सं० *इयत्, कियत्* > प्रा० *एत्तिय, केत्तिय* आदि से है।[२] *—ना* को बीम्स ने लघुतासूचक अर्थ का द्योतक माना है।[३]

गुणवाचक रूपों का संबंध सं० *यादृश्, तादृश्* आदि रूपों से जोड़ा जाता है, जैसे सं० *कीदृश्* > प्रा० *केरिसा* > हि० *कैसा*।

---

[१] गु., हि. व्या., § १४१

[२] हा., ई० हि. ग्रै.; § २६६

[३] बी., क. ग्रै., २ § ७४

अध्याय ९

क्रिया

अ. संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिंदी क्रिया[1]

३०२. एक-दो कालों के रूपों को छोड़ कर संस्कृत क्रिया पूर्णतया संयोगात्मक थी। छः प्रयोगों, दस कालों तथा तीन पुरुष और तीन वचनों को लेकर प्रत्येक संस्कृत धातु के ५४० (६ × १० × ३ × ३) भिन्न रूप होते हैं। फिर संस्कृत की समस्त धातुओं के रूप समान नहीं बनते। इस दृष्टि से संस्कृत की २००० धातुयें दस श्रेणियों में विभक्त हैं, जिन्हें गण कहते हैं। एक गण की धातुओं के रूप दूसरे गण की धातुओं से भिन्न होते हैं। इस तरह संस्कृत क्रिया का ढंग बहुत पेचीदा है।

यह अवस्था बहुत दिन नहीं रह सकती थी। म० भा० आ० काल में आते-आते क्रिया की बनावट सरल होने लगी। यद्यपि मा० भा० आ० में क्रिया संयोगात्मक ही रही किंतु पाली क्रिया में उतने रूप नहीं मिलते जितने संस्कृत में पाए जाते हैं। दस गणों में से पाँच (१,४,६,७,१०) के रूप पाली में इतने मिलते-जुलते होने लगे कि इन्हें साधारणतया एक ही गण माना जा सकता है। शेष गणों के रूपों पर भी भ्वादिगण (१) का प्रभाव अधिक पाया जाता है। संस्कृत की धातुयें भ्वादिगण में सब से अधिक संख्या

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, अ. १

में पाई जाती हैं । संभवतः भ्वादिगण का अन्य गणों के रूपों पर अधिक प्रभाव का यही कारण रहा हो । इस के अतिरिक्त तीन वचनों में से द्विवचन पाली से लुप्त हो गया, और छः प्रयोगों में से आत्मनेपद और परस्मैपद में अन्तिम का प्रभाव विशेष हो जाने से वास्तव में पाँच ही प्रयोग पाली में रह गए। संस्कृत के लुट् और लृङ् के निकल जाने से पाली के लकारों की संख्या भी दस से आठ रह गई। इस तरह किसी एक धातु के पाली में साधारणतया २४० (५ × ८ × २ × ३) ही रूप हो सकते हैं।

प्राकृतों की क्रिया सरलता में एक क़दम और आगे बढ़ गई। महाराष्ट्री में गणों का प्रायः अभाव है; समस्त क्रियायें साधारणतया प्रथम भ्वादिगण के समान रूप चलाती हैं। छः प्रयोगों में से केवल तीन—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा प्रेरणार्थक—रह गए। द्विवचन तो लौट कर आया ही नहीं। कालों में केवल चार—वर्तमान, आज्ञा, भविष्य तथा कुछ विधि के चिह्न रह गए। कालों के कम हो जाने से कृदंत के रूपों का व्यवहार अधिक होने लगा जिस का प्रभाव आ० आ० भा० की क्रिया के इतिहास पर विशेष पड़ा। अब तक भी क्रिया के अधिकांश रूप संयोगात्मक ही थे यद्यपि इस संबंध में कुछ गड़बड़ी शुरू हो गई थी।

प्रा० तथा म० आ० भा० की क्रिया के विकास के संबंध में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि संस्कृत, पाली तथा प्राकृत तीनों में क्रिया संयोगात्मक ही रही किन्तु रूपों की संख्या में क्रमशः कमी होती गई। जब प्रत्येक प्रयोग, काल तथा वचन आदि के अर्थों को व्यक्त करने के लिए धातु के पृथक्-पृथक् रूप नहीं रह गए तब वियोगात्मक ढंग से नए रूपों का बनाया जाना स्वाभाविक था। यह अवस्था हमें आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आकर मिलती है।

अन्य आ० भा० आ० भाषाओं की क्रियाओं की तरह ही हिंदी क्रिया के रूपांतरों का ढंग भी अत्यंत सरल है। पाँच धातुओं को छोड़ कर शेष हिंदी

धातुओं में संस्कृत के गणों के समान किसी प्रकार का भी श्रेणी-विभा नहीं है। प्रयोगों के भावों को प्रकट करने का ढंग भी हिंदी का अपना न है। इस की सहायता से हिंदी में प्रयोगों के भाव स्पष्ट रूप से किंतु सरलत पूर्वक प्रकट हो जाते हैं। ये रूप संयोगात्मक हैं। कालों की संख्या पंद्रह लगभग है किंतु ये प्रायः कृदंत अथवा कृदंत और सहायक क्रिया के संयो से बनते हैं। संस्कृत कालों से विकसित काल हिंदी में दो तीन ही हैं। म० भा० आ० भाषाओं के समान हिंदी में एकवचन और बहुवचन ये दो ही वचन है जिन के तीन पुरुषों में तीन-तीन रूप होते हैं। सब से बड़ी विशेषता यह है कि हिंदी क्रिया के रूपों की बनावट बहुत बड़ी संख्या में वियोगात्मक हो गई है। शुद्ध संयोगात्मक रूप बहुत कम मिलते हैं। कुछ में दोनों प्रकार के रूपों का मिश्रण है। इस संबंध में विस्तार-पूर्वक आगे विचार किया जायगा।

आ. धातु

३०३. धातु क्रिया के उस अंश को कहते हैं जो उस के समस्त रूपांतरों में पाया जाता हो, जैसे *चलना*, *चला*, *चलेगा*, *चलता* आदि समस्त रूपों में *चल्* अंश समान रूप से मिलता है अतः *चल्* धातु मानी जायगी। धातु की धारणा वैयाकरणों के मस्तिष्क की उपज है। यह भाषा का स्वाभाविक अंग नहीं है। क्रिया के —*ना* से युक्त साधारण रूप से —*ना* हटा देने पर हिंदी धातु निकल आती है, जैसे *खाना*, *देखना*, *चलना* आदि में *खा*, *देख*, *चल* धातु हैं।

वैयाकरणों[1] के अनुसार संस्कृत धातुओं की संख्या लगभग २००० मानी जाती है। इन में से केवल ८०० का प्रयोग वास्तव में प्राचीन साहित्य में मिलता है। इन ८०० में २०० के लगभग तो केवल वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों में प्रयुक्त हुई हैं, ५०० वैदिक और संस्कृत दोनों साहित्यों में मिलती हैं और १००

---

[1] चै., बे. लै., § ६१४

से कुछ अधिक केवल संस्कृत में मिलती हैं। म० भा० आ० में आते-आते इन ८०० धातुओं की संख्या और रूपों में परिवर्तन हुआ। जैसा ऊपर कहा जा चुका है वैदिक काल की लगभग २०० धातुयें संस्कृत काल में ही लुप्त हो चुकी थीं। आगे चल कर संस्कृत में प्रयुक्त धातुओं में से भी बहुतों का प्रचार नहीं रहा। प्राचीन धातुओं के आधार पर कुछ नई धातुयें भी बन गईं तथा कुछ बिल्कुल नई धातुयें तत्कालीन प्रचलित भाषाओं से भी आ गईं। प्राकृत धातुओं की ठीक-ठीक गणना अभी कदाचित् नहीं हो पाई है।

हार्नली[1] के अनुसार हिंदी धातुओं की संख्या लगभग ५०० है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी धातुयें दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं—मूल धातु और यौगिक धातु। हिंदी मूल धातु वे हैं जो संस्कृत से हिंदी में आई हैं। हार्नली के अनुसार इन की संख्या ३९३ है। मूल धातुओं में भी कई वर्ग किए जा सकते हैं। कुछ मूल धातुयें संस्कृत धातुओं से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं (हि० *खा* < सं० *खाद्*), कुछ में संस्कृत के किसी विशेष गण के रूप का प्रभाव पाया जाता है या गण-परिवर्तन हो जाता है (हि० *नाच* < सं० *नृत्-य*) और कुछ में वाच्य का परिवर्तन मिलता है (हि० *बेच* < सं० *विक्रि-य*) इस दृष्टि से हार्नली ने मूल धातुओं को सात वर्गों में रक्खा है। चैटर्जी[2] मूल धातुओं को निम्न-लिखित चार मुख्य वर्गों में रखते हैं—

(१) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० से आई हैं (तद्भव)।

(२) वे मूल धातुयें जो प्रा० भा० आ० की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से आई हैं (तद्भव)।

(३) वे मूल धातुयें जो आधुनिक काल में संस्कृत से ले ली गई हैं (तत्सम या अर्द्धतत्सम)।

---

[1] हार्नली, 'हिंदी रूट्स', जर्नल आव दि एशियाटिक सोसायटी आव बेंगाल, १८८०, भाग १

[2] चै., बे. लै., § ६१५

(४) वे मूल धातुयें जिन की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। ये सब देशी हों यह आवश्यक नहीं है।

हिंदी यौगिक धातुयें वे कहलाती हैं जो संस्कृत धातुओं से तो नहीं आई हैं किंतु जिन का संबंध या तो संस्कृत रूपों से है और या वे आधुनिक काल में गढ़ी गई हैं। ये तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—

(१) नाम धातु (हि० *जम* < सं० *जन्म*)।

(२) संयुक्त धातु (हि० चुक < सं० च्युत् + कृ)।

(३) अनुकरण मूलक, अथवा एक ही धातु को दोहरा कर बनाई हुई धातुयें (हि० *फूकना*, *फड़फड़ाना*)।

हार्नली के अनुसार हिंदी यौगिक धातुओं की संख्या १८१ है।

मूल और यौगिक धातुओं के अतिरिक्त कुछ विदेशी भाषाओं की धातुयें तथा शब्द हिंदी में धातुओं के समान प्रयुक्त होने लगे हैं।

इ. सहायक क्रिया[1]

३०४. हिंदी की काल-रचना में कृदंत रूपों तथा सहायक क्रियाओं से विशेष सहायता ली जाती है इसलिए काल-रचना पर विचार करने के पूर्व इन पर विचार कर लेना अधिक युक्तिसंगत होगा। हिंदी काल-रचना में *होना* सहायक क्रिया का व्यवहार होता है। इस के रूप भिन्न-भिन्न अर्थों और कालों में पृथक् होते हैं। *होना* के मुख्य रूप नीचे दिए जाते हैं—

वर्तमान निश्चयार्थ

१	*हूं*	*हैं*
२	*है*	*हो*
३	*है*	*हैं*

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, अ. ४

भूत निश्चयार्थ

१	*था*	*थे*
२	*था*	*थे*
३	*था*	*थे*

भविष्य निश्चयार्थ

१	*होऊंगा*	*होवेंगे*
२	*होगा*	*होगे*
३	*होगा*	*होंगे*

वर्तमान आज्ञा

१	*होऊं*	*हों*
२	*हो*	*होओ*
३	*हो*	*होवें*

भूत संभावनार्थ

१	*होता*	*होते*
२	*होता*	*होते*
३	*होता*	*होते*

भविष्य आज्ञा के अर्थ में मध्यम पुरुष बहुवचन में *होना* रूप प्रयुक्त होता है। स्त्रीलिंग में इन में से अनेक रूपों में परिवर्तन होते हैं।

ये सब रूप हिंदी में *होना* क्रिया के रूपांतर माने जाते हैं किंतु व्युत्पत्ति की दृष्टि से इन का संबंध संस्कृत की एक से अधिक क्रियाओं से है।

३०५. *हूं* आदि वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √ *अस्* से माना जाता है, जैसे हि० *हूं* (बो० *हौं*) < प्रा० *अम्हि, अस्मि* < सं० *अस्मि*; हि० *है* (बो० *अ*) < प्रा० *अत्थि* < सं० *अस्ति*। इस क्रिया से बने हुए हिंदी बोलियों के अनेक रूपों में तथा कुछ

अन्य प्रा० भा० आ० भाषाओं के रूपों में भी √ अस् का अ-वर्तमान है। खड़ी बोली हिंदी में यह लुप्त हो गया है।

३०६. *था* आदि भूत निश्चयार्थ के रूपों का संबंध सं० √ *स्था* से माना जाता है। जैसे—

हि० *था* < प्रा० *थाइ ठाइ* < सं० *स्थित*।

३०७. हि० √ *होना* के शेष समस्त रूपों का संबंध सं० √ *भू* से माना जाता है जैसे—

हि० *होता* < प्रा० *होन्तो* -- < सं० *भवन्*।

हि० *हुआ* (बो० *हुयो, भयो*), < प्रा० *भविओ* < सं० *भवित*।

३०८. पूर्वी हिंदी की कुछ बोलियों में पाए जाने वाले *बाटै* आदि रूपों का संबंध सं० √ *वृत्* से जोड़ा जाता है, जैसे हि० *बाटै* < प्रा० *वट्टइ* < सं० *वर्तते*।

हि० *रहना* की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। चैटर्जी[1] ने इस संबंध में विस्तार के साथ विचार किया है किंतु किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। टर्नर[2] इस का संबंध सं० *रहित* आदि शब्दों की √ *रह्* धातु से जोड़ते हैं।

पहाड़ी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी तथा पुरानी अवधी आदि में पाई जाने वाली *छ* से युक्त सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० की कल्पित धातु √ *अच्छ्** से मानी जाती थी।[3] टर्नर[4] अन्य मतों का खंडन करके सं० *आ* + √ *क्षि* से इस का उद्गम समझते हैं। हिंदी में इस के रूपों का व्यवहार नहीं होता है।

---

[1] चै०, बे० लै०, § ७६८

[2] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० ५३१ *रहनु*।

[3] चै०, बे० लै०, § ७६६

[4] टर्नर, नेपाली डिक्शनरी, पृ० १६१ *छनु*।

इ. कृदंत

३०९. हिंदी काल-रचना में वर्तमानकालिक कृदंत तथा भूतकालिक कृदंत के रूपों का व्यवहार स्वतंत्रता-पूर्वक होता है।

वर्तमानकालिक कृदंत धातु के अंत में—*ता* लगाने से बनता है। इस की व्युत्पत्ति संस्कृत वर्तमानकालिक कृदंत के—अंत (*शतृ* प्रत्ययांत) वाले रूपों से मानी जाती है। जैसे—

हि० *पचता* < प्रा० *पचंतो* < सं० *पचन्*

हि० *पचती* < प्रा० *पचंती* < सं० *पचन्ती*

३१०. *भूतकालिक कृदंत* धातु के अंत में —*आ* लगाने से बनता है। इस की व्युत्पत्ति संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाचक कृदंत के *त*, *इत* (*क्त* प्रत्ययांत) वाले रूपों से मानी जाती है। जैसे—

हि० *चला* (बो० *चल्यो*) < प्रा० *चलिओ* < सं० *चलितः*

हि० *करा* < प्रा० *करिओ* < सं० *कृतः*

भोजपुरी आदि बिहारी बोलियों में भूतकालिक कृदंत में —*ल* अंत वाले रूप भी पाए जाते हैं। इन का संबंध म० भा० आ० के—*इल्ल* तथा प्रा० भा० आ० के—*ल* प्रत्यय से जोड़ा जाता है। इस संबंध में चैटर्जी[1] ने विस्तार के साथ विचार किया है।

३११. हिंदी में पाए जाने वाले अन्य कृदंत रूपों की व्युत्पत्ति भी यहां ही दे देना उपयुक्त होगा।

पूर्वकालिक कृदंत अविकृत धातु के रूप में रहता है या धातु के अंत में *कर*, *के*, *कर के* लगा कर बनता है।

संस्कृत में यह कृदंत—*त्वा* और—*य* लगा कर बनता है। क्रिया के पहले उपसर्ग आने पर ही संस्कृत में—*य* लगता था किंतु प्राकृत में यह भेद भुला

[1] चै., बे. लै., § ६८१-६८८

किया गया, और उपसर्ग न रहने पर भी सं०—*य* से संबंध रखने वाले रूपों का व्यवहार प्रचलित हो गया। इस तरह धातु रूप में पाए जाने वाले हिंदी पूर्वकालिक कृदंत का संबंध सं०—*य* अंत वाले रूप से है, चाहे संस्कृत में इन विशेष शब्दों में—*त्वा* ही लगाया जाता हो। जैसे—

हि० *सुन* (ब्र० *सुनि*) < प्रा० *सुणिअ* : सं० *श्रुत्वा*

हि० *सींच* (ब्र० *सींचि*) < प्रा० *सींचिअ* : सं० *सिक्त्वा*

हिंदी की बोलियों में इस प्रकार के इकारांत संयोगात्मक पूर्वकालिक कृदंत रूपों का प्रयोग बराबर पाया जाता है। व्यवहार में आते-आते इस इकार का भी लोप हो गया और खड़ी बोली में *वह बात सुन सीधा घर गया* इस तरह के वाक्य बराबर व्यवहृत होते हैं। अंत्य—*इ* के लुप्त हो जाने से क्रिया के धातु वाले रूप और इस कृदंत के रूप में कुछ भी भेद नहीं रह गया अतः ऊपर से कर, के, कर के आदि शब्द जोड़े जाने लगे हैं। जैसे, *वह बात सुन कर घर गया*। हि० *कर* की व्युत्पत्ति प्रा० *करिअ* से तथा हि० *के* की व्युत्पत्ति प्रा० *कइअ* से है।

३१२. *क्रियार्थक संज्ञा* धातु के अंत में—*ना* जोड़ने से बनती है। बीम्स के अनुसार—*ना* का संबंध संस्कृत भविष्य कृदंत—*अनीय* (ल्युट्) से है। जैसे, हि० *करना* < प्रा० *करणअं*, *करणीअं* < सं० *करणीयं*।

बोलियों में एक रूप—*अन* मिलता है, जैसे *देखन* (देखना), *चलन* (चलना)। इस—*अन* का संबंध संस्कृत क्रियार्थक संज्ञा—*अनं* (जैसे सं० (*करणं*, *चलनं*) से लगाया जाता है। चैटर्जी[1] के मत से हि०—*ना* भी इसी संस्कृत प्रत्यय से संबद्ध है। क्रियार्थक संज्ञा का व्यवहार हिंदी में भविष्य आज्ञा के लिए भी होता है। जैसे, *तुम कल घर ज़रूर जाना*।

---

[1] चै., बे. लै., § ७४१

ब्रजभाषा तथा बंगाली, उड़िया, गुजराती आदि कुछ अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं में -ब लगा कर क्रियार्थक संज्ञा बनती है। इस का संबंध संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य कृदंत प्रत्यय-*तव्य* से माना जाता है जैसे, हि० बो० *करब* < प्रा० *करेअव्वं*, *करिअव्वं* < सं० *कर्तव्यम्*। हिंदी की कुछ बोलियों में भविष्य काल में भी इस-ब अंत वाले रूप का व्यवहार पाया जाता है।

३१३. *कर्तृवाचक संज्ञा* क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में *वाला*, *हारा* आदि शब्द लगा कर बनाई जाती है, जैसे *मरने वाला*, *जाने वाला* आदि। हि० *वाला* का संबंध सं० *पालक* से जोड़ा जाता है तथा हि० *हारक* की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० *धारक* तथा अन्य सं० *कारक* से मानते हैं।

बोलियों में-*अइया* लगा कर भी कर्तृवाचक संज्ञा बनती है, जैसे *पढ़ैया*, *चढ़ैया* आदि। इस का संबंध सं० कर्तृवाचक संज्ञा को प्रत्यय-तृ-+क से माना जाता है जैसे, हि० *पढ़ैया* < सं० *पठतृकः*।[1]

३१४. *तात्कालिक कृदन्त* रूप व 'मानकालिक कृदंत के विकृत रूप में *ही* लगाकर बनता है, जैसे *आते ही*, *खाते ही* आदि। *अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त*, वर्तमानकालिक कृदंत का विकृत रूप मात्र है, जैसे उसे *काम करते* देर हो गई। *पूर्ण क्रिया द्योतक कृदंत* भूतकालिक कृदंत का विकृत रूप है, जैसे उसे *गये बहुत दिन हो गये*।

उ. कालरचना

३१५. मुख्य काल तीन हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य। निश्चयार्थ, आज्ञार्थ तथा संभावनार्थ इन तीन मुख्य अर्थों तथा व्यापार की सामान्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता को ध्यान में रखते हुये समस्त हिंदी कालों की संख्या १६ हो

---

[1] स्क., ए. अ., § २८६

जाती है। क्रिया की रचना की दृष्टि से इन का संक्षिप्त वर्गीकरण नीचे दिया जाता है।

क्ष. साधारण अथवा मूलकाल

	उदाहरण
(१) भूत निश्चयार्थ	*वह चला*
(२) भविष्य "	*वह चलेगा*
(३) वर्तमान संभावनार्थ	*अगर वह चले*
(४) भूत "	*अगर वह चलता*
(५) वर्तमान आज्ञार्थ	*वह चले*
(६) भविष्य आज्ञार्थ	*तुम चलना*

त्र. संयुक्त काल

वर्तमानकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(७) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	*वह चलता है*
(८) भूत " "	*वह चलता था*
(९) भविष्य " "	*वह चलता होगा*
(१०) वर्तमान " संभावनार्थ	*अगर वह चलता हो*
(११) भूत " "	*अगर वह चलता होता*

भूतकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(१२) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	*वह चला है*
(१३) भूत " "	*वह चला था*
(१४) भविष्य " "	*वह चला होगा*
(१५) वर्तमान " "	*अगर वह चला हो*
(१६) भूत " "	*अगर वह चला होता*

३१६. ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी कालों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है[1]—

क. संस्कृत कालों के अवशेष काल—इस श्रेणी में वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा आते हैं।

ख. संस्कृत कृदंतों से बने काल—इस श्रेणी में भूत निश्चयार्थ, भूत-संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा आते हैं।

ग. आधुनिक संयुक्तकाल—इस श्रेणी में कृदंत तथा सहायक क्रिया के संयोग से आधुनिक काल में बने समस्त अन्य काल आते हैं।

हिंदी भविष्य निश्चयार्थ की बनावट असाधारण है। यह इन तीन वर्गों में से किसी के अंतर्गत भी नहीं आता है। संस्कृत धातु के कृदंत रूप के संयोग के कारण इसे ख. वर्ग में रक्खा जा सकता है।

क. संकृत कालों के अवशेष

३१७. जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, संस्कृत कालों के अवशेष स्वरूप हिंदी में केवल दो काल हैं—वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा।

ग्रियर्सन[2] ने इन कालों के संबंध में विस्तार-पूर्वक विचार किया है। उन के मत में हिंदी वर्तमान संभावनार्थ के रूपों का संबंध संस्कृत के वर्तमान काल के रूपों से है। ग्रियर्सन के अनुसार तुलनात्मक कोष्ठक नीचे दिया जाता है—

		सं०	प्रा०	अप०	हि०
एक०	(१)	चलामि	चलामि	चलउं	चलूं
	(२)	चलसि	चलसि	चलहि, चलइ	चले
	(३)	चलति	चलइ	चलहि, चलइ	चले

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ३२

[2] ग्रियर्सन, रैडिकल ऐंड पार्टिसिपियल टेन्सेज़, जर्नल आव दि एशियाटिक सोसायटी आव बेंगाल, १८९६, पृ० ३५२–३७५

(१) *चलामः*	*चलामो*	*चलहु*	*चलें*
(२) *चलथ*	*चलह*	*चलहु*	*चलो*
(३) *चलन्ति*	*चलन्ति*	*चलहिं*	*चलें*

३१८. हिंदी प्रथम पुरुष के रूपों का विकास संस्कृत रूपों से स्पष्ट है। सं० प्रथम पुरुष बहुवचन का *त* मराठी में अब भी मौजूद है, जैसे म० *उठती* (वे उठते हैं)।

हिंदी मध्यम पुरुष के रूपों के विकास के संबंध में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। किंतु उत्तम पुरुष के हिंदी रूपों का संबंध संस्कृत रूपों से उतनी सरलता से नहीं जुड़ता। बीम्स[1] के अनुसार इस पुरुष के एकवचन और बहुवचन के रूपों में आपस में परिवर्तन हो गया है; जैसे, सं० *चलामः* > प्रा० *चलामु, चलाउ** > *चलौं, चलूं*। इसी प्रकार सं० *चलामि* > प्रा० *चलाइ** > *चलैं, चलें*। ऐसा भी माना जाता है कि सं० *चलामि* से ही इकार के लोप हो जाने और *म* के अनुस्वार में परिवर्तित हो जाने से हि० एकवचन *चलूं* बना होगा। ऐसी अवस्था में हिंदी उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप से प्रभावित माना जा सकता है। इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। वर्तमान निश्चयार्थ से वर्तमान संभावनार्थ में परिवर्तन आधुनिक माना जाता है।

३१९. ग्रियर्सन के मतानुसार हिंदी आज्ञा के रूपों का संबंध भी संस्कृत वर्तमान काल के रूपों से ही है किंतु बीम्स इन का संबंध संस्कृत आज्ञा के रूपों से जोड़ते हैं जो संभव नहीं प्रतीत होता। कदाचित् संस्कृत के वर्तमान और आज्ञा दोनों ही का प्रभाव हिंदी के आज्ञा के रूपों पर पड़ा है। नीचे संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी के आज्ञा के रूप बराबर-बराबर दिए जा रहे हैं—

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ३३

	सं०	प्रा०	हि०
एक० (१)	चलानि	चलमु	चलूं
(२)	चल	चलसु, चलाहि, चल	चल
(३)	चलतु	चलदु, चलउ	चलें
बहु० (१)	चलाम	चलामो	चलें
(२)	चलत	चलह, चलधं	चलो
(३)	चलंतु	चलंतु	चलें

यह ध्यान देने योग्य बात है कि मध्यम पुरुष एकवचन को छोड़ कर आज्ञार्थ के अन्य हिंदी रूप वर्तमान संभावनार्थ के ही समान हैं। आज्ञा और संभाव्य भविष्यत् के रूपों का इस तरह का हेल-मेल कुछ-कुछ पाली प्राकृत में भी पाया जाता है।

आदरार्थ आज्ञा का विशेष रूप हिंदी में मध्यम पुरुष बहुवचन में मिलता है, जैसे *आप मीठा लीजिये*। इस की व्युत्पत्ति सं० आशीर्लिङ् के चिह्न *या-* (*जैसे दद्यात्*) से मानी जाती है। प्राकृत में यह *-एज्ज*, *-इज्ज* *देज्ज, दिज्ज*) रूपों में मिलता है।

३२०. खड़ी बोली में तो नहीं किंतु ब्रज, कनौजी में जो ह लगा कर भविष्य निश्चयार्थ बनता है वह भी इसी श्रेणी में आता है। ग्रियर्सन के अनुसार दिए हुए नीचे के कोष्ठक से यह संबंध बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा—

	सं०	प्रा०	अप०	ब्रज
एक० (१)	चलिष्यामि	चलिस्सामि चलिहिमि	चलिस्सउ, चलिहिउं	चलिहौं
(२)	चलिष्यसि	चलिस्ससि चलिहिसि	चलिस्सहि चलिहिहि	चलिस्सइ चलिहिइ	चलिहै

(३)	*चलिष्यति*	*चलिस्सइ चलिस्सहि चलिस्सइ चलिहै चलिहिइ चलिहिहि चलिहिइ*
बहु० (१)	*चलिष्यामः*	*चलिस्सामो चलिस्सहुं चलिहिहुं चलिहैं चलिहिमो*
(२)	*चलिष्यथ*	*चलिस्सह चलिस्सहु चलिहिहु चलिहौ चलिहिइ*
(३)	*चलिष्यन्ति*	*चलिस्सन्ति चलिस्सहिं चलिहिहिं चलिहैं चलिहिन्ति*

वर्तमान संभावनार्थ के समान यहां भी उत्तम पुरुष के एक-वचन और बहुवचन के रूपों में अदल-बदल का होना मानना पड़ेगा, अथवा उत्तम पुरुष बहुवचन के रूप पर प्रथम पुरुष के बहुवचन के रूप का भी प्रभाव हो सकता है।

खड़ी बोली हिंदी में *वर्तमान निश्चयार्थ* नहीं पाया जाता है किंतु पुरानी साहित्यिक ब्रज में यह काल मिलता है, जैसे *खेलत स्याम अपने रंग, बनते आवत धेनु चराये*। यह वर्तमानकालिक कृदंत है।

३२१. हिंदी भविष्य निश्चयार्थ देखने में मूल काल मालूम होता है किंतु वास्तव में यह बाद का बना हुआ काल है। ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि इस की रचना वर्तमान संभावनार्थ के रूपों में *गा, गे, गी, गीं* आदि लगा कर होती है। भविष्य के इस *ग* का संबंध संस्कृत √*गम्* के भूतकालिक कृदंत *गत* > प्रा० *गदो, गयो, गओ* से जोड़ा जाता है।

इसी प्रकार मारवाड़ी आदि में *ल* अंत वाले भविष्य में पाए जाने वाले *ल* का संबंध सं० *लग्न* > प्रा० *लग्गो* से जोड़ा जाता है।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ५४
[2] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ५५

ख. संस्कृत कृदंतों से बने काल

३२२. संस्कृत कृदंतों से बने हिंदी कालों का संबंध संस्कृत कालों से सीधा नहीं है। संस्कृत कृदंतों के आधार पर बने हुए हिंदी कृदंतों का प्रयोग आधुनिक समय में काल के लिए होने लगा। कृदंतों के रूपों को काल के स्थान पर प्रयुक्त करने का ढंग बहुत पुराना है। स्वयं साहित्यिक संस्कृत में ही बाद को यह ढंग चल गया था। मूल कालों की संख्या में कमी हो जाने पर प्राकृत में भी कृदंतों का इस तरह का प्रयोग बहुत पाया जाता है। आधुनिक काल में आकर जब प्राचीन कालों के संयोगात्मक रूप नष्ट-प्राय हो गए थे तब अधिकांश कालों की रचना के निमित्त कृदंत रूपों का व्यवहार स्वाभाविक है।

केवल मात्र कृदंतों से बने काल हिंदी में तीन हैं—भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा। इन के लिए क्रम से भूतकालिक कृदंत, वर्तमानकालिक कृदंत तथा क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग होता है। इन कृदंतों की व्युत्पत्ति पर ऊपर विचार किया जा चुका है, अतः इन कृदंती कालों के इतिहास में कोई विशेषता नहीं रह जाती। मूल कृदंत के रूपों के बहुवचन में एकारांत विकृत रूप (*चले, चलते*) हो जाते हैं, तथा स्त्रीलिंग एकवचन में ई (*चली, चलती*) और बहुवचन में ईं (*चलीं, चलतीं*) लगाई जाती है। इन कृदंती कालों के कारण ही हिंदी क्रिया में लिंगभेद पाया जाता है।

संस्कृत कर्मवाच्य भविष्य कृदंत प्रत्यय *तव्य* से संबद्ध ब अंत वाले भविष्य काल का प्रयोग हिंदी की अवधी आदि बोलियों में पाया जाता है।

ग. संयुक्त काल

३२३. हिंदी के शेष समस्त काल इस श्रेणी में आते हैं। इन की रचना वर्तमान या भूतकालिक कृदंत के रूपों में सहायक क्रिया लगा कर होती है। इन कालों का संबंध संस्कृत के कालों से बिल्कुल भी नहीं है, केवल क्रिया के

कृदंत रूप तथा सहायक क्रिया का विकास संस्कृत रूपों से अवश्य हुआ है। इन रूपों का इतिहास कृदंत तथा सहायक क्रिया शीर्षक विवेचनों में दिखलाया जा चुका है। दोनों को मिला कर काल-रचना के लिए व्यवहार होना आधुनिक है।

ग. वाच्य

३२४. हिंदी में वाच्य बनाने का ढंग आधुनिक है। मूल क्रिया के भूतकालिक कृदंत के रूपों में *जाना* धातु के आवश्यक रूपों के संयोग से हिंदी कर्मवाच्य बन जाता है।

संस्कृत में *-य-* लगाकर कर्मवाच्य बनता था। प्राकृतों में यह *-य-* *-इय-* *-इय्य-* या *-ईय-* तथा *-इज्ज-* में परिवर्तित हो गया था। कुछ आधुनिक आर्यभाषाओं में *-इज्ज-* > *-ईज-* या *-इअ-* *-इआ-* रूप प्राकृतों से होकर संस्कृत से आए हैं; जैसे, सिंधी *करीजे*, मारवाड़ी *क[illegible]जणो*।[1] पुरानी ब्रजभाषा तथा अवधी में भी संयोगात्मक रूप मिलते हैं, जैसे अवधी *दीजिय, ढरिअइ*।[2]

कुछ लोगों के मत में हिंदी के आदर-सूचक आज्ञार्थ के रूप (*कीजिये* आदि) भी इस से प्रभावित हैं।

-आ- लगा कर कर्मवाच्य बनाने के कुछ उदाहरण बोलियों में पाए जाते हैं, जैसे *तन की तपन बुझाय* (तन की तपन बुझ जाती है), *कहावै* (कहा जाता है)। चैटर्जी[3] के मतानुसार *-आ-* कर्मवाच्य की उत्पत्ति सं० नाम धातु के चिह्न *-आय-* से हुई है।

हिंदी में भूत निश्चयार्थ काल संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाचक कृदंत से संबद्ध है। संस्कृत के कर्मणि प्रयोग के चिह्न हिंदी में अब तक

---

[1] चै., बे. लै., § ६५३

[2] सक., ए. अ., § २७३

[3] चै., बे. लै., § ६७१

मौजूद हैं अर्थात् अकर्मक धातुओं में क्रिया का यह रूप कर्ता से संबद्ध रहता है और सकर्मक धातु में कर्म से। पिछली अवस्था में कर्ता करण कारक में रक्खा जाता है —

सं०	हि०
कृष्णः चलितः	*कृष्ण चला*
कृष्णेन पुस्तिका पठिता	*कृष्ण ने पुस्तक पढ़ी*

आधुनिक मागधी भाषाओं में भूतकाल में कर्तरि प्रयोग ही रह गया है। इसी कारण बिहार आदि पूर्वी प्रांतों के लोग अपनी बोलियों के प्रभाव के कारण हिंदी में भी यथास्थान कर्मणि प्रयोग नहीं कर पाते हैं। उधर के लोगों के मुँह से *उस ने आम खाया* के स्थान पर *वह आम खाया* निकलता है।

ए. प्रेरणार्थक धातु

३२५. संस्कृत में प्रेरणार्थक (णिजंत) रूप धातु में—*अय*—लगा कर बनता है। कुछ स्वरांत धातुओं में धातु और—*अय*—के बीच में—*प*— भी लगता है। जैसे √*कृ कारयति*, √*हर् हासयति*, किंतु √*दा दापयति*, √ *गै गापयति*। पाली प्राकृत में अधिकांश प्रेरणार्थक धातुओं में—*प*— जुड़ने लगा था यद्यपि पाली काल तक यह वैकल्पिक रहा, जैसे सं० *पाचयति*, पाली *पाचति*, *पाचेति*, *पचापेति*। प्राकृत में भी प्रेरणार्थक धातु बनाने के दो ढंग थे, एक में संस्कृत का *अय* –*ए*– में परिवर्तित हो जाता था, जैसे सं० *कारयति* > प्रा० *कारेइ*, दूसरे ढंग में–*प*– –*व*– में बदल जाता था, जिस से प्राकृत में *करावेइ* या *कारावेइ* रूप बनते थे।[1]

हिंदी में प्रेरणार्थक धातु के चिह्न –*आ*– –*वा*– प्राचीन चिह्नों के रूपांतर मात्र हैं। अकर्मक धातुओं में –*आ*– लगाने से धातु सकर्मक मात्र

---

[1] ग्री., क. ग्रे., भा. ३, § २६

होकर रह जाती है अतः ऐसी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप *—वा—* लगा कर बनते हैं, जैसे *जलना, जलाना, जलवाना; पकना, पकाना, पकवाना*। सकर्मक धातुओं में *—आ—* या *—वा—* दोनों चिह्न प्रेरणार्थ का ही बोध कराते हैं, जैसे *लिखना, लिखाना, या लिखवाना; करना, कराना, या करवाना*। हिंदी में वास्तव में *—वा—* रूप व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्पष्ट प्रेरणार्थक है।

ऐ. नामधातु

३२६. नामधातु भारतीय आर्यभाषाओं में प्राचीनकाल से पाए जाते हैं। संज्ञा या विशेषण में क्रिया के प्रत्यय जोड़ने से हिंदी नामधातु बनते हैं। हिंदी नामधातु के मध्य में आने वाले *—आ—* का संबंध संस्कृत नामधातु के चिह्न *—आय—* से जोड़ा जाता है। इस पर प्रेरणार्थक के *—आपय—* का प्रभाव भी माना जाता है। जो हो हिंदी में प्रेरणार्थक *—आ—* और नामधातु के *—आ—* के रूप में कोई भेद नहीं रह गया है।

ओ. संयुक्त क्रिया

३२७. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में जो काम प्रत्यय आदि लगा कर लिया जाता था वह काम अब बहुत कुछ संयुक्त क्रियाओं से होता है। अन्य आधुनिक भाषाओं के समान हिंदी में भी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग बहुत पाया जाता है। हिंदी संयुक्त क्रियाओं की रचना आधुनिक है, अतः इस संबंध में ऐतिहासिक विवेचन असंभव है। संयुक्त क्रियायें द्राविड़ भाषाओं में भी बहुत प्रचलित हैं, किंतु उन का हिंदी पर प्रभाव पड़ना कठिन मालूम पड़ता है। हिंदी संयुक्त क्रियाओं का विस्तृत वर्गीकरण गुरु[२] तथा केलाग[३] के व्याकरणों में दिया हुआ है।

---

[१] चै., बे. लै., § ७६५

[२] गु., हि. व्या., § ३६६-४३३

[३] के., ई. हि. ग्रै., § ३४५-३६५

शब्द को दोहरा कर बनी हुई कुछ संयुक्त क्रियायें भी हिंदी में पाई जाती हैं, जैसे *खटखटाना, फड़फड़ाना, तिलमिलाना*। ये प्रायः अनुकरण-मूलक हैं, और ऐतिहासिक व्याकरण की दृष्टि से ऐसी साभ्यास क्रियायें कोई महत्व नहीं रखतीं।

अध्याय १०

अव्यय

३२८. व्याकरण के अनुसार अव्यय प्रायः चार समूहों में विभक्त किए जाते हैं—(१) क्रियाविशेषण, (२) समुच्चयबोधक, (३) संबंधसूचक और (४) विस्मयादिबोधक। हिंदी विस्मयादिबोधक अव्ययों का कोई विशेष इतिहास नहीं है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुछ शब्द अवश्य रोचक हैं[1] जैसे, हि० दुहाई *(दो + हाय), शाबाश* (फ़ा० *शादबाश*)। हि० अरे का संबंध द्राविड़ भाषाओं के अडे रूप से बतलाया जाता है। अधिकांश संबंधसूचक अव्ययों पर विचार 'संज्ञा' शीर्षक अध्याय में 'कारक-चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द' नाम के प्रकरण में हो चुका है। अतः इस अध्याय में हिंदी क्रिया-विशेषण और समुच्चयबोधक अव्ययों के संबंध में ही विचार किया गया है।

अ. क्रियाविशेषण

३२९. क्रियाविशेषणों की उत्पत्ति प्रायः संस्कृत संज्ञाओं अथवा सर्वनामों से हुई है। अर्थ की दृष्टि से ये कालवाचक, स्थानवाचक दिशावाचक तथा रीतिवाचक इन चार मुख्य वर्गों में विभक्त किए जाते हैं। आजकल संस्कृत तथा फ़ारसी-अरबी के भी बहुत से शब्द तत्सम या तद्भव रूपों में क्रिया-विशेषण के समान हिंदी में प्रयुक्त होने लगे हैं। इतिहास की दृष्टि से ऐसे शब्द विशेष महत्व नहीं रखते।

---

[1] बी., क. ग्रै., भा. ३, § ८४

क. सर्वनाम-मूलक क्रियाविशेषण

३३०. कालवाचक—*अब, जब, तब, कब* (—*ब* लगा कर) ।

बीम्स[1] के अनुसार *अब* का संबंध सं० *वेला* शब्द से है जिस की ओर उड़िया के *एते बेळे एबे* रूप भी संकेत करते हैं। इसी तरह *जब, तब, कब* का संबध भी बीम्स सं० *वेला* शब्द से ही जोड़ते हैं। इन सब में केवल सर्वनाम वाले अंश में भेद है। हिंदी खड़ी बोली तथा पंजाबी के *जद, तद, कद* की उत्पत्ति सं० *यदा, तदा, कदा* से स्पष्ट ही है।

चैटर्जी[2] के मतानुतार *अब* का संबंध वैदिक *एव, एवा* > सं० *एवं* > प्रा० *एव्वं, एब्बं* से है। इसी ढंग पर वे अन्य काल-वाचक क्रियाविशेषणों का संबंध भी जोड़ते हैं।

ही के संयोग से हिंदी के ये क्रियाविशेषण *अभी (अब + ही), कभी (कब + ही)* रूप धारण कर लेते हैं। *जभी, तभी* का प्रयोग अभी कम होता है।

हिंदी के इन क्रियाविशेषणों के भोजपुरी रूप *एबेर, जेबेर, तेबेर, केबेर* हैं, तथा ब्रजभाषा में *अबै, जबै, तबै, कबै* रूप प्रयुक्त होते हैं। बीम्स के अनुसार इन सब रूपों का संबंध सं० *वेला* से ही है। ब्रज *अबई* आदि *अब + ही* के ढंग से बने संयुक्त रूप मालूम पड़ते हैं।

३३१. स्थानवाचक—*यहाँ, वहाँ, जहाँ, तहाँ, कहाँ* (—*हाँ* लगा कर)।

बीम्स के अनुसार *हाँ* से युक्त इन स्थानवाचक रूपों का संबंध सं० *स्थाने* से है *(तहाँ = तत्स्थाने)* अवधी के *एठिया, ओठिया* तथा भोजपुरी के *एठाँ, एठाँई* रूप इसी व्युत्पत्ति की ओर संकेत करते हैं। हिंदी के इन क्रिया-

---

[1] बी., क. ग्रै. भा. ३ § ८१

[2] चै., बे. लै., § ६०२

विशेषणों का उच्चारण गा, वा, जा, ता, का की तरफ़ झुकता जाता है। के अनुसार इन रूपों का संबंध म० भा० आ० के—त्थ <सं०—त्र

ब्रज के इतै, जितै, तितै, कितै का संबंध सं० अ तत्र, कुत्र से माना जाता है।

३३२. दिशावाचक क्रियाविशेषण—इधर, उधर, जिधर, तिधर, हिंदी के इन रूपों की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। बीम्स ने—ध का संबंध सं० मुख के लघुत्व-बोधक संभावित रूप से किया है, जैसे सं० मुखर* > म्हर (भोज० एम्हर, उम्ह न्हर (बिहारी एहर) > न्धर > धर। यह व्युत्पत्ति संतोषजनक मालूम होती।

३३३. रीतिवाचक यों, ज्यों, त्यों, क्यों (—यों लगा कर)।

बीम्स[२] इन का संबंध सं० मत् > प्रा० मन्तो से मानते हैं संस्कृत में इस प्रत्यय से बने हुए रूप अर्थ की दृष्टि से परिमाण होते हैं, जैसे इयत्, कियत् आदि। ध्वनि-साम्य की दृष्टि से बंगाली आदि तथा अवधी इमि, जिमि, तिमि, किमि बीच के रूप मालूम होते हैं।

केलाग[३] हिंदी के इन रूपों का संबंध सं० इत्थं, कथं जैसे मानते हैं, किंतु हिंदी शब्दों में य के आगम का कोई संतोषजनक नहीं देते। चैटर्जी[४] इन की उत्पत्ति अप० जेंव, तेंव, केंव = जेवं, तेवं से मानते हैं और इन अपभ्रंश रूपों को प्रा० भा० आ० के येव*, तेव*, संभावित रूपों से संबद्ध करते हैं जो उन के मत में वैदिक एव की नकल बने होंगे। वास्तव में इन रूपों की व्युत्पत्ति अत्यंत संदिग्ध है।

---

[१] चै., बे. लै., § ३०४
[२] बी., क. ग्रै., भा. ३. § ८१
[३] के., हि. ग्रै., § ४३४
[४] चै., बे. लै., § ६१०

विशेषणों का उच्चारण *या*, *वा*, *जा*, *ता*, *का* की तरफ़ झुकता जाता है। चैटर्जी[1] के अनुसार इन रूपों का संबंध म० भा० आ० के—त्थ <सं०—त्र से है।

ब्रज के *इतै*, *जितै*, *तितै*, *कितै* का संबध सं० *अत्र*, *यत्र*, *तत्र*, *कुत्र* से माना जाता है।

३३२. दिशावाचक क्रियाविशेषण—*इधर*, *उधर*, *जिधर*, *तिधर*, *किधर*। हिंदी के इन रूपों की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। बीम्स ने—धर अंश का संबध सं० *मुख* के लघुत्व-बोधक संभावित रूप *मुखर** से किया है, जैसे सं० *मुखर** > *म्हर* (भोज० *एम्हर*, *उम्हर*) > *न्हर* (बिहारी *एहर*) > *न्धर* > *धर*। यह व्युत्पत्ति संतोषजनक नहीं मालूम होती।

३३३. रीतिवाचक *यों*, *ज्यों*, *त्यों*, *क्यों* (—*यों* लगा कर)।

बीम्स[2] इन का संबंध सं० *मत्* > प्रा० *मन्तो* से मानते हैं यद्यपि संस्कृत में इस प्रत्यय से बने हुए रूप अर्थ की दृष्टि से परिमाण-वाचक होते हैं, जैसे *इयत्*, *कियत्* आदि। ध्वनि-साम्य की दृष्टि से बंगाली *केमन्त* आदि तथा अवधी *इमि*, *जिमि*, *तिमि*, *किमि* बीच के रूप मालूम होते हैं।

केलाग[3] हिंदी के इन रूपों का संबंध सं० *इत्थं*, *कथं* जैसे रूपों से मानते हैं, किंतु हिंदी शब्दों में *य* के आगम का कोई संतोषजनक कारण नहीं देते। चैटर्जी[4] इन की उत्पत्ति अप० *जेंव*, *तेंव*, *केंव* = *जेवं*, *तेवं*, *केवं* से मानते हैं और इन अपभ्रंश रूपों को प्रा० भा० आ० के *येव**, *तेव**, *केव** संभावित रूपों से संबद्ध करते हैं जो उन के मत में वैदिक *एव* की नक़ल पर बने होंगे। वास्तव में इन रूपों की व्युत्पत्ति अत्यंत संदिग्ध है।

---

[1] चै., बे. लै., § ३०४
[2] बी., क. ग्रै., भा. ३. § ८१
[3] के., हि. ग्रै., § ४३४
[4] चै., बे. लै., § ६१०

ख. संज्ञामूलक, क्रियामूलक तथा अन्य क्रियाविशेषण

३३४. सर्वनाममूलक क्रियाविशेषणों के अतिरिक्त मुख्य-मुख्य अन्य विशेषणों की सूची नीचे दी जाती है।[1] इन की व्युत्पत्ति को भी यथा-संभव दिखलाने का यत्न किया गया है।

कालवाचक

हि० *आज* < पा० *अज्ज* < सं० *अद्य*।

हि० *कल*, सं० *कल्य* से निकला है जिस का अर्थ उषा-काल होता है। हिंदी में यह शब्द आने वाले तथा गुज़रे हुए दोनों दिनों के लिए प्रयुक्त होता है।

हि० *परसों* < सं० *परः श्वस्*: बोलियों में *परौं* रूप अधिक प्रचलित है। हिंदी में इस का प्रयोग गुज़रे हुए दूसरे दिन के लिए भी होता है। संस्कृत में इस का अर्थ केवल आने वाला दूसरा दिन था।

हि० *तरसों* या *अतरसों*: परसों के ढंग पर शायद सं० *अन्तर* के आधार पर ये रूप गढ़े गए हैं (सं० *त्रि+श्वस्*)।

हि० *नरसों*: चौथे दिन के लिए कभी-कभी प्रयुक्त होता है। *अन्य+तरसों* के मेल से इस की उत्पत्ति की संभावना संदिग्ध है।[2]

हि० *सबेर अबेर*: इन का प्रयोग बोलियों में विशेष होता है। ये शब्द सं० *वेला* के साथ *स* तथा *अ* लगा कर बने मालूम होते हैं।

---

[1] हिंदी बोलियों में पाए जाने वाले क्रियाविशेषणों के लिए देखिए के., हि. ग्रै., § ४६६। अवधी क्रियाविशेषणों के लिए देखिए सक., ए. अ., अध्याय ७।

[2] बी., क. ग्रै., भा. ३. § ८२

हि० *तड़के* का संबंध √ *तड़* (टूटना) धातु के पूर्वकालिक कृदंत अव्यय से लगाया जाता है, किंतु यह व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

हि० *भोर* शब्द का सं० √ *भा* (चमकना) से संबंध सिद्ध नहीं होता।

हि० *तुरंत तुरत* < सं० अव्यय *त्वरितम्*।

हि० *झट* < सं० अव्यय *झटति*।

हि० *अचानक* की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग इस का संबंध सं० *अ* + √ *चिंत्* 'बिना सोचे' से जोड़ते हैं और कुछ सं० *चमत्कार* > हि० *चौंक* के निकट इसे बताते हैं, किंतु दोनों व्युत्पत्तियां अत्यंत संदिग्ध हैं।

स्थानवाचक

हि० *भीतर* < सं० *अभ्यंतर*

हि० *बाहिर* < सं० *बहिः*

रीतिवाचक

हि० *जानो* < हि० *जानना*

हि० *मानो* < हि० मानना

हि० *ठीक* का सं √ *स्था*[1] से संबंध संदिग्ध है।

हि० *सचमुच* का संबंध सं० *सत्य* से है। हिंदी में यह रूप दोहरा कर बनाया गया है।

अन्य

हि० *हां* की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। केलाग इस की तुलना मराठी क्रिया *आहें, आहों* से करते हैं।

हि० *नहीं* को केलाग *न + आहि* का संयुक्त रूप बताते हैं।

---

[1] के., हि. ग्रै., § ४६६

[2] के., हि. ग्रै., § ३७२

आ. समुच्चयबोधक

३३५. नीचे मुख्य-मुख्य समुच्चयबोधक अव्यय व्युत्पत्ति सहित दिए जा रहे हैं—

हि० *और* (प्राचीन रूप *अवर, अरु*) < सं० *अपर* (दूसरा)।

हि० *भी* < प्रा० *वि हि* < सं० *अपि हि* ।

हि० *पर* < सं० *परं* । इस अर्थ में सं० *वा* तथा अरबी *या* का प्रयोग भी हिंदी में होता है ।

हि० *कि* कदाचित् फ़ारसी से आया है । सं० *किं* से इस की व्युत्पत्ति संदिग्ध है ।

हि० *जो* < प्रा० *जअ**, *जद* < सं० *यदि* ।

हि० *बरन* < सं० *वरन* ।

हि० *चाहे* < हि० *चाहना* ।

हि० *तो* < सं० *ततः* ।

परिशिष्ट

४०

पारिभाषिक शब्द-संग्रह

अ. हिंदी-अंग्रेज़ी

अंकित लेख	Inscription
अग्र, अगला	Front
अघोष	Voiceless, breathed
अनुकरणमूलक	Onomatopoetic
अनुनासिक	Nasal
अनुरूपता	Assimilation
अनुलिपि	Transliteration
अंतर्वर्ती	Intermediate, mediate
अपवाद	Exception
अप्रयुक्त	Obsolete
अभ्यास	Duplication
अर्द्ध-विवृत	Half-open
अर्द्ध-संवृत	Half-close
अर्द्ध-स्वर	Semi-vowel
अलिजिह्वा, कौवा	Uvula
अलिजिह्व	Uvular
अल्पप्राण	Un-aspirated
अव्यय	Indeclinable

अस्पष्ट ल	Dark *l*
आदि स्वरागम	Prothesis
आधुनिक भारतीय आर्यभाषा	New Indo-Aryan
उच्चस्थानीय स्वर	High vowel
उच्चारण	Pronunciation
उच्चारण-स्थान	Place of articulation
उत्क्षिप्त	Flapped
उदासीन स्वर	Neutral vowel
उद्धृत शब्द	Loan-word
उपकुल	Sub-family (of speech)
उपशाखा	Sub-branch (of speech)
उपसर्ग	Prefix
उपसर्गात्मक अव्यय	Preposition
उपांत्य	Penultimate
उपालिजिह्व	Pharyngeal
ऊष्म	Sibilant
ओष्ठ	Lip
ओष्ठ्य	Labial
औपम्य, सादृश्य	Analogy
कंठ्य	Velar, guttural
कंठ-तालव्य	Gutturo-palatal
कंठ्योष्ठ्य	Gutturo-labial
जिह्वामूलीय	Back guttural
कंपन युक्त	Trilled
कर्तृवाचक संज्ञा	Noun of Agency
कारक	Case

काल	Tense
मूलकाल	radical
कृदंती काल	participial
संयुक्त काल	periphrastic
काल-रचना	formation of tenses
वर्तमान निश्चयार्थ	present indicative
भूत निश्चयार्थ	past indicative
भविष्य ,,	future indicative
वर्तमान संभावनार्थ	present conjunctive
भूत ,,	past conjunctive
आज्ञा	imperative
भविष्य आज्ञा	future imperative
वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ	present imperfect indicative
भूत ,, ,,	past imperfect indicative
भविष्य ,, ,,	future imperfect indicative
वर्तमान ,, संभावनार्थ	present imperfect conjunctive
भूत ,, ,,	past imperfect conjunctive
वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	present perfect indicative
भूत ,, ,,	past perfect indicative
भविष्य ,, ,,	future perfect indicative
वर्तमान ,, संभावनार्थ	present perfect conjunctive
भूत ,, ,,	past perfect conjunctive
क्रिया	Verb
सकर्मक	transitive
अकर्मक	intransitive
क्रियार्थक संज्ञा	Infinitive, verbal noun

क्रियारूप	Conjugation
क्रियार्थ भेद	Mood
निश्चयार्थ	indicative
संभावनार्थ	contingent
संदेहार्थ	presumptive
आज्ञार्थ	imperative
संकेतार्थ	negative contingent
आदरार्थ आज्ञा	optative
क्रियाविशेषण	Adverb
कुल	Family (of speech)
कृदंत	Participle
वर्तमानकालिक कृदंत	present participle
भूतकालिक ,,	past participle
पूर्वकालिक ,,	conjunctive participle
केंद्रवर्ती समुदाय	Central group
खंड	Paragraph
घोष	Voiced
घोष स्पर्श	Voiced plosive
जिह्वा	Tongue
नोक	tip
जिह्वाग्र	front
जिह्वामध्य	middle
पश्चाजिह्वा	back
जिह्वामूल	root
जिह्वाफल	blade
जिह्वामूलीय	Uvular
तालव्य	Palatal

तालु	Palate
कठोर	hard
कोमल	soft
कृत्रिम	artificial
दंत्य	Dental
दंत्याग्रीय	Pre-dental
दंत्यमध्यीय	Centro-dental
दंत्यमूलीय	Post-dental
दंत्योष्ठ्य	Dento-labial, labio-dental
दीर्घ	Long
द्व्योष्ठ्य	Bilabial
धातु	Root
मूल	primary
यौगिक	secondary
नाम	denominative
संयुक्त	compounded and suffixed
अनुकरणमूलक	onomatopoetic
ध्वनि	Sound
ध्वनिविकार-संबंधी नियम	Phonetic law
ध्वनिविज्ञान	Phonetics
ध्वनिश्रेणी	Phoneme
ध्वनि-संबंधी, ध्वन्यात्मक	Phonetic
ध्वनि-संबंधी चिह्न	Phonetic sign
ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि	Phonetic transcription
नामधातु	Denominative
नासिका-विवर	Nasal cavity
नियम, व्यापक नियम	Law

निरर्थक, स्वार्थिक	Pleonastic
निम्नस्थानीय स्वर	Low vowel
परसर्ग	Postposition
पश्च, पिछला	Back
पुरुष	Person
उत्तम	first
मध्यम	second
प्रथम	third
पार्श्विक	Lateral
प्रत्यय	Suffix
प्रधान स्वर	Cardinal vowel
प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र	Experimental phonetics
प्राचीन भारतीय आर्यभाषा	Old Indo-Aryan
प्रामाणिक उच्चारण	Standard pronunciation
प्रेरणार्थक धातु	Causative
फुसफुसाहट	Whisper
फुसफुसाहट वाला स्वर.	Whispered vowel
बल	Stress
वाक्य बल	sentence stress
अक्षर बल	syllabic stress
शब्द बल	word stress
बल देना	to stress
बली	stressed
बलहीन	unstressed
बोली	Dialect
भारत ईरानी	Indo-Iranian
भारत-यूरोपीय कुल	Indo-European Family

भारतीय आर्यभाषा	Indo-Aryan speech
भाषा	Language, speech
भाषा-ध्वनि	Speech-sound
भाषण अवयव	Speech-mechanism
भाषा-विज्ञान	Linguistics, philology, science of language
भाषा-तत्वविज्ञ	Philologist
भाषा-समुदाय	Group of speech
मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा	Middle Indo-Aryan
मध्यवर्ती	Inner
महाप्राण	Aspirated
महाप्राणत्व	Aspiration
मात्रा-काल	Quantity (of a vowel)
मिथ्या औपम्य या सादृश्य	False analogy
मिश्रित स्वर	Mixed vowel
मुखरता, व्यक्तता	Sonority
मुखविवर	Mouth cavity
मूल धातु	Primary root
मूर्द्धन्य	Retroflex
मूल रूप	Direct form
मूल शब्द, प्रातिपदिक	Stem
मूल स्वर	Simple vowel
रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय	Formative Affix
लिपि	Script
लिपि चिह्न, अक्षर	Character
लिंग	Gender
लोप	Elision

वंशक्रम	Genealogy
वंशक्रमानुसार वर्गीकरण	Genealogical classification
वचन	Number
वर्ग	Class
वर्गीकरण	Classification
वर्त्स्य	Alveolar
वर्ण	Letter, alphabetic sound
वर्णमाला	Alphabet
वाक्य-विन्यास	Construction
कर्तृवाचक वाक्यविन्यास	active construction
कर्मवाचक ,,	passive construction
वाक्यांश	Phrase
वाच्य	Voice
कर्तृ	active
कर्म	passive
वाह्य	Outer
विकार	Change
विकृत रूप	Oblique form
विदेशी शब्द	Foreign words
विपर्यय	Metathesis
वियोगात्मक	Analytic
विवृत (स्वर)	Open (vowel)
विवृत्ति, विच्छेद	Hiatus
विस्मयादि बोधक	Interjection
व्यंजन	Consonants
व्युत्पत्ति	Derivation
शब्द-विन्यास	Seplling

शब्द-समूह	Vocabulary
शब्दांश, अक्षर	Syllable
एकाक्षरी शब्द	monosyllabic
अनेकाक्षरी शब्द	polysyllabic
शाखा	Branch (of speech)
श्रुति	Glide
पश्चात् श्रुति	off glide
पूर्व श्रुति	on glide
श्वास	Breath
निःश्वास	out
प्रश्वास	in
श्वास नाल	Wind pipe
संकेत	Symbol
संख्यावाचक	Numerals
पूर्णाङ्क संख्यावाचक	cardinal
क्रम संख्यावाचक	ordinal
अपूर्ण संख्यावाचक	fractional
समुदाय संख्यावाचक	multiplicative
संघर्ष	Friction
संघर्षी	Fricative
संज्ञारूप	Declension
संयुक्त क्रिया	Compound verb
संयुक्त व्यंजन	Consonantal group
संयुक्त स्वर	Diphthong
संयोगात्मक	Synthetic
संवृत (स्वर)	Close (vowel)
समास	Compound

समुच्चय बोधक	Conjunction
सहायक क्रिया	Auxiliary verb
सर्वनाम	Pronoun
पुरुषवाचक	personal
निश्चयवाचक	demonstrative
संबंधवाचक	relative
नित्यसंबंधी	correlative
प्रश्नवाचक	interrogative
अनिश्चयवाचक	indefinite
निजवाचक	reflective
आदरवाचक	honorific
साधारण अनुलिपि	Broad transcription
सानुनासिकता	Nasalization
साभ्यास क्रिया	Duplicated verb
स्थान-भेद	Quality (of a vowel)
स्पर्श	Stop
स्पर्श-संघर्षी	Affricate
स्पष्ट ल	Clear *l*
स्फोट	Explosion
स्फोटक	Explosive
स्वतः अनुनासिकता	Spontaneous nasalization
स्वर	Vowel
आदि	initial
मध्य	middle
अंत्य	final
अग्र	front
अंतर्	central

पश्च	back
स्वरतंत्री	Vocal chord
स्वरयंत्र	Larynx
स्वरयंत्रमुख आवरण	Epiglottis
स्वरयंत्र मुखी	Glottal
स्वराघात	Accent
बलात्मक	stress
गीतात्मक	musical, pitch
ह-कार	Aspirate
महाप्राण व्यंजन	aspirated consonant
महाप्राणत्व	aspiration
ह्रस्व	Short

आ. अंग्रेज़ी-हिंदी

Accent	स्वराघात
stress	बलात्मक
pitch, musical	गीतात्मक
Adverb	क्रियाविशेषण
pronominal	सर्वनाममूलक
Affricate	स्पर्श-संघर्षी
Alphabet	वर्णमाला
alphabetic sound	वर्ण
Alveolar	वर्त्स्य
Analogy	औपम्य, या सादृश्य
Analytic	वियोगात्मक
Aspirate	ह-कार
aspirated consonant	महाप्राण व्यंजन

aspriration	महाप्राणत्व
Anaptyxis	मध्यस्वरागम
Assimilation	अनुरूपता
Auxiliary verb	सहायक क्रिया
Back	पश्च, पिछला
Bilabial	द्वयोष्ठ्य
Branch (of speech)	शाखा
Breath	श्वास
out	निःश्वास
in	प्रश्वास
Breathed	दे० Voiceless
Cardinal vowel	प्रधान स्वर
Case	कारक
Causative	प्रेरणार्थक धातु
Central group	केंद्रवर्ती समुदाय
Change	विकार
Character	लिपिचिह्न, अक्षर
Class	वर्ग
Classification	वर्गीकरण
Clear *l*	स्पष्ट *ल*
Close (vowel)	संवृत (स्वर)
Compound	समास
Compound verb	संयुक्त क्रिया
Conjugation	क्रिया रूप
Conjunction	समुच्चय बोधक
Consonant	व्यंजन
consonantal group	संयुक्त व्यंजन

Construction	वाक्य-विन्यास
active	कर्तृवाचक
passive	कर्मवाचक
Dark *l*	अस्पष्ट ल
Declension	संज्ञा-रूप
Denominative	नामधातु
Dental	दंत्य
Dento-labial	दंत्योष्ठ्य
Derivation	व्युत्पत्ति
Dialect	बोली
Diphthong	संयुक्त स्वर
Direct form	मूल रूप
Duplicated verb	साभ्यास क्रिया
Duplication	अभ्यास
Elision	लोप
Epiglottis	स्वरयंत्रमुख आवरण
Exception	अपवाद
Experimental Phonetics	प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र
Explosion	स्फोट
Explosive	स्फोटक
False analogy	मिथ्या औपम्य या सादृश्य
Family (of speech)	कुल (भाषा-)
Flapped	उत्क्षिप्त
Foreign words	विदेशी शब्द
Formative affix	रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय (रचनात्मक अनुबंध)
Fricative	संघर्षी

Friction	संघर्ष
Front	अग्र, अगला
Gender	लिंग
Genealogical classification	वंशक्रमानुसार वर्गीकरण
Genealogy	वंश-क्रम
Glide	श्रुति
off-glide	पश्चात् श्रुति
on-glide	पूर्व श्रुति
Glottal	स्वरयंत्रमुखी
Group of speech	भाषा-समुदाय
Guttural	कंठ्य
gutturo-palatal	कंठ-तालव्य
gutturo-labial	कंठ्योष्ठ्य
back-guttural	जिह्वामूलीय
Half-close	अर्द्ध-संवृत
Half-open	अर्द्ध-विवृत
Hiatus	विवृत्ति, विच्छेद
High vowel	उच्चस्थानीय स्वर
Indeclinable	अव्यय
Indo-Aryan speech	भारतीय आर्यभाषा
Indo-European (Family)	भारत-यूरोपीय कुल
Indo-Iranian	भारत ईरानी
Infinitive	क्रियार्थक संज्ञा
Inner	मध्यवर्ती
Inscription	अंकित लेख
Interjection	विस्मयादिबोधक
Intermediate, mediate	अंतर्वर्ती

Labial	ओष्ठ्य
Labio-dental	दे॰ Dento-labial
Language	भाषा
Larynx	स्वरयंत्र
Lateral	पार्श्विक
Law	नियम, व्यापक नियम
Letter	वर्ण
Lip	ओष्ठ
Linguistics	भाषा-विज्ञान
Loan-word	उद्धृत शब्द
Long	दीर्घ
Low vowel	निम्नस्थानीय स्वर
Mechanism of speech	भाषण अवयव
Metathesis	विपर्यय
Middle Indo-Aryan	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा
Mixed vowel	मिश्रित स्वर
Mood	क्रियार्थभेद
indicative	सामान्यार्थ, निश्चयार्थ
contingent	संभावनार्थ
presumptive	संदेहार्थ
imperative	आज्ञार्थ
negative contingent	संकेतार्थ
optative	आदरार्थ
Mouth cavity	मुख विवर
Nasal	अनुनासिक
Nasal Cavity	नासिका विवर
Nasalized	सानुनासिक

Nasalization	सानुनासिकता
Neutral vowel	उदासीन स्वर
New Indo-Aryan	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा
Noun of Agency	कर्तृवाची संज्ञा
Number	वचन
Numeral	संख्यावाचक
cardinal	पूर्ण संख्यावाचक
ordinal	क्रम संख्यावाचक
fractional	अपूर्ण संख्यावाचक
multiplicative	समुदाय संख्यावाचक
Oblique form	विकृत रूप
Obsolete	अप्रयुक्त
Old Indo-Aryan	प्राचीन भारतीय आर्यभाषा
Open (vowel)	विवृत (स्वर)
Onomatopoetic	अनुकरणमूलक
Outer	बाह्य
Palatal	तालव्य (कठोर)
Palate	तालु
hard	कठोर
soft	कोमल
artificial	कृत्रिम
Paragraph	खंड
Participle	कृदंत
present	वर्तमानकालिक
past	भूतकालिक
conjunctive	पूर्वकालिक
Penultimate	उपांत्य

Person	पुरुष
first	उत्तम
second	मध्यम
third	प्रथम
Pharyngeal	उपाजिह्व
Pitch-accent	दे० Musical accent
Philologist	भाषा-विज्ञानी
Philology	दे० Linguistics
Phoneme	ध्वनि-श्रेणी
Phonetic	ध्वनिसंबंधी, ध्वन्यात्मक
Phonetic Law	ध्वनिविकार-संबंधी नियम
Phonetics	ध्वनि-विज्ञान
Phonetic sign	ध्वनिसंबंधी चिह्न
Phonetic transcription	ध्वन्यात्मक लेखन या लिपि
Phrase	वाक्यांश
Place of articulation	उच्चारणस्थान
Pleonastic	निरर्थक प्रत्यय, स्वार्थिक
Post-dental	दंत्यमूलीय
Postposition	परसर्ग
Pre-dental	दंत्याग्रीय
centro-dental	दंत्यमध्यीय
Prefix	उपसर्ग
Preposition	उपसर्गात्मक अव्यय
Primary roots	मूलधातु
Pronoun	सर्वनाम
personal	पुरुषवाचक
demonstrative	निश्चयवाचक

relative	संबंधवाचक
correlative	नित्यसंबंधी
interrogative	प्रश्नवाचक
indefinite	अनिश्चयवाचक
reflexive	निजवाचक
honorific	आदरवाचक
Pronunciation	उच्चारण
Prothesis	आदिस्वरागम
Quality (of a vowel)	स्थानभेद
Quantity (of a vowel)	मात्राकाल
Retroflex	मूर्द्धन्य
Rolled	लुंठित
Root	धातु
primary	मूल
secondary	यौगिक
denominative	नाम
compound	संयुक्त
onomatopoetic	अनुकरणमूलक
Science of Language	दे० Linguistics
Script	लिपि
Semi-vowel	अर्द्धस्वर
Short	ह्रस्व
Sibilant	ऊष्म
Simple vowel	मूलस्वर
Sonority	मुखरता या व्यक्तता
Sound	ध्वनि

Speech — भाषा
  speech-sound — भाषा-ध्वनि
  speech-mechanism — भाषण-अवयव
Spelling — शब्द-विन्यास
Spontaneous Nasalization — स्वतः अनुनासिकता
Standard pronunciation — प्रामाणिक उच्चारण
Stem — मूलशब्द, प्रातिपदिक
Stop — स्पर्श
Stress — बल
  sentence stress — वाक्य-बल
  syllabic " — अक्षर ,,
  word " — शब्द ,,
  to stress — बल देना
  stressed — बली
Sub-branch — उपशाखा
Sub-family — उपकुल
Suffix — प्रत्यय
Syllable — शब्दांश, अक्षर
  monosyllabic — एकाक्षरी
  polysyllabic — अनेकाक्षरी
Symbol — संकेत, प्रतीक
Synthetic — संयोगात्मक
Tense — काल
  radical — मूल काल
  participial — कृदंती काल
  periphrastic — संयुक्त काल
  formation of tense — काल-रचना

present indicative	वर्तमान निश्चयार्थ
past indicative	भूत ,,
future indicative	भविष्य ,,
present conjunctive	वर्तमान संभावनार्थ
past conjunctive	भूत ,,
imperative	आज्ञा
future imperative	भविष्य आज्ञा
present imperfect indicative	वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ
past imperfect indicative	भूत ,, ,,
future imperfect indicative	भविष्य ,, ,,
present imperfect conjunctive	वर्तमान ,, संभावनार्थ
past imperfect conjunctive	भूत ,, ,,
present perfect indicative	वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ
past perfect indicative	भूत ,, ,,
future perfect indicative	भविष्य ,, ,,
present perfect conjunctive	वर्तमान ,, सम्भावनार्थ
past perfect conjunctive	भूत ,, ,,

Tongue जिह्वा

back	पश्च-जिह्वा
blade	जिह्वा-फल
front	जिह्वाग्र
middle	जिह्वा-मध्य
root	जिह्वामूल
tip	नोक

Transliteration अनुलिपि

Trilled कंपनयुक्त

Unaspirated अल्पप्राण
Unstressed बलहीन
Uvula अलिजिह्वा, कौवा
Uvular अलिजिह्व
Velar कंठ्य
Verb क्रिया
 transitive सकर्मक
 intransitive अकर्मक
Verbal noun क्रियार्थक संज्ञा
Voice वाच्य
 active कर्तृ
 passive कर्म
Voiced घोष
 voiced plosive घोष स्पर्श
Voiceless, breathed अघोष
Vocabulary शब्दसमूह
Vocal chords स्वरतंत्री
Vowel स्वर
 initial आदि
 middle मध्य
 final अंत्य
 front अग्र
 central अंतर
 back पश्च
Whisper फुसफुसाहट
Whispered vowel फुसफुसाहटवाला स्वर
Wind-pipe श्वास नाल

अनुक्रमणिका

सूचना—साधारण अंक पाराग्राफ़ के सूचक हैं तथा मोटे टाइप के अंक भूमिका के पृष्ठों के सूचक हैं।